बदलते मानव-मूल्यों का एक सजीव चित्र

रूपाजीवा

लक्ष्मीनारायण लाल

प्रथम संस्करण, १९५९

मूल्य छ रुपये

प्रकाशक राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली

मुद्रक श्री गोपीनाथ सेठ, नवीन प्रेस, दिल्ली

उस सूरज को समर्पित,
जिसे चदौसी मे देखा-भर था
किन्तु आज तक कही मिल न सका ।
आशा है कि उससे कभी भेट अवश्य होगी ।

पहला भाग

बड़ा रुपया

१

घर का दरवाजा पुराना था, लेकिन था बहुत ही मजबूत—जैसे घडो सरसों का तेल पिये हुए। उसमे चारो ओर खुदा हुआ था—जै लाभ, शुभ। और ऊपर बीचो-बीच गणेशजी की मूर्ति उभरी हुई थी। दरवाजे के ठीक ऊपर दीवार मे एक छोटा-सा ताक था—उसमे भी गणेशजी की मूर्ति प्रतिष्ठापित थी और ताक के ऊपर एक कील के सहारे, लाल कपडे मे खूब कसकर बँधी हुई कोई चीज लटक रही थी।

दरवाजे से बाईं ओर जो लम्बा-सा कमरा था, वही दुकान की बडी गद्दी लगी थी—आधे से ज्यादा भाग में। शेष भाग में टाट बिछा था और पिछली दीवार के पास दो पुरानी तिजोरियाँ खडी थी और एक छोटे-से तख़्त के ऊपर पुरानी बहियो का अम्बार लगा था। वही एक कोने से दूसरे कोने तक लटके हुए, लोहे के मजबूत पाँच तारों में न जाने कब की पुरानी चिट्ठियाँ, कागज़-पत्तर, पुर्ज़े और रसीदे खुँसी हुई थी। फिर भी इस भाग मे थोडी सी जगह अब भी बच जाती थी। और यहाँ कभी-कभी किसी खास व्यापारी या रिश्तेदार

का पलग बिछ जाता था। सामने की दीवार में इस कमरे के बीचो-बीच एक दरवाजा था जो घर मे खुलता था। यह प्राय सदा बाहर-भीतर दोनो ओर से ताले लगाकर बन्द रहता था, बाहर-भीतर आने-जाने की केवल विशेष परिस्थितियो मे ही यह खुलता था। अर्थात् यही बन्द दरवाजा वह गूँगा द्वार था जो घर और दुकान को एक कर देता था।

इस कमरे के आगे टिन से छाया हुआ लम्बा-चौडा बरामदा था। घर के मुख्य दरवाजे की ओर यहाँ भी एक गद्दी लगी थी, जिसे आसानी के लिए छोटी गद्दी कहते थे। इसके पास ही एक तख्ते पर पानी से भरे दो मिट्टी के घडे, दो ताँबे के पात्र और एक सागर, आठ फूल के गिलास, नीम-बबूल की कुछ दातुने, कुछ साफ मिट्टी और दो अँगोछे रखे रहते थे—यह सब दुकान पर आने-जाने वाले व्यापारी, सौदागर, सेठ-महाजन, पक्के-कच्चे आढतिये, ग्राहक और दलाल आदि की सेवा में। बरामदे का शेष भाग, तैयारी के माल से भरे हुए बोरों की छल्लियों से भरा रहता था।

बरामदे के आगे एक अच्छे क्षेत्रफल का खुला हुआ सहन था, जिसका घेरा लोहे के ऊँचे ऊँचे सीकचों और काँटेदार जालियो से इस तरह खिंचा हुआ था कि सामने की सड़क का फुटपाथ तक उसके दामन से छू गया था।

इस सहन की भी अपनी माया थी। सुबह से शाम तक इसमें विभिन्न प्रकार के गल्लो की अजस्र धारा-सी बहती रहती थी। बीचों-बीच अनाज तौलने का लोहिया तराजू खड़ा था। किनारे-किनारे अनाज की ढेरियाँ, पल्लेदारों का हुजूम, अनाज साफ करने के बड़े-बड़े छन्ने और मजदूरों के आने-जाने से वह पूरा सहन, वह दुकान और वह घर और वह पूरी बस्ती दिन-भर इस तरह लगती थी जैसे दूर देश का कोई मेला—शोर भरा, धूल-भरा और गति-भरा।

और मक्खियाँ कितनी थीं यहाँ! उफ हद से ज़्यादा! घर-बाहर

और समूची बस्ती मे ये जैसे छाई हुई थी। ज्यादा नही, केवल एक घण्टे के लिए दिन मे कोई बिना हाथ-पैर हिलाये डुलाये बैठा रह जाय तो मक्खियाँ उसकी सूरत बदल सकती थी। और बस्ती को बडा नाज़ भी था अपनी इन मक्खियो पर। कहते थे लोग—'जहाँ गुड आटा घी वहाँ मक्खियाँ जी!'

लेकिन उस घर मे मक्खियों का स्वागत कम था। चौके में जालियाँ, मालिक और मालकिन के घर मे जालियाँ, फिर भी उनके लिए मार्ग की क्या कमी—जितना ही खुला था, उतना ही मक्खियों के लिए काफी था।

घर के पिछवाडे एक खिडकी थी—ठाकुरद्वारे की गली मे खुलने वाली। खिडकी के उस अन्तिम कमरे मे भी केवल उतनी ही जगह बची थी कि कोई आ-जा सके। वैसे इस कमरे मे खाली बोरे रहते थे, और दूसरी ओर टूटी कुरसियाँ और खाटे भर रखी थीं।

बाहर से देखने मे यह घर और दुकान दोनों एक थे, एक ही मे थे, लेकिन वस्तुत दोनो की सत्ताएँ अलग-अलग थी। दुकान ही सब-कुछ थी, घर तो जैसे उसका केवल गोदाम-मात्र था। दुकान ही प्रभु था जैसे, घर तो केवल दास था। और इस सूत्र मे भी अन्तर यह था कि दोनों जैसे एक-दूसरे से अविच्छिन्न थे, स्वतन्त्र, निर्विकार—जैसे एक-दूसरे से रूठे हुए, एक-दूसरे से उपेक्षित।

बन्द दरवाजे के भीतर घर सो रहा था, लेकिन दरवाज़े के बाहर, दुकान की गद्दी, गद्दी का टेलीफोन, व्यापार और व्यापार का नियन्त्रण, जैसे सब जग रहे थे।

और वहाँ, जहाँ बन्द दरवाजे के भीतर घर सो रहा था, आँगन के बडे कमरे मे न जाने कब से कोई नन्हा-सा बच्चा चीख रहा था, जैसे पूरे घर मे उसे कोई सुनने वाला ही न था। दो बच्चियाँ थीं, वे अलग

कमरे मे सो रही थी । मालिक था, वह बाहर दुकान पर इतनी रात तक अपना काम भुगता रहा था ।

शेष मंगूदादी बची, जो बहुत देर से अपने कमरे मे जगी बैठी थी । बच्चा जैसे दम तोडकर रो रहा था, और करुणा से दादी का कलेजा सुलग रहा था ।

अपने को बहुत रोका, मन को अनेक तरह से घोटा-पीसा, पर जी न माना । दौडी अन्त में । बहू का कमरा बन्द था । जगले से देखना चाहा, भीतर अन्धकार था और दादी की आँखो से अब आँसू झर आये, फिर कुछ और भी न दीखा । पर सत्य मे अद्भुत शक्ति थी । उसने देख लिया, जैसे अन्धकार और आँसू भ्रम हो, निरे झूठ, और सत्य ने सत्य को बाँध लिया—बच्चा माँ के पलग से नीचे गिरा था ।

मगूदादी का माथा ठनका । बुझी हुई आँखो मे कुछ दीप्त हो आया ।

"ऐसी माँ की कोख मे लगे आग, साँपिन ।"

और घायल हिरनी की भाँति दादी बन्द दरवाज़े पर चक्कर काटने लगी ।

कुछ न सूझा तो मगूदादी तेज़ी से बाहर भागी—दुकान पर । व्यापार का नशा और नशे की थकान ने चेतराम को बडी गद्दी पर ही सुला दिया था । दादी आकर फूट पडी चेतराम पर ।

"सुनता है तू ! हे रे ! ओ रामू !"

चेतराम ने दूसरी करवट बदल ली, और बडबडाने लगा, "नही, नही, यह भाव नहीं, मद्दी है मद्दी·· ओ···ओ ···ना ।"

दादी ने आवेश में चेतराम की दाईं बाँह भींचकर कहा, "तोय बड़ौ नशा व्यापार को ! आग लगो !"

"क्या है ? क्या है री माँ ?" चेतराम हड़बड़ा उठा, कमर से धोती सँभालने लगा ।

"आग लगी है तेरे घर मे !"

मगूदादी उसकी बाँह थामे उठ खडी हुई, और न जाने किस बल से उसे खींचती हुई भीतर ले जाने लगी। आँगन मे ला छोडा। अब तक घबराकर चेतराम बिलकुल निष्प्रभ हो चुका था। बस एकटक दादी को देखता रहा। दादी ने संकेत किया, फिर डरते-डरते कहा, "बहरो है का ?" चेतराम को तब भी कुछ न सूझा। दादी ने झुँझलाकर उसे बन्द दरवाजे के पास ला खींचा। फिर दादी का सारा बल जैसे चुक गया, दम उभर आया, कराहती हुई वही बैठ गई और झुकी-झुकी न जाने किस बूते से अपने कमरे मे भागी।

चेतराम जग गया। होश हुआ, तब सुना जैसे बन्द कमरे मे उसने सब-कुछ देख लिया। पीछे हटकर बन्द दरवाजे पर इतनी ज़ोर का धक्का दिया कि स्वयं लडखडा गया। जंगले से पुकारने लगा। कई बार घूमा-दौडा, कमर से धोती कसी, पर हुआ कुछ नही। तब तक बच्चे का गला रुँधकर बैठ गया।

कुछ क्षण बाद कमरा खुला, जैसे यूँ ही अपने-आप खुल गया। चेतराम ने बच्चे को अंक मे कस लिया। और कुछ मूक क्षणों मे उस कमरे के अन्धकार से बच्चे की टूटती साँसो की एक ऐसी अस्फुट वाणी फूट आई, जैसे कोई भयभीत, मस्त अपनी अव्यक्त साँसो से किसीको उलाहना दे रहा हो।

"बत्ती जलाओ रूपाबहू !. सुनती हो कि नहीं ? . रूपा !" रूपा बहू मुँह ढककर लेटी रही—लेटी रही। चेतराम के अंक मे बच्चा अपने क्षीण, कोमल बल से इस तरह लिपटा रहा जैसे उसे भय हो कि कहीं वह उस अंक से भी न गिर जाय।

चेतराम ने बढकर बिजली जला दी। कमरे मे सब-कुछ साफ हो आया—पलंग, पलंग पर सोई हुई माँ, पलंग के नीचे की पक्की जमीन, बच्चे के नन्हे माथे की चोट, रात का खिंचा हुआ सन्नाटा और बच्चे की बुझी, फिर भी टूटती हुई क्षीण सुबकियाँ।

चेतराम की आवाज गीली होकर भारी हो आई, "बच्चे की माँ, इधर देख, प्रकाश मे। देखती क्यो नही ?"

वह जैसे सो गई थी, उसमे कोई प्रतिक्रिया न हुई। चेतराम ठगा-सा खडा रहा।

फिर वह बच्चे से ही बातें करने लगा, "चोट लग गई ? लग गई न चोट !"

कहते-कहते वह आँगन मे आया। नक्षत्र-भरे आकाश मे वह गरीब, चाँद ढूँढने लगा, जो कभी का डूब गया था। एक बडे-से नक्षत्र को जैसे उँगली मे बाँध उसने तुतलाकर कहा, "मेले बेटे ! वह देख चन्दा मामा ! देख न, सो गया ? अच्छा, सो जा !"

तभी फूलती सांसो के बीच से दादी की आवाज आई, "आँगन मे लिये घूम रहो है रे ! तू को शीत-ठण्ड को डर ना रहो ?"

"पेट फाड के तू ही रख ले न ! बडी चोचले दिखाने आई !" स्वर को क्रोध से पीसती हुई अपने कमरे से रूपा बोली, "बुला ले न अपने कमरे में ! डाल दे जादू !"

उसी क्षण चेतराम रूपाबहू के सामने जा खडा हुआ। आहत स्वर मे बोला, "यह सब क्या है ? क्यों ऐसी हो जाती हो तुम ? वह हमारी माँ है, यह हमारा पुत्र है और तुम इस घर की लक्ष्मी हो रूपा—माँ और लक्ष्मी दोनो ! सोचो, जो तुम कहती-करती हो, उसे सोचती भी हो ?"

"क्या ? क्या ? क्या नहीं चाहिए ? क्या बकते हो ?" रूपाबहू अपने-आप मे मथ-सी उठी, जैसे वह स्वयं के प्रति भी होश मे न हो।

चेतराम का सिर झुक गया, जैसे वह समूचा कही गड गया हो। पूरे बल से उसने कहा, "कोई ऐसे बोलता है ? कितनी अजीब बात है, माँ पलंग पर बेसुध सोये और उसके अंक का बच्चा यहीं नीचे गिरकर रोते-रोते दम तोड दे !"

"ओ हो ! जैसे मर ही तो गया !"

"और कैसे मरते है ?"

"पता नही !"

"तुम तो लड बैठती हो !" चेतराम ने स्वर को एकदम गिरा लिया, "छोडो यह किस्सा ! लो, बच्चे को थामो—पाँखुरी जैसा माथा और यह चोट ! झट से इस पर अपने अंक का दूध गारो और कण्ठ सीचो इसका !"

पर उतनी शीघ्रता से माँ की बाँहे न उठी। चेतराम ने आग्रह से बच्चे को माँ की गोद मे थमा दिया। बच्चा नि शक्त हो, बेसुध हो रहा था।

"चुप क्यो बैठी हो ? तुम्हारी छाती मे दूध नही है क्या ? कैसी माँ हो ?" चेतराम चीख उठा।

रूपाबहू ने श्राप की तरह कुछ बुदबुदाकर बच्चे के खुले मुँह पर दूध दे मारा, "ले, मरा जा रहा है !"

चेतराम खडा देखता रहा—लाज, शरम, हया, सब खुला देखता रहा। लेकिन बच्चे का दूध पीना देखकर वह सब-कुछ भूल गया—मुस्करा आया। रूपा के गिरे हुए आँचल से चेतराम ने वह गोद ढक दी, जिसके नीचे वह शिशु छिप गया।

फिर उसने बहुत स्नेह घोलकर, जैसे परिहास करते हुए कहा, "ओ सपूत की माँ ! ओ मेरे मूलधन की तिजौरी और टकसाल !" कहते-कहते उसके मुख पर निश्छल मुस्कान बरस आई और वह हँस पडा—कमरे की सारी उदासी पी गया।

तब रूपाबहू ने चेतराम को ऐसी आँखों से देखा, जिसमे वह अपनी ओर से क्रोध भर रही थी, पर उसमे कुछ और ही उभर आया—कोई अव्यक्त वेदना, कोई अदृश्य व्यथा।

चेतराम ने मानो आशीष-भरे स्वर से कहा, "सो जाओ ! सो जाओ अब, इसी तरह गोद मे छिपाये सो जाओ ! सुबह गढ़ी के हनुमान को सवा सेर लड्डू चढवा देना, हाँ !"

भाव मे आकर उसने रूपाबहू के सिर को थाम धीरे से पलग पर लिटा दिया। कई क्षण तक चुप खडा रहा, फिर माँ के आँचल को उठा बच्चे को झाँका और खिलखिलाकर हँस पडा। "देखा, दूध पीते-पीते सो गया। अब इसके सिर से तुम अपना आँचल न उठाना। यह आँचल प्रभु की छाया है। जिस बच्चे को यह छाँव न मिली, समझो कि वह जड रह गया!"

"रहने दो यह चिकनी-चुपडी!" रूपाबहू ने झुँझलाकर कहा, "ये चोंचले जाओ अपनी माँ को दिखाओ "मै पक गई।"

"पक गई?"

चेतराम चुप हो गया। मन बाँधकर बोला, "किससे पक गई? मुझसे या मेरी माँ से? कि इस घर से? क्यो, कैसे पक गई हो? क्यो ऐसी बात मुँह से निकालती हो?"

वह कुछ न बोली, जैसे उसके पास केवल प्रश्न थे, कही भी कोई उत्तर न था। चेतराम खडा रहा। थककर चुपचाप आँगन मे चला आया—माँ के पास चला गया।

मगूदादी के सीने पर दमे का वेग अभी पत्थर मार रहा था—वह दबी जा रही थी। चेतराम झुककर उसे शान्त करने लगा।

उदासी से बोला, "सोचता हूँ माँ, कुछ दिनो के लिए मधू को बुला लूँ, बिना उसके काम ही चलता न दीखे!"

मगूदादी ने पूरी शक्ति से विरोध किया। साँस के ज्वार-भाटो के बीच से उसने कहा, "मेरी बेटी कूँ मत ला इस घर में, नहीं-नहीं, मत ला!"

"क्या हो गया है तुम सबको?" चेतराम के स्वर मे ग्लानि भर आई, "घर है कि ••"

आगे कुछ न कहा गया। दादी चुप थी। सूनी दृष्टि से वह चेतराम

का ढखती रही। इतने मे बाहर से हिरनू की बडी तेज पुकार आई "लालाजी, ओ लालाजी, फोन की घंटी!"

सुनते ही चेतराम बेतहाशा दौडा—टूटकर फोन उठा लिया और उसमें पूरी आवाज से हलो-हलो की पुकार भरने लगा।

फोन से जरा-सा मुँह हटाकर हिरनू से कहा, "जा, भागकर मुनीम को बुला ला—रामचन्दर को!"

फिर चौककर कान और मुख से फोन को कस लिया, "जी लाला-जी! गेहूँ मे मदी है—दो पैसे की। सरसो का भाव ठीक है—जी हाँ वही। अपने पास इस बखत ढाई सौ मन होगा जी इसे भी देखूँगा। हो जायगा पूरा हिसाब! जी, बडे जोरों का काम है। खूब गरम है बाजार! बस, राम-राम लालाजी! जै रामजी की! और कोई आज्ञा! जी, सब राजी-खुशी" अजी उसकी का पूछो हो!"

मुनीमजी सामने से आ रहे थे। बाये हाथ में टोपी थी, दाये हाथ से आँख मल रहे थे, जैसे अभी नींद ही मे चले आ रहे थे।

चेतराम थकी-सी मुस्कान के साथ मसनद के सहारे गद्दी पर फैल गया। जाँघें नगी करके उन पर हथेलियाँ फेरने लगा। सम स्वर में बोला, "आओ बाबू रामचन्दर! मेरे पास आ जाओ। बैठो। गोरेमल का दिल्ली से फोन आया है—अभी-अभी आया है। दुकान का पूरा हिसाब माँगा है—बिक्री, नगद, कमीशन सब। सरसो के लिए भी पूछा है, कुल कितना है गोदाम मे?"

चेतराम ने आँखे बन्द कर लीं और तकिये मे सिर गडाकर कहा, "गोरेमल सदा यही सोचते रहते है कि हमे व्यापार नहीं आता। आम-दनी-लाभ, आमदनी-लाभ; यह सब ईश्वर के हाथ में है कि ।"

सहसा फिर घटी हुई। चेतराम ने उछलकर फोन थाम लिया, "जी! हाँ जी! हलो! हलो! जी हाँ-हाँ गेहूँ का सौदा बिलकुल नपा लो" जो आज्ञा! हाँ, हाँ हुकुम करो! हाँ, हाँ क्यो नहीं, क्यों नहीं! जी, यह भी कोई बात हुई! हाँ, हाँ पक्की बात! हम तो

ईमान और मेहनत की खाते हैं चौधरीजी ! बस, बेफिकर रहो जी यह भूरेलाल-चेतराम की फरम है जी ! और कोई सेवा ! जी, राम-राम जी !"

चेतराम का चेहरा सूरजमुखी की भाँति एकाएक खिल आया। हँसकर लम्बी साँस ली।

"रामचन्दर बाबू ! बम्बई से सौदा हुआ है !"

मुनीम की सारी नींद चली गई, सिर पर टोपी रखते हुए बोले, "लालाजी, गुड की हुई ?"

"नही जी, गुड की कौन करे है, गेहूं का सौदा पटा है।"

मुनीमजी ने अपनी टोपी पीछे खिसका ली और बड़े तपाक से बोले, "कित्ता रहा ?"

"एक हजार मन !" चेतराम ने गद्दी से नीचे आकर एक बीड़ी सुलगा ली, "देखो बाबू रामचन्दर, कच्ची बही मे खाता बाँध लो—बम्बई वाले का। फोन मे घंटी देकर झट हापुड़ मिलवाओ। लाहौर-अमृतसर का तो भाव खुला ही हुआ है।"

"जी, हापुड़ से फिर चारो ओर का पता ले लेता हूँ, हाथ-कंगन को आरसी क्या !"

फोन को बाँधे मुनीमजी बहुत ही इतमीनान से पल्थी मारकर बैठ गए। चेतराम ने बीड़ी खत्म कर दी। उरली तरफ, बुढ़िया तिजोरी से 'सुखसागर' की पोथी निकालकर मन-ही-मन बाँचने बैठे। एक पृष्ठ से आगे जी न लगा, मुस्कराकर रामचन्दर से बोले, "मुनीमजी, ये अगरेज़ भी क्या है ! देखो न, इन लोगों ने फोन क्या बनाया है ! इसी गद्दी पर सारा हिन्दुस्तान बुला लो। साक्षात् भगवान् की शक्ति है इनमे ! मै तो सोचता हूँ, महाभारत की लड़ाई मे अगर यह फोन होता तो कृष्ण भगवान् को कुरुक्षेत्र के मैदान मे न जाना पड़ता।"

मुनीमजी ने कहा, "सच है लालाजी ! फिर भी नहीं देखते हमारे देश वाले, इन अंग्रेज़ो को बाहर निकालना चाहते हैं। कहते हैं, अपने

देश म अपना राज !" उसी क्षण फिर फोन की घंटी बजी। मुनीमजी हापुड से बाते करने लगे, और इतने ऊँचे स्वर से बोलने लगे कि सारी दुकान गूँज उठी।

चेतराम फिर पढने लगा। पढते-पढ़ते ऊँघने को आया। सिर पर मुनीम की आवाज़, और न जाने कब चेतराम ठीक उसी स्थिति मे खर्राटे भरने लगा।

सुबह हुई। चेतराम ने नहा-धोकर सवासेर लड्डू लिया। घर मे गया। बच्चा माँ के अक से लगा अब तक सो रहा था। लड्डू के भरे दोने को उसके माथे पर छुलाया और धीरे से बाहर निकल आया।

चौराहे पर आते ही चेतराम की भेट चौधरी छेदामल से हुई। चौधरी की बाई हथेली पर बाजरे की दस रोटियाँ रखी थीं। वह भी हनुमान गढी की ओर जा रहे थे। गली, मुहल्ले और सडक को पार करते-करते चौधरी छेदामल के आगे-पीछे कम-से-कम तीस कुत्तों का झुण्ड साथ चल रहा था। आश्रम तक पहुँचकर पांच रोटियो के टुकडे कुत्तों को खिला दिए।

चेतराम ने हनुमान गढी मे प्रसाद चढाकर अपने मस्तक पर सिन्दूर लगवाया, बच्चों के लिए आशीर्वाद लिया फिर तेजी से घर की ओर लौटा।

उसने देखा, चौधरी छेदामल कुत्तों के झुण्ड के साथ आगे-आगे चले जा रहे थे। चेतराम अपने मन मे सोचने लगा, छेदामल की उमर तक पहुँचकर वह भी नित्य कुत्तो को रोटियाँ बाँटेगा—बाजरे की नही, गेहूँ की।

चेतराम की अवस्था पैंतालीस से अधिक न होगी—भरा-पूरा बदन, निकले हुए गाल, गेहुँआ रग, आँखें बडी-बडी, पर माथा बहुत तंग, जैसे जन्म के समय धरती पर गिरते ही वह सयोगवश दब

गया हो।

वह जब अपने घर के चौराहे पर आया, और लड़ते हुए कुत्तों के झुण्ड के साथ चौधरी छेदामल अपनी गली की ओर मुड़ा, चेतराम की कल्पना और सजीव हो आई—'जब मैं साठ वर्ष का होऊँगा, मेरा लल्ला जवान् हो जायगा। 'फरम' सँभालेगा, मैं धर्म करूँगा, वह व्यापार को तिगना कर लेगा।'

सोचते-सोचते जब वह अपने घर के आँगन में गया, उसने देखा, उसकी दोनों बच्चियाँ—सीता और गौरी—दादी के संग ताज़े पराँठों का नाश्ता कर रही थीं।

चेतराम ने दोनों बच्चियों को प्रसाद दिया। उनके माथे पर हनुमान का तिलक लगाने लगा—उसी बीच दादी ने रहस्य-भरे शब्दों में कहा, "सुना! ''कमरे में मुँह फुलाये बैठी है, न बाहर न भीतर! न धोना न नहाना। मैं कहे दे रही हूँ, जे ऐब बच्चे पै जायगो, हाँ!"

चेतराम कमरे में गया। रूपाबहू उदास फर्श पर बैठी थी—बेहद गम्भीर और श्रान्त। चेतराम उसे बुलाता रहा, पर वह बोली नहीं। भगवान् का प्रसाद तक न स्वीकार किया।

बच्चे के माथे पर तिलक लगाकर चेतराम रूपाबहू के सामने आ खड़ा हुआ। समवेद्य-स्वर में बोला, "जब तुम कुछ बताओगी नहीं तो मैं क्या करूँ! कुछ बोलोगी भी? और ऐसी भी क्या बात, जो तुम्हें ऐसा बनाए। जो भी तुम्हारी शिकायत हो, दुःख-दर्द हो, मुझसे कहो, मैं न पूरा करूँ तो कसूरवार।"

चेतराम चुप हो गया। घूमकर फिर सोते हुए बच्चे की ओर देखा और उसके ऊपर झुक गया। उसके फूल जैसे नन्हे शरीर पर धीरे-धीरे हाथ फेरता रहा और उसके माथे की चोट देख मुस्कराता रहा। एकाएक उसे ध्यान आया कि अभी तक बच्चे के माथे पर तेल नहीं रखा गया। बढ़कर हथेली में तेल लिया और बड़े स्नेह से उसके

माथे पर रखने लगा। उसी क्षण बच्चा जग गया और रोने लगा।

झट चेतराम ने उसे गोद मे ले लिया, माँ के पास आया, दुलार से बोला, "लो अपने लल्ला को ! दूध पिलाओ !"

माँ मूर्च्छित बैठी रही।

"रुलाओ नहीं इन्हे ! लो इस तरह लो !"

और बच्चे को बरबस उसके अक मे डाल दिया। तब माँ की दृष्टि ऊपर उठी। कई बार उसने भरी दृष्टि से चेतराम की ओर देखा। चेतराम देख रहा था, बच्चा अपनी पूरी ताकत से माँ का दूध पी रहा था और माँ जैसे कही शून्य मे गडी थी।

चेतराम ने सहसा देखा, रूपा जैसे निःशब्द रो रही हो। लालाजी के होश उड गए। बाते, प्रश्न कण्ठ में ही सूख गए।

"क्यों, क्या बात है ? भगवान् की कसम, तुम मुझे बताओ।" रूपाबहू तब भी चुप थी।

चेतराम ने जैसे अपने-आपसे कहा, "बच्चे को गोद मे लेकर रोती हो ! यह पूत चिराग है हमारा ! इसकी छठी-बरही से तो मेरा जी ही नही भरा है। अभी तो इसके नाम पर बहुत-कुछ करने को जी है ! कुण्डली बनवाऊँगा, एक दूध वाली गऊ दान करूँगा। गुरुधाम चलेगे इसे लेकर—गुरु बाबा से इसका नाम रखवाऊँगा ! फिर पूरी बस्ती के साहूकारो को एक भोज दूँगा !"

रूपाबहू को असह्य हो गया। क्रोध से बोल उठी, "बको मत ! भाग जा यहाँ से। ले जा यह बच्चा—मुझे नही चाहिए—इसे अपने सग रख।"

चेतराम को काटो तो खून नही। वह चुप बच्चे को देखता रहा। माँ ने उसे गोद से अलग कर ज़मीन पर लुढका दिया था। चेतराम ने अंक मे उठा लिया। इस बीच कई बार रूपा की दृष्टि ऊपर उठी—कुछ ढूँढने चली, किसी आलम्बन को पाने के लिए हिम्मत बाँधने लगी। एक बार उसकी दृष्टि चेतराम से मिली—वे आँखे, वह दृष्टि,

अवसाद और विरक्तिपूर्ण, और सबके ऊपर किसी अज्ञात वेदना के लम्बे डोरे।

चेतराम का गला भर आया। बच्चा उसके अङ्क से चिपका पड़ा था।

"क्यों? क्यों ऐसा कहती हो? मैं तेरे पाँव पड़ता हूँ, ऐसा न कह!"

और उसकी दाईं बाँह पकड़ चेतराम ने उसे उठा लिया। वह उठकर दीवार से लग गई। चेतराम पास गया। कन्धे को छुआ। रूपा ने उसे क्रोध से झटक दिया और फूटकर रोने लगी—निःशब्द, गतिहीन। लेकिन वह हर सिसकी के साथ सिर से पैर तक कँपकँपा उठती थी।

चेतराम विनीत स्वर में बोला, "क्या बात है रूपा? मेरी सौगन्ध।" धीरे-धीरे उसका स्वर गम्भीर हो आया, "मुझे बताती क्यों नहीं? उस सबके लिए मैं हूँ।"

"तू है!" रूपाबहू ठगी-सी रह गई, "तू है! तू कुछ नहीं है! भाग जा यहाँ से! ले जा इस बच्चे को!"

"यह बच्चा ही नहीं रूपाबहू, यह हमारा सर्वस्व है, मूल, ब्याज और स्वर्ग, सब कुछ। इसके हाथ देखो, कितने लम्बे-लम्बे हैं! माथा देखो, कितना चौड़ा है।"

"पर तेरा हो भी!" रूपा के मुख से एकाएक निकल गया। और वह सिर थामकर पूरी शक्ति से मानो दीवार में चिपक गई, जिससे वह चीखने न लगे, दहाड़ मारकर रोये नहीं।

चेतराम ने अपना दायाँ हाथ उसके काँपते हुए कन्धे पर रख दिया, "तो क्या हुआ पगली? इतनी-सी बात! लो थामो बच्चे को! यह कुलदीप है हमारा!"

चेतराम पूरे मन से मुस्करा उठा और उसके बुझे मुख पर ज्योति बरस आई। स्नेह से बोला, "मैं समझूँ हूँ कि क्या बात है! भला

यह भी कोई बात हुई !"

कन्धे से पकड़े हुए चेतराम ने उसे पलंग पर ला बिठाया, बच्चे को गोद में रखने लगा, "हूँ, निरी बच्ची हो जाती हो ! नासमझ कहीं की ! जो तुमसे पैदा हुआ वह मेरा क्यों नहीं ? बचपना करती हो ! खबरदार, अगर यह बात मन मे रखी, हाँ ! यह सब अपने मन से निकाल दो बेकार का वहम है यह !"

चेतराम शिशुवत् मुस्करा आया, "मै समझूँ हूँ कि क्या बात है !"

रूपा का मुख उतना ही निस्तेज हो रहा था, मानो आँखों से सब-कुछ बरस गया हो। चेतराम ने देखा, माँ बच्चे को प्यार से बाँहों मे कसे हुए अपलक उसे देख रही थी, जैसे वह अपने को उससे बाँध रही हो।

चेतराम झुककर बच्चे को गुदगुदाने लगा, "ओ मेले बेटे ! हँसो .. हँशो जला-सा। माँ को नमत्ते कलो। इस तलह हाथ जोलकर। हाँ, शाबाश !"

हँसते-हँसते उसने बच्चे को उठा लिया। रूपा की आँखे अपलक उठी रहीं।

चेतराम ने दुलार से कहा, "जाओ कुल्ला-दातुन करो। नहा डालो अभी ! जाओ भागकर जाओ जल्दी से !"

यह कहते-कहते चेतराम ने रूपा को चौखट से बाहर कर दिया। स्वय आँगन मे चला आया—सीता और गौरी के बीच पल्थी मारकर बैठ गया।

• •

सीता पाँच साल की थी—बिलकुल माँ को पड़ी थी—कंचन जैसा रग, बड़ी-बड़ी आँखे, खूब स्वस्थ। गौरी पिता को पड़ी थी—वही रग, वही माथा। वह तीन साल की थी और सीता की अपेक्षा नट-खट थी।

इतने मे बाहर से दलालों की सम्मिलित पुकार आई। सब छोड़ चेतराम बाहर दौड़ा। दुकान पर छीतरमल, गिरधारी और दयाराम आ बैठे थे। ये तीनो चेतराम के कच्चे आढ़तिये थे। तीनो कुल मिला-

कर एक हज़ार मन गेहूँ के सौदे की बात करने आये थे।

उस बीच शम्भू, नैनूमल और श्यामलाल की दलाली थी। ये तीनों गद्दी के नीचे फर्श के बिछावन पर बैठे।

सौदे की बात हो ही रही थी कि गद्दी पर 'वीर अर्जुन' नामक दैनिक अखबार आया। सब-के-सब उसके तीसरे पृष्ठ पर झुक गए। अमृतसर और लायलपुर के गेहूँ के भाव मे तीन आने की मद्दी थी। दिल्ली के बाज़ार मे तीन रुपये चौदह आने के भाव थे।

अमृतसर और लायलपुर के भाव से चेतराम ने उन आढतियों से एक हजार मन गेहूँ का उसी क्षण सौदा कर लिया।

आढ़तिये और दलाल चले गए तब चेतराम ने 'वीर अर्जुन' को नये सिरे से देखना शुरू किया। गाधीजी का असहयोग-आन्दोलन ज़ोर पकड़ता जा रहा है। सरकार की घोषणा हो गई कि हिन्दुस्तान को स्वराज मिलेगा, लेकिन वह किस्तों मे दिया जायगा। 'और हर किस्त के लिए सरकार बलिदान लेगी,' चेतराम ने मन-ही-मन मे कहा, 'जैसे जलियाँवाला बाग।' फिर वह उठा। ताक से गणेशजी की मूर्ति को उठाकर अपने माथे लगाया—कलमदान से उसका स्पर्श किया और बड़ी बही, पक्की बही से छुलाकर फिर उसी स्थान पर उसे रख दिया।

आठ बजते-बजते गद्दी पर दोनों मुनीम आ गए—रामचन्दर और सीताराम। हिरनू, मनोरथ और होरी—दुकान के ये तीनों नौकर भी आ गए। हिरनू केवल दुकान का सेवक था—दुकान पर सबको पानी पिलाता, हर दलाल, हर आढ़तिये, हर आये हुए व्यापारी की सेवा मे उपस्थित रहता। मनोरथ दुकान से बाज़ार, बाज़ार से मण्डी, मण्डी से बैंक, बैंक से तारघर आदि, बस्ती की मंज़िलों पर दौड़ने-धूपने का उत्तरदायी था। होरी लोहे के ऊँचे तराजू का मालिक और मज़दूर, पल्लेदारों का मुनीम था।

दरवाज़े से दाईं ओर, पूरे बरामदे और सामने सड़क तक के पूरे

सहन मे चेतराम की दुकान फैली थी।

इस बस्ती के ससार मे मार्च से लेकर मई, जून और जुलाई के अन्त तक के दिन इसके व्यापार के दिन होते थे, जिसे यहाँ 'क्रॉप सीज़न' कहते थे।

उस समय जून के अन्तिम दिन थे। दुकान मे बेहद काम फैला था। सुबह से रात के एक बजे तक किसी को साँस लेने तक की फुरसत न होती थी। अनाज की ढेरियो से कही एक इंच तक की जगह न थी। गद्दी से बाई ओर का बरामदा, सामने का पूरा सहन अनाज से पटा पडा था।

दुकान के परली ओर सरजू सुनार का दोमजिला मकान था। नीचे के चार कमरे और आँगन के भाग को पिछले वर्ष से चेतराम ने साढ़े तेरह रुपये महीने किराये पर ले रखा था। इस पूरी जगह को उसने गोदाम बनाया था, और आजकल वे गोदाम भी भर चुके थे।

सहसा चेतराम ने कहा, "बाबू रामचन्द्र ओ मुनीमजी, आज दो बजे तक कागज तैयार होने है—हिसाब के साथ आज ही लाला गोरेमल के पास चिट्ठी भेजनी होगी।"

चेतराम ने छीतरमल-गिरधारीदास, कच्चे आढतियां, को फोन किया, "सो देखो जी, गल्ला मेरे यहाँ न भेजना, मै अपना आदमी भेज रहा हूँ, पूरा गल्ला तुलाकर अपने सहन मे रखो, वहीं से पूरा गल्ला स्टेशन चला जायगा।" फोन रखकर चेतराम ने दूसरे मुनीम सीताराम से कहा, "मुनीमजी, दौडकर स्टेशन जाओ, आज छब्बीस तारीख हो गई—'वैगन' का इन्तजाम हो गया होगा—एक बम्बई के लिए, एक हैदराबाद के लिए—जाओ, देखो जल्दी! मालबाबू से मेरा राम-राम कहियो, हाँ!"

भीतर से मगूदादी ने हीरा के हाथ चेतराम के नाश्ते के लिए डेढ़ पाव दूध और थोडा-सा गुड भेजा। दूध पीने के बाद चेतराम के सामने अनेक कागज़-पत्र फैलने लगे—हुडियाँ तैयार करने के लिए,

पर्चे भरने के लिए, कुछ पर हस्ताक्षर के लिए। और पत्र तो अनेक बिखरे थे, उत्तर पाने के लिए।

सहन धीरे-धीरे मजदूरों और पल्लेदारों से गूँजने लगा। सड़क पर ठेलों की भीड़ जमा हुई और काम का तूफान आने लगा। एक ओर अनाज की तुलाई आरम्भ हुई, दूसरी ओर बोरे भरे जाने लगे और ठेलों पर अनाज के बोरों की छल्लियाँ बनने लगीं। दूसरी ओर अन्य आढ़तियों से गेहूँ की धारा बह बहकर यहाँ थमने लगी।

सरजू सुनार गोपालन मुहल्ले का कट्टर आर्यसमाजी था। इम्पीरियल बैंक और सेण्ट्रल बैंक के बीचोंबीच स्थापित आर्य कन्या पाठशाला के निर्माण में सरजू के पिता काशीसाहु का प्रमुख हाथ था। प्रमुख अध्यापिका श्रीमती चमेलीदेवी विशारदा के कक्ष में आज भी काशी-साहु का चित्र सबसे अधिक सम्मान से लगा हुआ है।

सरजू के दिन अपेक्षाकृत आज बहुत अच्छे नहीं हैं, कारण कि वह बेचारा दो-दो बार रावलपिंडी और लाहौरी सोने की ईंटों के बाज़ार में बुरी तरह मुँह की खा गया था, फिर भी, वह आज भी आर्य कन्या पाठशाला का ऑनरेरी सेक्रेटरी है और चाहे जैसे भी हो, वह पाठशाला को सदा चन्दा देता है।

आज दोपहर के समय उसके घर में बेटे हीरालाल का मुण्डन-संस्कार हो रहा था। यज्ञ के उपरान्त सरजूसाहु के आँगन में उपस्थित अनेक स्त्री-पुरुषों के बीच बस्ती के आचार्य शिवसहाय सक्सेनाजी का अत्यन्त मनोरंजक भाषण चल रहा था—"आज आर्य संस्कृति खतरे में पड़ गई है और इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि हमारा समाज आज भयानक-से-भयानक कुप्रथाओं में फँस चुका है। विशेषकर नारी-समाज, जो हमारे राष्ट्र और आर्य संस्कृति का नियन्ता है, कर्णधार है, वह आज परदा-प्रथा, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह और अनेकानेक सामा-

जिक पतनो से गुजर रहा है। इसी बस्ती को ले लीजिए, आज एकसौ सैतीस विधवाएँ इन घरो मे कैदियो की तरह बन्द है और अपनी मृत्यु का पथ जोह रही है, विवश है, सब-कुछ होते हुए भी वे अनाथ है, पशु-तुल्य है। इसका कारण क्या है—स्त्री-अशिक्षा, बाल विवाह और वृद्ध-विवाह। अहा हा! कितना अच्छा किसी कवि ने व्यंग्य किया है—

'यदि स्त्रियाँ शिक्षा पाती तो 'परदा सिस्टम' होता दूर,
और शिक्षिता हो वे धारण क्यो करती चूडी-सिन्दूर?
बाल-विवाह रोक हम देते यदि, हमको मिलते अधिकार,
वृद्ध-विवाह का किन्तु देश मे कर देते हम खूब प्रचार।
क्योंकि साठ के होकर के भी दूल्हा अभी बनेगे हम,
किसी बालिका से विवाह कर रस मे कभी सनेगे हम।'

यह है आज हमारे समाज की वस्तुस्थिति।"

सब काम छोडकर दौडा हुआ वहाँ चेतराम भी आया। लेकिन उस समय सक्सेनाजी से यह सुनकर, कि बीडी-सिगरेट पीना कितनी लज्जा की बात है, सिर पर जुल्फे, मुँह मे पान, कलाई मे घडी, आज का पुरुष दिनोदिन जनाना बनता चला जा रहा है, चेतराम की हिम्मत पस्त हो गई। उसके मुँह मे पान भरा था, कुरते की जेब मे बीडी-माचिस, सिर पर थोडी-सी जुल्फ भी थी, जिसमे कढी माँग को उसने तत्काल ही बिगाड लिया। मुँह को कडाई से बन्द किये हुए उसने इधर-उधर देखा। श्रोताओ मे अधिकाश स्त्रियाँ ही थी, जिनमे राजू पंडित की बीमार पत्नी शारदा भी मौजूद थी। चेतराम उन स्त्रियो मे पता नही क्या ढूँढता रहा। उसे लग रहा था, उनमे जैसे कही रूपा भी आ बैठी है। रूपा कहती थी, उसके नाना आर्यसमाजी थे, उसकी माँ आर्यसमाजी है और वह स्वय आर्यसमाज के प्रशंसको मे है, फिर भी न जाने क्यो वह इतनी निष्ठावान वैष्णव है।

चेतराम अपने बेटे के माथे पर लगाने के लिए सरजूसाहु के यज्ञ

से पवित्र भभूत लेने आया था, लेकिन जल्दी से कोई मौका नहीं निकल पा रहा था। उधर उसे दुकान पर बेहद देर हो रही थी, दो बुलावे आ चुके थे।

२

चेतराम के घर के पीछे जो गली थी, वह पूरी-की-पूरी लाल पत्थरों से चुनी थी। कारण, इस गली में प्रीतमदास का अपनी पत्नी की पुण्य-स्मृति में बनवाया हुआ ठाकुरजी का एक मन्दिर था। इसका पूरा फर्श असली सगमरमर का बना था और दीवारों में चारों ओर इक्यावन गिन्नियाँ जड़ी थीं। इसके पुजारी थे पंडित राजनाथ, जो राजू पंडित के नाम से पुकारे जाते थे। वह पुजारी कम भक्त अधिक और सबसे अधिक गृहस्थ थे।

ठाकुरद्वारे के सहन ही में इनका मकान था। इनके पिता धर्म-पंडित एक प्रसिद्ध वैद्य थे। बड़ी ख्याति और मर्यादा थी उनकी। हाथ में तो बेहद यश था, जिस रोगी को छू देते, उसे मृत्यु से बचा लेते। यहाँ से दिल्ली तक वह निमन्त्रित होते थे।

दिल्ली में एक बार सेठ गोरेमल को भयानक सग्रहणी हुई थी। उस समय इन्होंने ही उसकी प्राण-रक्षा की थी। धर्म पंडित ने वहाँ पूरे दो महीने रहकर औषधि की थी।

उस दिन वैद्यजी की सेठ के यहाँ से विदाई होने को थी। वह भीतर दीवानखाने में बैठे थे। दोपहर का समय था। गोरेमल अपनी गद्दी पर गाव तकिये के सहारे पड़ा था। एकाएक, घूँघट किये हुए, परदे के पीछे गोरेमल की पत्नी आई और छूटते ही सुबुक-सुबुककर रोने लगी—रोती रही। वैद्यजी हैरान थे। बार-बार प्रश्न-भरी दृष्टि से सेठ गोरेमल की दृष्टि देखते और मुँह से कुछ भी न फूट पाता।

कुछ क्षण बाद गोरेमल ने उदासी से कहना शुरू किया, "हम पै तीन लडकियाँ थी। बडी का विवाह हमने छ हजार पाँच सौ रुपया खर्च करके लाहौर के एक सेठ के यहाँ किया। वह ब्याह के दूसरे ही महीने चल बसी। दूसरी की शादी हमने जयपुर की—पहले से दूनी अच्छी शादी। पर मेरी वह भी लडकी न रही—गौने के पूर्व ही "

गोरेमल का स्वर सहसा टूट गया। परदे के पीछे से गोरेमल की पत्नी ने भरे कण्ठ से कहा, "ईश्वर ने मुझे लडकियाँ ही दीं, उन्ही को मैने अपना पुत्र समझा। लेकिन भगवान् को यह भी न स्वीकार ! दो चल बसीं।"

यह कहते-कहते सेठानी रो पडी। तब गोरेमल बोला, "पण्डितजी, अब हमारे एक ही लडकी शेष है। हम चाहते हैं, इसका ब्याह अपनी बिरादरी मे किसी सामान्य घर मे करे। मेरी यह लाडली तो जिन्दा रहे—फूले-फले। आपसे प्रार्थना है वैद्यजी, जिस तरह आपने मुझे इस भयानक रोग से छुडाया, उसी तरह आप मुझे इस चिन्ता से मुक्त करे। आप पर हमे पूरा भरोसा है, पूरा विश्वास है, जहाँ आप उचित समझे इसके लिए वर निश्चित कर दीजिये। यह समझिये कि यह कन्या आप ही की है।"

धर्मू पंडित की दृष्टि फैलती गई और उसके पूरे विस्तार मे धीरे-धीरे चेतराम की आकृति भरती गई, जैसे साक्षात् वह सामने आ खडा हुआ—हाथ फैलाये। और उसी क्षण धर्मू पण्डित ने मन मे ब्याह के मन्त्र पढ गोरेमल की कन्या का ब्याह चेतराम से कर दिया।

जो भावो मे बना, निश्चित हुआ—सत्य वही हो गया।

इस तरह चेतराम इतने बडे घर ब्याहा गया। बस्ती वाले यह सब देखकर हैरान हो गए—भाग्य फले तो ऐसे, रूप का घूँघट डाले लक्ष्मी स्वयं डोले पर चढकर आँगन मे आये।

चेतराम के बाबा के समय से उसके यहाँ कपडे की दुकानदारी थी। उसमे भी बहुत लाभ न था। चेतराम के पिता छेदीराम ने एक बार

कपडे की दुकान को बन्द कर कच्चे आढतिये का काम किया था। पूंजी न होने के कारण उसमें भी उसे घाटा हुआ था और ऐसा घाटा हुआ था कि उसके धक्के से छेदीराम इस संसार से चल बसा। मरते समय चेतराम से कह गया, 'देख बेटा, सन्तोष से बडी कोई चीज नही है। जो ईश्वर दे उसके अलावा और इच्छा मत कर। फिर से दुकान कर—वह भी केवल हल्दी, मिर्च और नमक की—पुश्त-दर-पुश्त बेखतरे बैठकर खाये जा। थोडी आमदनी, थोडा खतरा।'

पिता की मृत्यु के समय चेतराम की अवस्था सोलह वर्ष की थी। तब से वह हल्दी, मिर्च और नमक की दुकान खोलकर बैठा था और बीस वर्ष की अवस्था तक बैठा रहा। इस चार वर्ष की दुकानदारी मे खाने-पीने के अलावा ईश्वर की कृपा से उसने छ: हजार रुपये जोड लिए।

धर्मू पडित को संग लेकर तब वह गया-जगन्नाथजी पिंड करने पहुंचा। बाप को पिंड देकर जब वह बस्ती लौटा तो धर्मू पडित का व्यास-गद्दी पर बिठा उसने अपनी दुकान पर भागवत की कथा सुनी। यज्ञ हुआ और कर्म-धर्म-लाभ-शुभ और पिता-पितरों के नाम पर ढाई-सौ ब्राह्मणों को पक्का भोज दिया।

जिस समय पूजा के अवसर पर धर्मू पंडित का शास्त्र-विधान यह बताता कि चेतराम के बायें उसकी सुहागन होनी चाहिए, उस समय चेतराम की आँखे डबडबा आतीं। यज्ञ के समय जब पंडित ने चेतराम के बायें गोबर की स्त्री-प्रतिमा बनवाकर रखवाई और राम-जानकी की वह कथा कह सुनाई कि किस तरह जानकी-बनवास के समय अयोध्या मे राम ने स्वर्ण की जानकी बनवाकर अपने राजसूय-यज्ञ के अनुष्ठान को पूरा किया उस समय चेतराम निःशब्द रो पडा था।

चेतराम के ये निष्कलंक, अबोध आँसू धर्मू पंडित की चेतना मे जम-से गए थे।

ईश्वर ने अपनी असंख्य बाहुओं मे चेतराम का यह अनुष्ठान उस

दिन पूर्ण किया, जब धर्मू पंडित के माध्यम से रूपा का डोला उसके द्वार पर उतरा। लोग कहते है, धर्मू पंडित ने अपनी गाँठ से सात रुपये के पैसे उसके डोले पर बरसाये थे। चेतराम की माँ ने ढाई तोले सोने की नथ देकर बहू का मुख देखा था।

चेतराम के भाग्य को लक्ष्मी ने छू दिया। आँगन मे इतने बडे घर की, इतनी रूपवती सुहागन उतरी और द्वार की दुकान ही बदल गई। सेठ गोरेमल ने वहाँ अपनी पूँजी से एक फर्म खोल दी—'गोरेमल चेतराम, बैंकर्स एण्ड कमीशन एजेण्ट्स'। चेतराम वर्किंग पार्टनर हुआ, जिसे बिना पूँजी के रुपये मे छ आने की पार्टनरशिप मिली।

इस तरह एक दिन चेतराम, चेतराम से लालाजी हो गया लालाजी से सेठजी बन गया।

यह सब तो हुआ, बडे-से-बडे मागलिक कार्य हुए। जिस-जिसने रूपा को देखा, सब मुग्ध हो गए, जिसने देखा, कुछ देकर देखा, खाली हाथ नहीं।

घर मे रूपा लक्ष्मी की भाँति पूजी गई—यह सब हुआ। पर उस सबके बीच कही यह भी हुआ जिस दिन, प्रथम बार सिनीबहू की दृष्टि चेतराम से एक हुई उसे सन्तोष न हुआ। न जाने कोई भाव-भरा कोना जैसे अपने-आप धँस गया। लेकिन बीच मे शक्तिमय धर्म जो था—पति की ओर का, पिता की ओर का और सबसे अधिक शरीर का धर्म, इस सबने सिनीबहू को बाँधा, उसके भावो मे न जाने क्या-क्या भर दिया। उसकी दृष्टि का असन्तोष, मन का कोई अभाव—यह सब भर गया—भरा रहा। और वह धर्म तथा चेतराम के अतिरिक्त अनुराग से विस्मृति मे खो गया।

विस्मृति! अन्तराल!

सिनीबहू, गोरेमल की केवल सन्तान—लाडली, मरी नहीं, जी गई, जीती रही और इस जीने की प्रक्रिया मे वह माँ हुई। पहली लडकी सीता, दूसरी लडकी गौरी।

राजनाथ धर्मू पंडित का अकेला पुत्र था। बड़े लाड-प्यार से उसे पाला था। उनकी बड़ी साध थी कि पुत्र संस्कृत और ज्योतिष का बहुत बड़ा विद्वान् निकले। इसके लिए उन्होंने राजू को वृन्दावन और हरिद्वार तक के गुरुकुलों में भेजा, पर वह था कि भागता ही रहा, कहीं वह टिकता ही न था। इस तरह वह संस्कृत और ज्योतिष के स्थान पर स्थानीय स्कूल में केवल आठवीं कक्षा तक हिन्दी और अँग्रेजी ही पढ़ सका। फिर घर बैठ गया। इस समय तक राजू की अवस्था पच्चीस वर्ष की हो चली थी। धर्मू पंडित उसके भविष्य को लेकर बहुत ही चिन्तित रहा करते थे।

उस समय तक ठाकुर के मन्दिर का पुजारी भी कोई और था। धर्मू पंडित ने अन्त में हारकर एक नई स्कीम बनाई। बड़ी दौड़-धूप और नाना प्रयत्नों के बाद मन्दिर के पुजारी को निकलवाकर उन्होंने अपने पुत्र राजनाथ को पुजारी के स्थान पर वहाँ स्थापित किया।

और चेतराम के ब्याह के बाद धर्मू पंडित ने राजू का भी ब्याह कर डाला। इतनी मनोकामनाओं की पूर्ति के बाद एक ही दिन की बीमारी में धर्मू पंडित का एकाएक स्वर्गवास हुआ।

पिता की मृत्यु के बाद यद्यपि राजू पैंतीस वर्ष का हट्टा-कट्टा आदमी बन चला था, फिर भी उसे कुछ न सूझता था।

तब चेतराम ने अपना धर्म समझकर राजू पंडित की अनेक प्रकार से सहायता की थी। धर्मू पंडित की सोलही और बर्षी में चेतराम ने खुले हाथ राजू की मदद की थी।

इसके उपरान्त राजू पंडित का आत्म-उत्साह उभरा—जैसे पहली बार उनकी आत्मा जगी। आठों पहर ठाकुरजी के मन्दिर में लगने लगे। कुछ मन्त्र कंठस्थ कर डाले, कुछ भजन और कीर्तन-पद याद कर लिए। मथुरा, वृन्दावन जाकर पुजारियों की नकल कर लाए। 'रामायण', 'सूरसागर' और 'श्रीमद्भागवत' की कथाएँ जान लीं। 'सुखसागर', 'विश्राम सागर', 'नारदमोह', 'गोपी-संवाद', 'राजयोग', 'सांख्ययोग',

'भृगुसंहिता', 'भक्ति-रहस्य', 'निर्गुन पथ', 'हनुमान चालीसा' और अनेक पोथियाँ खरीद ली, और इतनी अथाह पूँजी के साथ उन्होने ठाकुरजी के मन्दिर मे पूजा आरम्भ की कि वे तत्काल ही बस्ती मे चमक गए और गोपालन मुहल्ले मे तो पुज गए। प्रातः, दोपहर और सन्ध्या तीन बार ठाकुरजी की झाँकी बदलने लगे, बड़ी धूम से आरती के शंख और घटियाँ बजने लगीं और सिद्ध हो गया कि राजू पंडित बस्ती के सब पुजारियो और आस्तिको मे श्रेष्ठ है।

इसका फल यह हुआ कि राजू पंडित गली-मुहल्लो मे पुजने लगे। ठाकुरजी पर कई तरह से वर्षा होने लगी—चढावे के रूप मे, आरती और भोग के रूप मे तथा ठाकुरजी के वस्त्रो और आभूषणों के रूप में।

पहले यह केवल चेतराम के घर की पुरोहिती और उसकी दुकान की गद्दी की पूजा करते, अब इनका क्षेत्र बढ गया। अपने गोपालन मुहल्ले के अतिरिक्त बड़ा दरवाजा, किराना मुहल्ला और महाजन टोला तक यह पुजने लगे।

इसके साथ-ही-साथ राजू पंडित का रूप-विन्यास भी निखरा। कलाई मे सोने की चेन वाली घडी, क्योकि ठाकुरजी को समय पर भोग और आरती की समस्या थी, शरीर पर रेशमी, ऊनी अँचला और उसी के अनुरूप दुपट्टा, जो कि शास्त्र कहता था, पैर मे रबर या कपड़े के जूते जिससे गोवध-निषेध का धर्म पलता था। इन सब बाह्य विधानों से राजू पंडित का व्यक्तित्व ठाकुरजी की मूर्ति से लेकर बस्ती की गलियो तक सम्मान पाने लगा।

जिस वर्ष धर्मू पंडित का स्वर्गवास हुआ था, उसी के डेढ वर्ष बाद राजू पंडित के घर मे एक घटना हुई। उनकी पत्नी को, जो सदा कुछ-न-कुछ बीमार रहा करती थी, बच्ची हुई और वह अपने साथ माँ पर ज्वर ले आई—सौरी का ज्वर। तब से राजू पंडित की पत्नी आज तक घर में बीमार पड़ी है। दो-एक महीने तक ज्वर की अनेक दवाइयाँ हुईं, तीसरे महीने मुरादाबाद ले जाकर राजू पंडित ने उसे बड़े

डॉक्टर को दिखाया। डॉक्टर ने फेफड़े की जाँच की और उसे क्षय-रोग घोषित किया।

तो राजू पंडित की पत्नी शारदा घर में क्षय-रोग से बीमार पड़ी थी। अब उसकी कोई विशेष औषधि न हो पाती थी, क्योंकि राजू पंडित अपनी व्यस्तता के कारण घर में बहुत ही कम आ पाते थे और जब कुछ क्षण के लिए आते भी थे, तो न जाने किस ताव में भरे रहते थे। बुढ़िया माँ को कोई आज्ञा देते तो उसके पीछे जैसे कोई आवेश भरा रहता था। जब शारदा अपनी बुझी हुई दृष्टि से उन्हें ताकती या कराहती हुई उनसे कुछ अपने मन की बात कहती, तो राजू पंडित झट कहते, 'सब ठाकुरजी की माया है, वह जैसे चाहे वैसे रखे, आदमी का उनके सामने क्या चारा! राम-राम कहो शारदा, व्यर्थ की बातें मत किया करो—रामनाम सत्य है, वही पति है, वही जीवन है, संसार तो माया है, इसके पीछे क्यों पड़ती हो?" बेचारी शारदा चुप हो जाती, सिर झुका लेती, आँखें आँचल में गाड़ लेती और राजू पंडित अपने मन में कहते, 'ससुरी कहीं की, न जीने में न मरने में, हड्डी की भाँति गले में आ फँसी।'

इस तरह राजू पंडित के घर में ढाई इकाइयाँ थीं—बुढ़िया माँ, रोगी पत्नी और गरीब बच्ची, जो माँ का मुँह देखती और बुढ़िया दादी के आश्रय में पलती। बेचारे राजू पंडित को ठाकुरजी ने बाहर से जितनी सम्पत्ति दी थी, मान और यश दिया था, भीतर घर में उतनी ही विरक्ति दी थी, जैसे यह विरक्ति ईश्वर की दृष्टि से राजू पंडित की भक्ति और अध्यात्म के लिए आवश्यक थी।

३

गोरेमल को चेतराम ने उसी दिन दुकान का हिसाब भेज दिया। गुड़ का सारा ब्यौरा समझा दिया, फोन पर भी उन्हें उत्तर दे दिये गए,

पर गोरेमल को शान्ति न मिली। तब से उसने कई बार फोन किये और चेतराम को परेशान कर डाला।

इसमे कोई विशेष बात न थी, गोरेमल का स्वभाव ही ऐसा था। उसे किसी चीज पर जल्दी विश्वास ही नही होता और ऊपर से शक्की मिजाज का भी था। था तो लखपती और खूब कारोबार फैला रखा था, लेकिन था व्यापार के मामलों मे अव्वल दर्जे का पिस्सू। अपने सामने तो वह किसीको गिनता ही न था। सब मामलों मे, जीवन के हर पक्ष मे उसके निश्चित सिद्धान्त थे, उसमे किसी का प्रभाव पड़ना, उसमे विकास या परिवर्तन होना, असम्भव था।

वह एक से हजार बनाने मे विश्वास करता था, सौ से हजार बनाने मे नही। वह प्राय. चेतराम से असन्तुष्ट होकर कहता था, "लल्ला, अभी तूने जाना ही क्या ? तुमने अब तक रुपये का स्वभाव ही नहीं जाना। लल्ला, रुपया गोल होता है—मतलब कि यह चलने वाला पहिया है—व्यापार इसकी धुरी है, और हम है इसकी गाड़ी को चलाने वाले। हम इसे जितना ही तेज चलायेगे, रुपया उतना ही तेज़ चक्कर खायेगा—एक से हजार चक्कर, हजार मे असंख्य।"

दुकान की जाँच-पड़ताल के लिए एक दिन बिना किसी सूचना के गोरेमल आ पहुँचा। दोपहर का समय था। जिस समय वह सीधे दुकान पर गया, सब-के-सब हड़बड़ा उठे, जैसे प्राइमरी स्कूल मे एकाएक डिप्टी साहब का एक दौरा हो जाय। जो जहाँ था, एक क्षण के लिए वहीं थम गया।

जून के अन्तिम दिन और दोपहर का समय, ऊपर से जब कि दुकान पर खूब काम फैला था, अनाज के आने-जाने की दौड़, ठेले-गाड़ियों की भीड़ से बेहद गर्द उड़ रही थी। गोरेमल किसी अलग कमरे मे आराम करने के बजाय वही दुकान मे बैठा रहा। दोपहर से शाम तक सारा काम देखता रहा और राई-रत्ती के हिसाब पर मुनीमों का भेजा चाटता रहा।

रात के आठ बजे। दुकान पर भीड का काम समाप्त हुआ। केवल दलालों का आना-जाना बाकी रहा और फोन पर बाते करने का सिलसिला बना रहा। उस समय गोरेमल ने चेतराम को अपने समीप बिठाया और असन्तोष के स्वर मे बोला, 'पिछले वर्ष से आज तक की रोकड बही देखने से साफ है कि हमारी फर्म मे कोई विशेष लाभ नही। जहाँ थे हम वही रह गए। इसे व्यापार नहीं कहते लल्ला! हमे और मेहनत करनी होगी, सट्टे भी करने होगे। जरा गौर करने की बात है यह!'

गोरेमल जब चेतराम से बाते करता, तो चेतराम सिर झुकाए, मौन सारी बाते ही सुनता चलता—बीच मे न कोई प्रश्न, न कोई उत्तर। बात यह थी कि कौन उलझे गोरेमल के दिमाग से। इसलिए गोरेमल जब फुरसत देखता तो चेतराम के पीछे लगकर उससे अनवरत बाते करता। उन बातो मे व्यवसाय के मेरुदण्ड से दुनिया की सारी सुनी-सुनाई राजनीति, इतिहास धर्म और न जाने कितनी कल्पित और गढी हुई, इधर-उधर की बातो से बेचारे सीधे साधे चेतराम का माथा घूमने लगता था।

उस रात गोरेमल ने गद्दी पर बैठे-बैठे चेतराम से केवल एक घण्टा बाते की—कम इसलिए की कि वे रहस्य भरी बाते उस फर्म के लिए बहुत ही आवश्यक थी। गोरेमल ने चेतराम को बताया, "देखो चेतराम, समय बुरा आने वाला है। व्यापार के लिए बुरा नहीं, समय के लिए बुरा। बुरे समय मे ही तो व्यापार फूलता-फलता है।"

गोरेमल ने बात और भी बल देकर दुहराई, "समय बुरा आने वाला है। मै कहे देता हूँ चेतराम, चाहे तो नोट कर लो, तीन-तीन अखबार पढ़वाता हूँ। मुझे मालूम है, ये अग्रेज और यह गाधीजी का सत्याग्रह, यूरोप मे लडाई की तैयारी और यहाँ स्वराज्य की माँग, स्वदेशी-आन्दोलन और विदेशी बहिष्कार, गाधीजी के 'यंग इंडिया' का खुलासा मैने अपने एक क्लर्क से सुना है। हाय-रे-हाय! घर की

बिलैया बाघन कूँ नजारा ! अरे ये अंगरेज़ हैं, पीसकर पी लेंगे झोंक देंगे लड़ाई में सारे हिन्दुस्तान को। फिर चौकड़ी भूल जायगी। लेकिन इन बातों से हमारा कोई मतलब नहीं। मतलब सिर्फ इतना कि दूरन्देशी और अपना बिजनेस, समझे चेतराम ? क्या समझे ? समझे ? क्या समझे ?

चेतराम के होश उड़ने लगे। वह बुरी तरह घबड़ा गया। गोरेमल ने हँसकर कहा, "घबड़ाओ नहीं, उसके लिए अभी से तैयारी करनी होगी। उस समय के लिए जो आज ही से तैयार होने लगेगा, वह समय उसके लिए सबसे उम्दा साबित होगा—समझो कि वह जियेगा और बाकी मारे जायँगे। यह जरा गौर करने की बात है।"

उसी बीच फोन की घण्टी बजी। चेतराम घबड़ा गया था। फोन थामते ही उसकी घबड़ाहट क्षण-भर के लिए थम गई। कलकत्ता के व्यापारी ने फोन मिलाया था।

गोरेमल ने गम्भीरता से कहा, "करो सौदा चेतराम ! व्यापारी से कह दो कि हमारे पास सबसे उम्दा गेहूँ का स्टॉक है। हम एकमुश्त लाख-डेढ़ लाख मन गेहूँ का सौदा दे सकते हैं—कह दो चेतराम, ऐसा समय फिर न आयेगा—न यह भाव, न यह क्वालिटी। गौर करने की बात है।" एक 'वैगन' गेहूँ का सौदा तय हो गया।

गोरेमल ने कहा, "बम्बई, मद्रास, कलकत्ता, पटना, हैदराबाद, लाहौर और आसाम तक फैलते रहो चेतराम ! व्यापार का इतना खुला हुआ क्षेत्र आगे हाथ न आयेगा।"

उसी समय सामने से दो दलाल आये। गोरेमल ने अपनी बात बन्द कर दी। चेतराम दलालों से गेहूँ और दाल के भाव और सौदे की बात करने लगा।

गोरेमल ने गद्दी से उठते हुए कहा, "तब तक तुम गद्दी देखो, मैं भोजन कर आता हूँ। और तब तक अगर मुनीम आ जाय, तो तुम भी रोटी खाने झट आ जाना। यह सब जरा गौर करने की

वाते है ।'

गोरेमल जब ड्योढी से आगे बढा, तो उसे अपनी बेटी की सुधि आई । वह इस भाव से मन-ही-मन मे गद्गद भी हो उठा कि उसकी बेटी को पुत्र हुआ है ।

नाती की छठी मे गोरेमल अपनी पत्नी के साथ यहाँ आया था, वरही उसने अपनी ओर मे दिल्ली मे मनाई थी ।

आँगन मे पहुँचते ही देखा, बच्चा दादी की गोद मे पडा सो रहा था । उसके माथे पर हाथ फेरकर गोरेमल ने गद्गद स्वर से कहा, "बडा ताजा बेटा है !" और बडे स्नेह से बच्चे की माँ को आवाज दी, "कहाँ हो रूपा ?"

बेटी बोली नही, चौके मे से भोजन का थाल लेकर निकली और आँगन मे आ बैठी । गोरेमल भोजन करने लगा । रूपा अपने कमरे मे चली गई ।

तब तक सामने से मधु निकली और उसने गोरेमल को नमस्ते की ।

गोरेमल ने आश्चर्य से पूछा, "अरे ! मधु कब आई ?"

दादी बोली, "बहू से लल्ला सँभलतो न रहो, सो चेतराम ने याको बुला लियौ है । याकूं आजु एक माह हो रहो है ।"

गोरेमल चुप रहा ।

रूपा कमरे से आवेश में बोली, "तूही तो बडी सँभालती है ! चुगलखोर कहीं की ।"

उसी स्वर मे वह आँगन मे चली आई, और दादी की गोद मे उसने बच्चे को छीन लिया । बच्चा रो पडा और बेतरह रोने लगा । मधु ने विनय से जब बच्चे को अपने अंक मे लिया तब कही जाकर बच्चा वश मे आया ।

गोरेमल जब खाकर उठा, उस समय बच्चा अपनी बूआ के अंक से लगकर सो गया था । उसी समय बाहर से चेतराम भी आया ।

गोरेमल रूपाबहू के सामने खड़ा कह रहा था, "रूपा, तू अब भी बच्ची ही रह गई! दादी से इस तरह बातें की जाती हैं! तू ही इस घर की मालकिन, तू ही इस पूत की माँ; तू ही सब-कुछ और तू इस तरह! खबरदार, फिर कभी ऐसा बरताव न हो!"

दादी ने चुपचाप चेतराम को भोजन का थाल दिया। गोरेमल मधू बुआ के अंक में सोये हुए शिशु को साध और दुलार-भरी दृष्टि से देखकर फूला न समा रहा था।

दादी से पूछा, 'बच्चे का क्या नाम रखा?"

"बुआ ने कुछ रखो है," दादी ने कहा, "का रखो है रे मधू?"

"मेरे भइया का नाम सूरज है।"

"सूरज! ओहो सूरज!" गोरेमल बहुत प्रसन्न था।

फिर वह अपनी बेटी के पास गया। बेटी पलंग पर चुप रूठी-सी बैठी थी। गोरेमल ने उसके सिर को थपथपाया और स्नेह से कहा, "देख रे सिनी! कितनी भाग्यवान थी तू! ज़रा गौर करने की बात है रे!"

"जी रही हूँ इसलिए भाग्यवान हूँ?"

"वह तो है ही," गोरेमल ने उत्तर दिया, "तू हर तरह से भाग्यवान है। देख कितने चौड़े माथे का तेरा पुत्र है!"

रूपा ने आँसू-भरी आँखों से गोरेमल को देखा और अस्फुट स्वर में कुछ कटु स्वर निकालकर फिर सिर को झुका लिया।

मुँह में पान का बीड़ा लेकर गोरेमल चुपचाप बाहर चला गया। गद्दी पर गाव तकिये के सहारे जा लेटा। कुछ देर बाद चेतराम भी गद्दी पर गया।

गोरेमल ने कहा, "क्यों जी लाला, यह अपनी रुपिया का दिमाग क्यों इस तरह चढ़ा रखा है? क्यों, क्या बात है?"

"कोई बात नहीं," चेतराम ने बड़े अधिकार से उत्तर दिया, "यह घर-बार है, रूठना-मनाना तो लगा ही रहता है—वैसे बात कुछ नहीं

है, सब ठीक है।'

"तुम नालायक हो। औरत को अपने अधिकार मे रखना चाहिए। उसकी एक मर्यादा होती है, उसे वह तोडकर चले तो उसका सिर तोड दो। यह क्या बात? बडे घर की बेटी है तो उसका मिजाज ही न मिले! घर मे बहू-बेटियो का खाने-पीने का दुलार है, और कोई माफी नही, समझे?"

चेतराम कान पर फोन थामे किसी अन्य व्यक्ति से कुछ उत्तर पाने की प्रतीक्षा मे था। बीच-बीच मे वह गोरेमल को इस दृष्टि से देख लेता था जैसे कह रहा हो—'लालाजी, तुम्हीं बताओ मै क्या करूँ?'

कुछ ही क्षण बाद गोरेमल का ध्यान बदल गया और उस पर फिर व्यापार का नशा छा गया। कहने लगा, "देखो चेतराम, बस्ती के सब कच्चे आढतियों से अपने सलूक बनाये रखो। अभी दो वर्ष तक रुपये को न सोचो, केवल अनाज को सोचो। खूब अनाज लो और फौरन व्यापारियो के हवाले करो—अनाज दो, रुपये लो। और सट्टे करने भी शुरू कर दो। डरते क्यो हो? भाव का सारा नक्शा, उसका सारा उतार-चढ़ाव तो मेरे दिमाग मे है—तुम्हे कभी नुकसान नहीं हो सकता।"

"न जाने क्यों सट्टे से मेरा जी भागता है, लालाजी!" चेतराम ने दबे स्वर से कहा।

"तुममे हिम्मत नही है, यह कहो। तुम्हारा संस्कार बनिये का है, परचून का धंधा करते थे न!" गोरेमल ने गम्भीरता से कहा, "जिसके कंधे पर गोरेमल का हाथ हो वह डरे, हद हो गई! बदलो अपने संस्कार!"

गोरेमल बड़ी देर तक गम्भीर रहा। रात के ग्यारह बज रहे थे। चेतराम को नींद आने लगी थी। वह रह-रहकर गोरेमल का मुँह देखता और इस प्रतीक्षा में जी लगाये रहा कि गोरेमल को भी नींद आ जाय।

साढे ग्यारह बजते-बजते गोरेमल सामने मैदान के पलग पर सोने गया। चेतराम फोन के पास बैठा रहा। तब तक गोरेमल ने उसे अपने पास बुलाया, "जरा बैठ जाओ! देखा, दो वर्ष तक तो हमे खुल-कर व्यापार करना है। उसके बाद हमे पैसों को खींचना होगा—सारी रकम अपनी मुट्ठी में। क्योंकि जब लडाई छिडेगी तो हमारे पास अनाज न होगा। लेकिन उस समय जिसके पास ठोस रकम होगी, वह तब भी फूले-फलेगा, समझे। बस, हमे इसी पैमाने और नज़र से सारे काम करने होंगे।"

चेतराम चुपचाप गद्दी की ओर जाने लगा। गोरेमल ने फिर टोका, "लाला, तुम सोते कहाँ हो?"

"गद्दी पर!"

"बहुत ठीक, 'क्रॉप सीजन'-भर हर व्यापारी और आढतिये को गद्दी पर ही सोना चाहिए—न जाने कब कैसी फोन की घटी बजे! बहुत ठीक, गद्दी पर ही सोना चाहिए और कभी-कभी भीतर भी सो लिया, यह क्या कि गद्दी सूनी और घर मे बना परचूनी!"

चेतराम लजा गया। गद्दी के पास आया। नज़र बचाकर उसने एक बीडी जलाई और चुपचाप पीने लगा।

बीडी समाप्त करके जब वह गद्दी पर गया, थकान से चूर-चूर हो रहा था।

आँखें मूँदे वह मसनद के सहारे नि:स्पन्द लेटा रहा। ऊपर बिजली का पंखा चल रहा था। क्षण ही भर मे उसकी आँख लग गई और वह उडते हुए अस्पष्ट स्वप्नों मे देखने लगा—संसार में युद्ध, देश मे लडाई, बाज़ार बन्द, बस्ती में अभाव, घरों मे लडाई और सब बन्दी। उसका बच्चा नौजवान होकर युद्ध के मोरचे पर जा रहा है।

चेतराम स्वप्न मे डरकर जाग गया। हडबडाकर गद्दी से उठा, सोते हुए गोरेमल को देखा। दीवार की घडी मे एक बज रहा था।

माथे के पसीने को धोती से पोछते हुए, दुकान से खोजकर उसने गेरू का एक टुकडा उठा लिया। गद्दी पर आया, पीछे दीवार के सामने खडे होकर उसने गेरू मे तीन बार लिखा—लाभ, ॐ शुभ, जै लाभ !

तीन दिन बाद गोरेमल दिल्ली चला गया। उस दिन दोपहरी मे चेत-राम ने गद्दी पर ही अपनी सारी नींद पूरी की, बेखबर सोता रहा। साढे पाँच बजे वह मुनीम द्वारा जगाया गया, लायलपुर से फोन आया था।

उसी समय दुकान पर राजू पडित दिखाई दिए। उनके दाये हाथ मे पीले वस्त्र मे लपेटा हुआ सम्भवत कोई ग्रन्थ था। चेतराम ने आदर से उनका गद्दी पर स्वागत किया।

राजू पडित ने अपने दाये हाथ को ऊपर उठाये रखा। पता चला कि वह कोई ग्रन्थ नहीं, बल्कि चेतराम के बच्चे की जन्म-पत्री थी, जोकि राजू पंडित ने सवा महीने मे शोधकर बनाई थी।

उन्होंने चेतराम से कहा, "चलो, आँगन मे चौक पुरवाओ, पहले जन्म पत्री और बच्चे की पूजा होगी, फिर बच्चे की माँ और तुम्हें इसका फल सुनाऊँगा।"

एक क्षण रुककर उन्होने स्वर मे अतिरिक्त बल देकर कहा, जैसे विवश हो गए हों, "ऐसी जन्म-पत्री न मैने आज तक बनाई है, न कहीं देखी है। क्या बात है, ऐसा राजयोग तो कही घटता ही नही !"

हर्ष से पागल होकर चेतराम घर गया। बच्चा अपनी बूआ की गोद मे खेल रहा था। दादी आँगन मे बैठी लोई-दीया बना रही थी और रूपाबहू अपने कमरे मे पान के बीडे लगा रही थी।

सबके बीच में आकर वह बोला, "बच्चे की जन्म-पत्री बनकर आई है। झट आँगन में चौक पूरो। घी के दीप, कलश मे जौ भरकर आम

के पत्ते और उस पर एक नारियल का गोला, और उस पर सवा गज रेशम का टुकड़ा।"

रूपा ने आँगन मे आकर पूछा, "किसकी जन्म-पत्री ?"

"हमारे बच्चे की।"

"किसने बनाई है ?"

"पुजारी राजू पंडित ने। वह दुकान पर लिये बैठे है।"

"मुझे नहीं चाहिए वह जन्म-पत्री, कह दो उसमे आग लगा दे।"

चेतराम डर से काँप गया।

"कोई पूजा न होगी। राजू पंडित मेरी देहली पर पाँव नहीं रख सकता।"

चेतराम जड़वत् खड़ा रहा।

"वह झूठा है, उसे कुछ नहीं आता-जाता, पाखंडी कहीं का !" रूपाबहू के स्वर मे कुछ अजीब कटुता थी।

चेतराम ने जैसे दया माँगते हुए कहा, "नहीं, हमे ऐसा नहीं सोचना चाहिए। जिसे दुनिया माने, वह हमे मान्य होना चाहिए। इन बातों मे क्या रखा है ! जन्म-पत्री लो ले लो।"

"नहीं चाहिए," रूपा ने जोर देकर कहा।

"कम-से-कम जन्म-पत्री का फल तो सुन लो।"

"मुझे सब मालूम है, मुझे उसका बताया हुआ फल नहीं चाहिए।"

चेतराम विमूढ-सा खड़ा देखता रह गया। आँगन की मधू बुआ, दादी, घर का कोना-कोना, सब चुप पड़े थे।

रूपाबहू ने कहा, "जन्म-पत्री की ही तुम्हे भूख है तो किसी और से बनवा लो और अकेले खूब जी भरकर उसके फल सुनो।"

"जरा सोचकर देखो, यह सब तुम क्या कह रही हो ?" चेतराम ने पीड़ा से कहा, "इस सबका क्या मतलब है, क्या प्रभाव होगा, कभी इसे सोचा भी है ? ज़रा सोचो इसे !"

"सोचो जाकर तुम !"

"मै तो सोचता ही हूँ, लेकिन · ।"

रूपा उबल पडी, "जाकर तुम गद्दी पर सोचो, बडे सोचने वाले हो !"

कटुता से भरकर रूपा अपने कमरे मे लौट गई । चेतराम ठगा-सा कुछ देर वही खडा रहा, फिर धीरे-धीरे बाहर निकल गया ।

उसका चेहरा उतर गया था । स्वय चेतराम को अनुभव हुआ, उसका मुख इतना छोटा हो गया है कि वह राजू पडित को दिखा नही सकता था ।

छूटते ही राजू पडित बोले, "चलूँ भीतर, हो गया सब प्रबन्ध ?"

चेतराम ने कहा, "घर मे पता चला कि आज दिन अच्छा नही है । लाइय, जन्म-पत्री मै लिये ले रहा हूँ, फल फिर कभी सुन लेग ।"

राजू पडित कातर दृष्टि से चेतराम का मुँह देखने लगे ।

चेतराम ने सामने की सन्दूकची से कुछ मुट्ठी मे लिया और चुपचाप उसे राजू पडित की दाई हथेली मे भर दिया ।

राजू पडित ने देखा, उनकी मुट्ठी में इक्यावन रुपये हैं । उन्हे यह प्रतिदान अच्छा न लगा । बडी विनम्रता से रुपयो को लाला के हवाले करते हुए उन्होंने कहा, "उस बच्चे को यह जन्म-पत्री मेरी भेट है, मै इसके लिए किसी तरह की दक्षिणा नहीं ले सकता ।"

"लेकिन यह कैसे हो सकता है ? जन्म-पत्री और कोई दक्षिणा नहीं ?"

"मैं बहुत सतुष्ट हूँ लाला ! समझिये कि मुझे दक्षिणा मिल गई है ।"

और राजू पंडित ने जन्म-पत्री को लाला की अजलि में रख दिया । चेतराम आत्मिक आह्लाद से पिघलता जा रहा था, पर उसके मन पर कहीं असन्तोष भी बरस रहा था । उसने आग्रह से कहा, "पंडितजी, कुछ तो आपको लेना ही होगा ।"

"अच्छा तो यही सही, जाइये बहू के हाथ का एक बीड़ा पान लाइये ।"

चेतराम बच्चों की तरह खुलकर हँस पडा। भीतर गया, लेकिन रूपा से कुछ कहने की उसकी हिम्मत न हुई। स्वय पनडब्बे पर हाथ लगाया, देखा, भीतर एक बीडा पान लगा रखा है, उसे तश्तरी पर रख चेतराम बाहर आया। राजू पण्डित को पान देकर फिर शान्त रह गया।

जाते-जाते राजू पण्डित ने चेतराम से कहा, "लाला, मैंने अब तक बच्चे को नही देखा, खूब स्वस्थ, हृष्ट-पुष्ट है न?"

"सब ठाकुरजी की कृपा है।" चेतराम गद्‌गद् हो रहा था।

"ठाकुरजी के दर्शन करा दो, उनकी आरती में बच्चे के माथे चढा दूँगा। बहुत महात्म है इसका लालाजी, और आपका पुत्र! ओ हो हो, क्या जन्म-पत्री पाई है—राजा जैसे संस्कार!"

राजू पण्डित के चले जाने के उपरान्त चेतराम का जी गद्दी पर न लगा। जन्म पत्री को हाथ में लिये वह ठाकुरद्वारे की ओर चला गया।

४

जुलाई के बीतते ही बस्ती का 'क्रॉप सीजन' प्राय. समाप्त हो गया। वर्षा आरम्भ हुई और व्यापार की गरमी सर्द पड़ गई। बस्ती का ठलवार शुरू हुआ।

लेकिन चेतराम की दुकान पर ठलवार के दिनों मे भी कार्य रहता था—थोडा-बहुत रोजगार का, और कुछ चेतराम के स्वभाव के कारण भी। और उस स्वभाव के पीछे सस्कार डालने वाली शक्ति थी—गोरेमल का बेढब व्यक्तित्व। गोरेमल का विश्वास था कि 'हम बडे व्यापारी और महाजन है तो क्या ठलवार के दिनो मे बैठे-बैठे अपना खाएँ? नही। इन दिनों जब अपनी दुकान के काम से फुरसत मिले तो अपने आदमियों और अपनी मेहनत से बस्ती के चार-छः वकील, मुखतार, डॉक्टर, हकीम, मास्टर, प्रोफ़ेसर, थाना-पुलिस, डाकख़ाना-तार, स्टेशन,

तहसीलदार, एस० डी० ओ०, मुन्सिफ और रजिस्ट्रार आदि को घी, गेहूँ, दाल, चावल सप्लाई करो। व्यापार-का-व्यापार और ऊपर से मन-भर का एहसान। न जाने किसका कौन एहसान और जान-पहचान किस दिन, किस घड़ी काम आये! यह तो दुनियावी बैंक है, जब जरूरत पड़े तब हाथ-के-हाथ नकद भुना लो।'

ऐसे ठलवार के दिनों में बस्ती के एक मुहल्ले में अगर मथुराजी की नौटङ्की चल रही होती, तो दूसरे में राधेश्याम का रामायण-पाठ होता। गोपालन मुहल्ले में अगर किसीकी दुकान पर श्रीमद्भागवत की व्यास-गद्दी लगी होती तो बड़े दरवाजा में कठपुतली का नाच हो रहा होता। किराना मुहल्ला में अगर किसी महात्मा का सत्संग चल रहा होता तो महाजन टोले के मैदान में छोटे-मोटे सरकस का तम्बू अवश्य लगा रहता।

ठलवार में इन तमाम कार्यक्रमों के ऊपर भादों-मास में मंदिर और ठाकुरद्वारों के झाँकी-समारोह इस बस्ती के जीवन-उत्साह के उदाहरण थे। उस समय, गली-मुहल्लों के अन्य मनोरंजन के कार्यक्रम स्थगित कर दिये जाते और पूरी शक्ति के साथ लोग झाँकी निकालने में लग जाते थे। इसकी सफलता पर मुहल्लों के आत्म-सम्मान की जैसे होड़-सी लगती थी।

इस दिशा में अपने गोपालन मुहल्ले का नायक चेनराम ही समझा जाता था।

ठाकुरद्वारे में अगले दिन से झाँकी आरम्भ होने को थी। इस वर्ष रूपाबहू ठाकुरजी के लिए नये वस्त्र न बना सकी, न कोई नया आभूषण या मुकुट ही दे सकी।

झाँकी सजाने और तरह-तरह के परदों के लिए रूपाबहू की कीमती साड़ियाँ और जड़ाऊ वस्त्र जाते थे। कल शाम राजू पंडित ने बहू के पास आभूषण और वस्त्रों के लिए कहला भेजा था। बहू ने बात तक न की, कुछ सहयोग देने की बात तो दूर।

आज दोपहर, रूपाबहू के पास चेतराम आया। झाँकी की सजावट का प्रश्न उसने बहू के सामने रखा।

बहू आगबबूला हो गई, चेतराम से कोई तर्क न हुआ। वह दूसरी बार इस विषय में विनय तक न कर सका।

उलटे पाँव वह लौटकर ठाकुरद्वारे आया, राजू पंडित से बोला, "तुम्हारी पत्नी के भी तो ब्याह और काम-काज के धँराऊ वस्त्र होगे, इस वर्ष उन्हीं से क्यो न काम चलाया जाय ?"

राजू पण्डित बहुत देर तक चुप रहे, रुँधे कण्ठ से बोले, "तो इस वर्ष ठाकुरजी की झाँकी न होगी, झाँकी नहीं होगी !"

"क्यों, ऐसा क्यों ? ऐसा कभी नहीं हो सकता पुजारी ! क्या चेतराम ।"

"नहीं लाला ! छोड़ो इस वर्ष।"

चेतराम ने हँसकर पुजारी का कन्धा झकझोर दिया। उन्हे साथ लिये बाजार गया और अपनी आवश्यकतानुसार कुछ कपड़े तो उसने तुरन्त ख़रीद लिये, कुछ किराये पर लिये और महाजनटोले के मन्दिर की झाँकी बनाने वाले कारीगर को फोड़ा और सब-कुछ साथ लिये-दिये वह अपने ठाकुरद्वारे लौटा।

चेतराम के अथक प्रयास और परिश्रम से ठाकुरजी की इस वर्ष की झाँकी पिछले वर्षों से अगर अच्छी नहीं तो बुरी भी न थी, पर राजू पंडित का जी कुछ बुझा-बुझा-सा रह गया।

झाँकी का सप्ताह बीत गया, बस्ती का एक बहुत बड़ा समारोह अपने समस्त राग-रंगों के साथ मनाया गया, पर रूपाबहू एक दिन के लिए भी अपने घर से बाहर न निकली। कभी भूलकर भी आँगन, छत या खिड़की से बस्ती की ओर तक न झाँकी।

एक रोज, ठाकुरद्वारे मे सन्ध्या को आरती के समय राजू पंडित को छोड़ वहाँ कोई और न था। पिछवाड़े से मधू बुआ निकली और यों ही सहज ढंग से ठाकुरद्वारे में चली गई। अंक मे लाडला शिशु भी

था। बुआ ने देखा, आरती समाप्त हो गई है और राजू पंडित आँख मूँदे एकाग्र मुद्रा में ठाकुर की प्रतिमा के सामने चुपचाप बैठा है।

बुआ ने देखा, राजू पडित की बन्द आँखो से आँसू बरस रहे है। देखते ही वह नीचे उतरने लगी, तभी राजू ने उसे पुकारकर रोक लिया, जैसे सब कुछ एक ही क्षण मे भूलकर वह फिर मूल राजू हो गए। स्वय बढ़कर बच्चे को बुआ के अक से ले लिया और ठाकुर की प्रतिमा के सामने अस्फुट स्वर मे सम्भवत कुछ मन्त्र पढने लगे। बुआ के अक मे बच्चे को वापस देकर वह फिर से ठाकुरजी की आरती करने लगे—बच्चे की ओर से ठाकुरजी की आरती की और उस घडी वह अपनी पूरी श्रद्धा और विनय से झूम झूमकर कीर्तन करने लगे।

स्वय बच्चे के माथे पर आरती उतारी, उसके ललाट पर अर्चना का तिलक लगाया, होठों पर चरणामृत की पवित्र बूँदें बरसी। फिर वह बच्चे को बार-बार अपने अक मे लेकर उसे आँखो से दुलार करते, चूमते-पुचकारते रहे।

रूपाबहू के लिए अलग एक चाँदी के पात्र मे प्रसाद और चरणामृत देकर वह मधू बुआ से बोले, "मधू, इस प्रसाद को इसी भाँति तुम बच्चे की माँ को दे देना।"

"नहीं पुजारी बाबा, यह मेरे मान का नहीं।"

"क्यो, क्या बात है? बताओ न मधू बेटी, क्या है?"

"पता नहीं, भाभी से बोलने की मेरी हिम्मत ही नहीं होती। और वह किसीका दिया-लिया स्वीकार नहीं करतीं। झाँकी के दिनों मे भइया रोज़ भाभी के लिए प्रसाद ले आया करते थे, लेकिन भाभी ने उसे कभी देखा तक नही, छूने को कौन कहे!"

"तबियत तो ठीक है न? खाती-पीती है न?"

मधू को देर हो रही थी, वह बिना कुछ उत्तर दिये घर की ओर मुडी। पुजारी ने देखा, रूपाबहू का प्रसाद उसके सामने पड़ा है।

राजू पंडित की दृष्टि प्रसाद की उस थाली में गड गई—गडी रही।

और वह अपनी एकाग्रता मे देखने लगा, रूपा बैठी है—कंचन के थाल मे कपूर की तरह।

राजू पडित ने बढकर प्रसाद को अपने माथे ले लिया। ठाकुरजी के पास आया और उनके चरणों मे रखकर उस पर उन्होंने अपना माथा टेक दिया।

उसी बीच पुजारी की माँ आई—अंक मे पुजारी को बच्ची थी।

राजू ने अपनी बच्ची को देखा। वह बहुत देर से घर में रो रही थी। उसकी आँख आई थी।

माँ ने कहा, "बताओ कैसे घर का काम-काज हो? कौन तुम्हारी बच्ची देखे, कौन भोजन बनाए?"

राजू अपने-आप मे भरा था। उसके मुँह से कुछ न निकला। वह तेजी से बाहर निकला और गली के मोड से चलकर न जाने किधर चला गया।

मधू जब आँगन में गई, रूपा उसे सामने खडी मिली। बच्चे के मस्तक पर तिलक देखते ही वह उबल पडी।

"कहाँ ले गई थी बच्चे को?"

मधू बुआ घबरा गई, उसे कोई जवाब न सूझा।

"क्यो ले गई इसे ठाकुरद्वारे मे? किसने तुमसे कहा था? तिलक लगवाकर लाई है!"

बच्चे को बुआ के अंक से छीनकर उसके माथे को रूपा ने आँचल से पोछ दिया, "इसे चरणामृत भी पिलाया होगा! बोलती क्यों नही? जबान कट गई क्या?"

मधू बुआ नि.शब्द रो रही थी। तभी मगूदादी दौड़ी, पूरी शक्ति से चीख़कर लड बैठी, "कौन होती है तू मेरी बेटी को जे तरो डाँटने वाली? ले जो मार अपन बेटन कूँ, बाप रे बाप, गज़ब हो गई!"

"यह क्यों ले गई मेरे बेटे को ठाकुरद्वारे मे ?"

"तो आजुन से नाय छुएगी वो, ले जो छप्पर पै रखु! बेटा बेटा • बेटा! तुझ सरीखो तो कोऊ माँउ ही न ही!"

"नही, तू ही तो जनी है!"

"नही, नही मै कूँ! मेरो से ही आग लाई, नाम धरो वसुन्धरा!"

मधू का हाथ खींचकर, दादी उसे दूर हटा ले गई, "जे आवै दाढी-जार चेतराम, मेरी बेटी कूँ लौंडिन बनाकर लाओ हे! जे होगी सो होगी अपनो बडो बाप कै बेटी। आज मरो कल दूसरो दिन!"

मधू बुआ खुरजा मे ब्याही थी। उसके ससुर वहाँ घी के व्यापारियों मे मुख्य थे। मधू का पति ईशरी एफ० ए० प्रथम वर्ष तक पढा हुआ था, इसलिए बाप के कारोबार मे उसका जी न लगता था। वह किसी दफ़्तर में क्लर्क बनने की साध रखता था। इसी समस्या पर पिता से उसकी न पटी। पिता एक ऊँचे दरजे का सौदागर बनाकर उसे नगर की म्युनिसिपैलिटी का चेयरमैन देखना चाहता था।

मधू से उसको शादी हुए आज आठ वर्ष हुए। उसकी गोद अब तक खाली थी। सास-ससुर मन-ही-मन उससे कुछ असन्तुष्ट रहते थे—पिछले वर्ष से तो और भी। ईशरी के सामने माँ-बाप ने दूसरी शादी के लिए बड़े ज़ोर का प्रस्ताव रखा, पर वह किसी तरह भी सफल न हो सके। ईशरी इसके विरोध में अडा था। माँ-बाप ने इसका आशय यह लगाया कि हो-न-हो बहू ने मेरे पुत्र को ख्वामख्वाह अपनी मुट्ठी में बाँध रखा है। सास तो इस विश्वास पर आ जमी थी कि बहू ने पूत पर कुछ जादू-टोटका कर रखा है।

लेकिन चेतराम को अपनी मधू बहन सबसे अधिक प्यारी थी। बेटी की तरह उसे दुलारता था।

रात को जैसे ही चेतराम घर में आया, दादी आवेश मे भरी

उसके पास आने लगी। मधू रास्ते मे आ खडी हुई, माँ को रोकने लगी।

उसी क्षण मधू को आभास हुआ कि बच्चा अब सोकर उठा है और माँ के पास रो रहा है। वह सहज आग्रह से दौडी। रूपाबहू के कमरे से बच्चे को उठा लिया।

चेतराम आँगन मे आ खडा हुआ था। दुलार से बोला, "मधू, तुम्हारा यह सूरज बडा बदमाश हो गया है, तुझे पहचानने लगा है, नहीं तो यह शरारतन रोता है।"

मधू पास चली आई, बच्चे को दुलारती हुई बोली, "भइया, तुम मेरे सूरज का नाम नहीं ले सकते, यह तुम्हारा जेठा पुत्र है।"

कहकर मधू हँस पडी, चेतराम को भी हँसी आ गई। वह उसी बीच कहने लगा, "तुझे यह बहुत दिक करता होगा, हाँ, अच्छा इसे सँभालने के लिए कोई अच्छी नौकरानी रख ली जाय ?"

उसी बीच दादी फूट पडी, "मुफ्त में इतनी अच्छी नौकरानी ना मिलेगी तुझे !"

"क्या कह रही है तू, माँ ?" चेतराम घबडा गया।

"कुछ नहीं, यह मजाक कर रही है भइया !"

"मज़ाक नही तेरो सर कर रही हूँ !" दादी ने गुस्से मे कहा, "मेरी बेटी को इसीलिए तूने यहाँ मगाओहे ?" माँ को सँभालकर मधू उसे एक किनारे ले जाने लगी, और समझा-बुझाकर उसे कमरे मे कर आई।

इस बीच चेतराम अपने-आप सब-कुछ समझ गया और स्वय मे पी भी गया, और जब मधू अंक मे बच्चे के साथ उसके पास लौटी तो वह एक अजीब तरह से हँसने लगा, हँसता रहा, जैसे अपना कुछ रँग रहा हो, कुछ छिपा रहा हो और सबसे ऊपर अपनी लाडली बहन के मन पर प्यार-सा कुछ बरसाना चाह रहा हो।

लेकिन हँसी की बनावटी तरलता में खिसियाहट की धूल उभर

आई और वह चुप हो गया। आँगन मे चौके मे गया, फिर न जाने कब बाहर निकल गया।

मधू दादी के कमरे मे गई।

दादी भरी बैठी थी, उबल आई, "जी नहीं मानो न! फिर ले लियो लल्ला कूँ!"

मधू मुस्करा दी, "यह बच्चा पहले हमारा है, फिर भाभी का!"

सहज भाववश दादी ने हाथ बढाकर बच्चे को अपनी गोद मे ले लिया, तब मधू को हँसी आ गई और उसे छिपाने के लिए वह आँगन मे भागी।

कई दिन के बाद एक दुपहरी मे, जब रूपा ने न जाने किस पर क्रोध करके पूरे घर को अपने सिर उठा रखा था, मधू बुआ जी बहलाने के लिए राजू पण्डित के घर की ओर गई। उसे राजू पण्डित की बीमार पत्नी शारदा से बहुत मोह था।

उस दुपहरी मे बेहद उमस हो रही थी। पलंग से लिपटी हुई शारदा के पास कोई नहीं आता, इसलिए उसका स्वभाव बन गया था कि वह एकटक जैसे अपने एकाकीपन को ही देखा करती थी।

राजू पण्डित कहीं दरबार करने गये थे। उनकी बच्ची, जिसकी माँ शारदा थी, फर्श पर खेलती खेलती नंगे बदन सो गई थी।

मधू जब उस कमरे मे गई, उसने देखा, नि शक्त माँ पलंग पर औंधी पड़ी हुई अपने आँचल से बच्ची को पंखा झल रही है।

तेज़ी से आकर मधू ने बच्ची को अंक मे ले लिया और आँचल से धूल झाडने लगी। शारदा जाग-सी गई, जैसे वह जड़ से चेतन हो गई।

मधू पास बैठ गई, हँसकर बोली, "चाची, तुम एक दिन ज़रूर अच्छी हो जाओगी।"

"इस जन्म के बाद ही होऊँगी बेटी! ''क्यों ऐसी दुपहरी में घर से निकलती हो?"

"कई दिन से तुम्हे देखने को जी चाह रहा था चाची !"

शारदा भरी बदली की तरह बरस आई, "मरे को क्या देखना बेटी ! मै तो धीरे-धीरे राख हो रही हूँ !" अच्छा, छोडो इन बातो को, अच्छी तरह से हो न ?"

"बहुत अच्छी।"

"रूपाबहू का बच्चा तो बैठने लगा होगा, कैसा है ? मैंने तो अब तक देखा भी नही, लाना किसी दिन, हाँ !"

"लाऊँगी।"

"नाम क्या रखा है ?"

"मैने ही सूरज रख दिया है।"

"बडा सुभागा है। " शारदा एकाएक चुप हो गई, फिर भाव मे आकर बोली, "इस बच्ची का भी नाम तुम्हीं रख दो बेटी !"

"नही चाची, इसका नाम राजू चाचा रखेगे—खूब शोध विचार कर।"

"आग लगे उनके शोध-विचार पर।" मेरा क्या नाता बेटी !"

मधू बुआ उदासी से चुप हो गई। शारदा उसे बुझी-बुझी आँखों से देखती जा रही थी। इस दृष्टि मे जैसे अनेक स्वर हो, और स्वरो मे अनेक अभिलाषाएँ, साध, इच्छा और अभुक्त स्वप्न।

मधू बुआ ने बच्ची को चूमते हुए कहा, "इसका नाम सन्तोष रख दो चाची !"

"देखो न, कितना सही नाम रख दिया तुमने ! सन्तोष !"

और उसने प्यार से बच्ची को अपने अक मे लेना चाहा, बच्ची ने विरोध किया। बुआ के अङ्क को वह छोड ही न रही थी, जैसे उसने माँ को जाना ही नही। माँ को जानने के लिए, माँ की आत्मा की डोर से बँधने के लिए छाती का दूध चाहिए था, पर बच्ची के जन्मते ही प्रकृति ने उसे छीन लिया था। शारदा रो पडी, "देखो न बेटी, जिसे जन्म देकर इस व्याधि में फँसी, वह भी मुझे नहीं पहचानती।"

"जब बडी होगी तब पहचान जायगी चाची !"

"तब तक मै कहाँ रहूँगी बेटी, राख को ठण्डी होने मे कितनी देर !"

कुछ क्षण की उदासी के बाद शारदा एकाएक मुस्करा पडी और साथ-ही-साथ उसका कण्ठ भर आया, "मुझे बडी साध लगती है कि अपने हाथो इस घर को लीपती-बुहारती, अच्छे-अच्छे भोजन बनाती, और जी-भर सबको खिलाती, फिर इस मुहल्ले की सारी औरतो को संग लेकर ढोलक पर गीत गाती ।"

"चाची, तुम्हे गीत याद है ?"

"बहुत-बहुत, बहुत याद है—सब मेरे भीतर भरे है । इतने है कि मेरा दम फूल जाता है, लेकिन आज तक मै अपने कोई भी गीत न गा सकी । सब भीतर-ही-भीतर सुलगते है ।"

"चाची, तुम मुझे लिखवा देना, मैं सब याद कर लूँगी ।"

"तुम्हारी ससुराल में खूब गीत गाये जाते हैं न । तुम खूब गाती होगी !"

"मेरी छोडो चाची ! मै गाती नही, लेकिन गीतो से मोह है मुझे ।"

उसी समय सामने राजू पंडित दिखाई पडे । पूरे चेहरे पर हँसी बिखरी थी । उन्हे देखते ही मधू पलंग से उठ खड़ी हुई और बाहर जाने लगी ।

"क्यों, मेरे आते ही भाग रही है बेटी ?"

"बड़ी देर से आई हूँ ।"

"नैहर में कि ससुराल में ? यहाँ तुझे कैसी देर-सबेर ?"

"नहीं चाचा, घर बच्चा रो रहा होगा ।"

"माँ के रहते बच्चा रो रहा होगा ? अजीब बात है !...क्या हो गया है रूपाबहू को, कुछ समझ मे ही नही आता । शायद कुछ तबियत ख़राब रहती है । सुना है, सिर मे चक्कर आता है ।"

मधू बुआ चुप खड़ी थी ।

"सब व्याधियों की औषधियाँ भी है," राजू पंडित ने गम्भीरता

से कहा ।

तभी शारदा ने बात छीन ली, "लेकिन् मेरी व्याधि की औषधि तेरे पास नही है. क्यो ? चुप क्यों हो गए ?"

मधू बुआ धीरे से बाहर निकल गई ।

शारदा ने टूटते स्वरों को गम्भीर बनाकर कहा, "बस्ती के सबसे बडे पुजारी, सबसे बडे पंडित और इतने प्रसिद्ध वैद्य के सुपुत्र तुम, और मै तुम्हारी पत्नी, क्यो ? सत्य है कि नही ?"

"बस सारा सत्य तुम्ही तो हो, अभागिन कही की !" राजू पंडित का स्वर उपेक्षा से तिक्त हो आया, "जब से इस घर मे पाँव रखा, घर को अस्पताल बना दिया, जीना दूभर हो गया ।"

"तुम्हारे जीने मे क्या कमी है ? मै अभागिन हूँ अपनी जगह । मैं उसे अकेले भोग भी रही हूँ, तुमसे कभी बटाऊँगी नही । तुम बाहर-बाहर अपना सारा राज भोगो, खूब भोगो, लेकिन एक दिन जब मैं न रहूँगी, अकेली तुम्हारी यह गरीब बेटी रह जायगी, तब तुम सोचोगे कि मै अभागिन तो जरूर थी, पर थी कुछ ।"

"इसके माने मै कुछ नही हूँ, तू चाहती है कि मै भी तेरी चारपाई से लगकर मर जाऊँ·· यही चाहती है न ?"

"पता नही क्या चाहती हूँ !···लेकिन मै क्या चाहती हूँ, तुम ईश्वर के नाम पर इसका अनुमान न लगाओ । चले जाओ यहाँ से, जाओ घूमो कही—कथा-वार्ता करो, शास्त्र की बाते सिखाओ ।"

राजू पडित सुलगकर रह गए । उनका जी हो आया कि बोलने वाली को ऐसा झापड मारा जाय कि कभी उसकी जबान न हिले ।

५

गोरेमल ने व्यापार के सिलसिले मे चेतराम को दिल्ली बुलाया । तीसरे दिन जब वह बस्ती लौटा, दादी ने याद दिलाया, उसका बेटा दो बर्ष

का हो गया। चेतराम को और कुछ न सूझा, शाम को उसने धीमर-टोले के सारे बच्चो को दावत दे दी।

बच्चो को पूरी और खीर खिलाई गई। चेतराम अपने सूरज को अक मे लिये बैठा रहा और उसने एक-एक बच्चे के मुख से यह कहते सुना, 'भइया जीवे लाख बरीस।'

इस समारोह मे मधु बुआ न रही, चेतराम को उसकी कमी बेहद खली। आज चार महीने हुए, ससुराल वालो ने बुआ की विदाई ज़बरन करा ली थी।

तब से बच्चे को बहुत तकलीफ थी। वह अक्सर रोता रहता था, यद्यपि चेतराम ने केवल उसे सँभालने के लिए तीन रुपये पर एक नौकरानी रख ली थी—नाम था, दसिया। बीस-बाईस साल की उसकी अवस्था थी। दाई आँख से वह कानी थी, लेकिन खुले रग की थी।

रूपा ने बिना किसी विरोध के बडे मन से दसिया को नौकरानी रख लिया था, यद्यपि पूरे एक हफ़्ते तक बच्चा उसकी गोद में न जा सका था। वह उसे देखते ही रोकर भागने लगता था।

इस तरह बच्चे के लिए नौकरानी ज़रूरी थी, पर बच्चे के सँभालने का कुछ-न कुछ दायित्व चेतराम पर आ पड़ा था।

मई के दिन, क्रॉप सीज़न आ गया था। इस वर्ष किसानो के घर ख़ूब पैदावार थी। गेहूँ, मटर, अरहर और सरसो मे और सस्ती आने वाली थी। इसलिए चेतराम आजकल अभी केवल आढ़त का काम उठाये हुए था। गोरेमल ने उसे बताया था, मई के अन्त तक अनाज के भाव निश्चित हो जायँगे, तभी अपनी बिक्री के लिए अनाज इकट्ठा करना होगा।

गोरेमल ने न जाने किस सूत्र से यह भी बताया था कि जुलाई-अगस्त में भाव दो चार आने ऊपर चढ़ेंगे, पूरी उम्मीद थी कि पूर्वी ज़िलों तथा बिहार-आसाम में बाढ़ आयेगी। चेतराम ने गोरेमल के

इन मन्त्रो को अपने मन की तिजोरी मे बन्द कर रखा था और उसी के प्रकाश में वह मई के महीने का व्यापार चला रहा था।

गोरेमल के समझाने-बुझाने से नही, बल्कि उसकी आज्ञा से इस वर्ष चेतराम सट्टा करने को भी तैयार हुआ था। इन सारे रहस्यों को चेतराम इस तरह घोटे बैठा था, जैसे कोई साँप किसी मेढक के बच्चे को निगल गया हो।

आजकल चेतराम अपने किसी भी कच्चे आढतिये या दुकान के दलाल से पूरे मुँह बात नही करता था। जबान ही तो है, कौन ठिकाना! कही निकल गई दाये-बाये! इसलिए चेतराम अपनी अन्तरात्मा से बडा ख़बरदार रहता था। बात यह भी थी कि वह अपने स्वभाव से बेहद सीधा था।

मई बीतते-बीतते चेतराम ने अनाज लेना आरम्भ कर दिया। जब सारे गोदाम भर गए, तब उसने बडी कोठी वालो से दो गोदाम किराये पर लिये और उनमे भी गेहूँ भर लिया।

एक दिन चेतराम पूजा-पाठ करके हनुमान कुटी के दर्शन और ठाकुरद्वारे मे माथा टेकने के बाद ठीक दस बजे अपनी गद्दी पर बैठने जा रहा था। पहले ही फेरे मे उसे सामने शभू, श्यामलाल और नैनूमल ये तीन दलाल दिखाई दिए। वे चेतराम से कुछ सौदा कराने के लिए उसकी राय लेने आये थे।

चेतराम ने उन्हे अपने पास बिठा लिया। बडी देर तक बिना कुछ कहे यों ही मुस्कराता रहा, जैसे किसी गूँगे को कुछ मिल गया हो। दुकान के दोनो मुनीम भी बडी जिज्ञासा से लाला की ओर रह-रहकर ताक रहे थे।

चेतराम ने बीड़ी जला ली और पूरा बडल दियासलाई के साथ दलालों के सामने फेक दिया। गम्भीरता से कहा, "चूँकि बहुत दिनों से तुम लोगो की इच्छा है कि मै भो कुछ सट्टे-वट्टे मे आऊँ, सोचता हूँ कि थोडा-सा करके ही क्यो न देखूँ!" तीनो दलाल

आश्चर्यचकित रह गए। उन्हें एक क्षण तो विश्वास न हुआ—चेतराम और सट्टा!

चेतराम ने अपनी बात पूरी कर दी, 'मेरे नाम सौ परचे गेहूँ खरीद लो!"

सौ परचों का नाम सुनते ही दोनों मुनीमों के कान खड़े हो गए—पहला सट्टा और सौ परचों का एक साथ! चेतराम ने मुनीमों को आँख से इशारा करके चुप करा दिया। दलाल प्रसन्न हो चलने लगे।

चेतराम ने कहा, "जाओ परचे खरीद लो, मैं अभी बड़ी कोठीवालों से सब बातें फोन पर कहे देता हूँ।"

इसके बाद चेतराम बहुत देर तक चुप रहा। उठा और ठाकुरद्वारे गया, भगवान् को माथा टेककर गद्दी पर वापस चला आया और बड़ी कोठी के लाला सैयांमल से फोन पर बातें करने लगा।

जब बात पूरी हो गई तो चेतराम से गद्दी पर न बैठा गया। वह झट से उठा और घर में चला गया। करीब दो घण्टे तक भीतर ही रहा; बच्चे को बहलाता रहा। लेकिन दोपहर के भोजन के लिए उसके पास ज़रा भी भूख न रही, जैसे उसके पेट में पूरे सौ परचे अन्न के भर गए हों और उसे अब कभी भूख न लगेगी।

चेतराम को ऐसी अनुभूति जीवन में पहली बार हुई थी। इस अनुभूति में एक ही साथ अनेक भाव मिले थे और सबके ऊपर थी आत्मविश्वास और आत्मगौरव की भावना।

संयोग यह हुआ कि चेतराम के वे सौ परचे लाला सैयांमल के ही यहाँ खरीदे गए। दलाल लोग बता रहे थे कि चेतराम का यह सट्टा पाते ही सैयांमल ने स्वयं अपने नाम कर लिया।

चेतराम का इतना बड़ा सट्टा बस्ती में छिपा नहीं, आग की तरह फैल गया, एक-एक फ़र्म जान गई कि लाला चेतराम ने सैयांमल से सौ परचे गेहूँ खरीदे।

एक दिन ठीक तीसरे पहर ज़ोर की आँधी आई। सारी दुकानें बन्द हो गई। दिन रात मे बदल गया और उस तूफ़ान में लोग अपने-अपने घरों मे जा छिपे। चेतराम भी घर के भीतर जा छिपा था।

रूपा के कमरे मे कही हाथ पसारे से भी न सूझता था। ऊपर से सारा वातावरण प्रचण्ड वायु के भयकर नाद से भरा जा रहा था। कमरा चारो ओर से बन्द था। चेतराम ने रूपा को पुकारा—बहुत ही कोमल स्वर मे, जैसे उसे बुलाने के लिए मनुहार किया। लेकिन रूपा न बोली, जैसे वह कमरे मे थी ही नही।

टटोलकर चेतराम ने बिजली जलानी चाही, लेकिन उस तूफान में बिजली कहाँ मिलती!

चेतराम ने उसी कामल स्वर से रूपा को फिर पुकारा, अनवरत पुकारता रहा। जब उसे कोई प्रत्युत्तर न मिला, तब वह कमरे में बहू को टटोलने लगा। पलग पर जा गिरा, पाया रूपा वहाँ औंधी पडी है।

चेतराम का दायाँ हाथ उसके मुँह पर पडा। रूपा उत्तेजित हो उठी और चेतराम के हाथ पर एक बहुत जोर का झटका लगा।

वह घबडाया हुआ पलंग की पाटी से झुका रहा, कातर स्वर मे बोला, "उठो तो, क्या लेटी पडी हो, बच्चा कहाँ है?"

रूपा कुछ न बोली।

तब उसने स्वय अपनी बात का उत्तर दिया, "समझा, बच्चा दसिया के पास होगा। लेकिन दसिया है कहाँ?"

रुककर फिर उसने अपना उत्तर ढूँढ़ लिया, "दसिया दादी के पास होगी!"

"लेकिन इस भयानक तूफान मे बच्चे को अपने पास क्यों नही रख लिया?"

इसका उत्तर उससे न बन पडा। वह चुप हो गया और आँधी के भयानक स्वरो को सुनने लगा। उसने अनुभव किया, आँधी की ही

गति से पानी भी बरस रहा है।

चेतराम ने धीरे से कहा, "ऐसा न हो कि बच्चा कहीं भीग जाय!"

"तू तो नहीं भीग रहा है नामर्द कहीं का!" रूपा ने कटुता से कहा।

"मैं नामर्द हूँ रूपा! तुझे ऐसा कहना चाहिए? बोल तुझे ऐसा कहना चाहिए?"

"नहीं, बड़े आत्मगौरव के हो! देख ली तेरी मर्दानगी। तू औरत से भी बदतर है। बच्चा बच्चा बच्चा बच्चे के लिए हैरान बने फिरते हैं!"

"तब तू ही क्यों नहीं बताती, मैं क्या करूँ?"

"मुझसे पूछते हो! कहीं गड नहीं गए जमीन में!" रूपा का आक्रोश भरा स्वर करुण हो गया, "सब सुनके पी गए गट से! मुझे मारा क्यों नहीं? दण्ड दे के मेरा तन क्यों नहीं काट डाला? ज़िन्दा मुझे ज़मीन में क्यों नहीं गाड दिया? बेशर्म, बेहया कहीं के, मेरा मुँह देखने आते हैं।"

रूपाबहू फफककर रो पड़ी। बाहर की आँधी कुछ-कुछ शान्त हो रही थी, लेकिन पानी के थपेड़ों की आवाज़ अब भी उभर रही थी।

चेतराम गूँगा बना बैठा था—निस्पन्द, निराश्रित। कमरे में ज़रा-ज़रा-सा आलोक बिखर रहा था। रूपा पलंग पर बैठी हुई अपने घुटनों में मुँह छिपाए निःशब्द रो रही थी।

"अच्छा, अब छोड़ो इन बातों को!" चेतराम ने डरते-डरते कहा।

"मैं छोड़कर कहाँ जाऊँ?" रूपा ने सिर उठाया। प्रतिक्रिया के भावों में बोली, "तुम्हारे लिए तो व्यापार है, चौबीस घण्टे की दुकान है। मैं कहाँ जाऊँ! बताओ कहाँ?"

"क्यों इस तरह परेशान होती हो?" चेतराम ने विनय के स्वर में कहा, "छोड़ो ईश्वर पर इन बातों को! वह जो करता है, अच्छा ही करता है। इसमें हमारा क्या दोष? सब-कुछ कराने और करने वाला

वही है, हमारा इसमे क्या दोष है ?"

"बेहया कहीं के, लाज-हया नही आती यह कहते ! डूब मर जा के कही !"

रूपाबहू एकाएक चुप हो गई, पर उसका मुँह आरक्त हो आया। सिसककर बोली, "मुझे यातना चाहिए, जैसे कर्म वैसी यातना पर मुझे पता है, तुम मुझे क्यों नही यातना देते। मै गोरेमल की बेटी हूँ, इसलिए यही न ?"

"क्या फिजूल की बाते करती हो रूपाबहू ?"

"रूपाबहू फिजूल की बाते नही करती, वह सत्य कहती है, जो अनुभव किया जाता है। समझ लो, मैं सत्य कहे देती हूँ, तुमने मुझे यातना नहीं दी, शायद क्षमा दी, मूल मे जो निर्बल है, बिकी हुई है। लेकिन याद रखना, तुम्हारी क्षमा ही मेरी यातना हो जायगी—और वह यातना मुझे तुम्हारा बेटा ही देगा—तुम्हारा बेटा, जो तुम्हारे परिवार का मूल धन है।"

"भ्रम ' झूठ, सरासर झूठ, ऐसा कभी नही हो सकता !" चेतराम जैसे कुछ देख रहा हो। रूपाबहू रोती हुई उठी, दीवार के सहारे चलती हुई खिडकी के पास गई और उसे खोल दिया। पानी के छींटे उसके मुँह पर आ रहे थे और वह निश्चल खडी थी—छींटों से तप्त मुख को जैसे शान्त करती हुई !

चेतराम ने दीनता से कहा, "वहाँ क्यों भीग रही हो ? ठण्ड लग जायगी।"

"ठण्ड लग जायगी !" रूपाबहू ने विरक्ति से देखा और होठों में बुदबुदाकर रह गई, "ठण्ड लग जायगी, ईश्वर करे मुझे ठण्ड लग जाय, मै सदा के लिए ठण्डी हो जाऊँ !"

तूफ़ान थम-सा गया। पानी की बूँदे भी पतली हो गईं। पर चेतराम के पाँव उस कमरे से जैसे बाहर ही नहीं बढ़ रहे थे, यद्यपि वह चला जाना चाहता था।

तब तक रूपाबहू उस कमरे से बाहर हो गई, और इतनी तेजी से बाहर हुई जैसे वह निकल भागी हो। भागकर वह नहाने की चौकी पर गई और आधे घण्टे तक अनवरत नहाती रही।

वह लोटे-लोटे पानी अपने सिर पर डालती रही, जिससे कि उसका मुख ठण्डा पड जाय, लेकिन कान तो उसके जलते ही रहे, मन जो सुलग रहा था। बार-बार उसमे लौ की तरह यह भाव जलता रहा—'मै गोरेमल की बेटी क्यो हुई, मै उसकी बेटी क्यो हुई ? मै क्यो हुई ? मै क्यो ?'

गीले कपडो मे ही वह कमरे मे लौटी। जब पूरे कपडे बदल चुकी, तब उसने देखा पलग के सिरहाने छोटी मेज पर आध सेर का गिलास मलाई वाले दूध से लबालब भरा है और उसे चेतराम ने अपनी दुपल्ली टोपी से ढक रखा है।

रूपाबहू क्षण-भर के लिए हॅस पडी, फिर उसे चेतराम पर दया आई, और तब उसे फिर रुलाई आ गई।

न जाने क्या चेतराम के जी मे आया, वह बच्चे को लिये सडक पर उतर आया। टहलता-टहलता ठाकुरद्वारे की ओर बढ़ गया।

वहाँ राजू पडित न थे। आरती हो चुकी थी और नीचे राजू पडित के आसन पर श्रीमद्भागवत् कथावली के पृष्ठ खुले थे।

चेतराम ने एक बार भगवान् के सामने अपना माथा टेका, दूसरी बार बच्चे के साथ टेका और नतशिर होकर वन्दना की, "हे ठाकुरजी, जय हो ! मेरे दूध-पूत, धन-लक्ष्मी का सदा कल्याण हो ! मेरा यह पुत्र आपका होकर जिये और युग-युग जिये। मेरा यह कुलधन, मूलधन दीपक की भाँति सदा प्रकाशित रहे ! मै कभी आपकी आज्ञा से बाहर न रहूँगा !"

चेतराम का मन धीरे-धीरे कातर-सा हो उठा। वह ठाकुरजी से इस तरह बातें करने लगा, जैसे कोई अपने अभिन्न और परम आत्मीय से खुल जाय। वह कहने लगा, "हे ठाकुरजी, आप अन्तर्यामी है, जो कुछ

करते हैं, बस आप ही करते है। सब आपकी लीला है, आप मेरी बहू को ज्ञान दीजिए। उसे शान्ति मिले। उसकी ओर से मै आपकी शरण आया हूँ!"

पीछे आहट हुई कुछ स्त्री-बच्चे ठाकुरजी के दर्शनार्थ आ रहे थे। चेतराम उठ भागा वहाँ से। राजू पंडित के घर गया। देखा, राजू पंडित की बच्ची बेतरह रो रही है, दादी भोजन बनाने मे लगी है और बच्ची की माँ शारदा निसहाय पलग से लगी कराह रही है।

चेतराम से देखा न गया। दाई काँख मे उसने अपने बच्चे को सँभाल रखा था, बाई ओर से उसने रोती हुई बच्ची को उठा लिया। उसे पुचकारता हुआ फिर ठाकुरद्वारे की ओर भागा।

बच्ची चुप हो गई। दूर से उसने देखा, राजू पंडित अब ठाकुरद्वारे मे अपने आसन पर विराजमान हो गए थे और वहाँ बैठी हुई औरतो और बच्चो को भागवत की कोई मिली-पकाई कथा सुना रहे थे। चेतराम के मन मे बडी इच्छा हुई कि वह भी ठाकुरद्वारे मे जा बैठे और कुछ आध्यात्मिक उपदेश ले, पर उसकी दोनो बाँहो मे बच्चे जो थे, जिन्हे वह किसी भी मूल्य पर रुलाना नही चाहता था।

वह चुपचाप ठाकुरद्वारे को पार कर सामने गली मे उतरने जा रहा था, पर न जाने क्या दृष्टि पाई थी राजू पडित ने, उसने झट आवाज दी और सब छोड वह चेतराम के पास चला आया। चेतराम हँसने लगा, बेहद प्रसन्न था वह।

सामने राजू की आवाज़ बन्द थी। उस समय न वह पानी, कीचड और धूल मे सनी अपनी बेटी को ही ले सकता था, न चेतराम से ही कुछ कह सकता था।

पर उसके मुँह से निकला, "सच है, भगवान् बच्चों मे ही बसता है। मै इस भगवान् श्रीकृष्ण की बाल-लीला की ही कथा कह रहा था—ओहो, धन्य है! और लालाजी, आप भगवान् के सबसे बडे भक्त है। कहो, घर मे सब राजी-खुशी है न?"

चेतराम प्रसन्नता से विहँस रहा था। वह आगे बढ़ने लगा।

"ओहो! लालाजी, क्यों इतना कष्ट करते हो, किसीसे एक न सँभले, आप दो-दो सँभालते हो धन्य हो प्रभु!"

चेतराम अपनी दुकान पर चला आया। दोनों बच्चो को गद्दी पर ला बिठाया।

ऊपर बिजली का पंखा चल रहा था। दोनों बच्चे फोन को लेकर आपस मे खेलने-से लगे और खेलते-खेलते वही गद्दी पर ही सो गए। चेतराम उन्हे मन्त्रमुग्ध-सा देखता रहा। उन्हे इतनी शान्ति से सोते हुए देखकर उसके जी मे होता था कि उनके बीच वह भी सो जाय।

तब तक ठाकुरद्वारे से घटी-घडियाल बजने की ध्वनि आई। उसका मन न जाने क्यों ठाकुरद्वारे मे जाने के लिए कचोटने लगा। बच्चों को दुकान वालो के सुपुर्द कर वह तेजी से गली मे मुड गया।

ठाकुरद्वारे में राजू पंडित की कथा समाप्त हुई थी, इसलिए वह घंटी बजी थी। श्रोता लोग अपने-अपने घर जा रहे थे। तभी चेतराम दिखाई पडा। उसे देखते ही राजू पंडित फिर अपने आसन पर बैठ गए।

"आओ, बैठो लालाजी! भगवान् की भक्ति मे, ओहो हो ''कितनी शान्ति है! जी होता है कि चौबीसों घटे यहीं ठाकुरजी को देखता रहूँ।"

"इसमें भी भाग्य-भाग्य की बात होती है पुजारीजी!"

"क्यों नही क्यों नहीं, इसीको तो पुष्टि मार्ग कहते हैं—अर्थात् भक्ति भी उसीकी कृपा है!" राजू पंडित झट अपनी कथावली के पृष्ठ उलटने लगे, "भली याद दिलाई, सुनियो लालाजी, मै आपको एक कथा सुनाता हूँ।"

चेतराम ने ठमकते हुए कहा, "मै एक बात पूछूँ हूँ पुजारीजी!"

"हाँ, हाँ, अवश्य, अवश्य, यही तो सत्संग है, 'कबिरा संगत साधु

की कटै कोटि अपराध !' हाँ बालो बडी शुभ वेला है इस समय, ठाकुर जी सिंहासन पर बैठे है, रुक्मिणी चँवर डुला रही है, ओहो !"

"मै यह पूछूँ हूँ पुजारीजी," चेतराम ने गम्भीरता से कहा, "अनजान मे अगर किसीसे कोई भूल हो जाय, तो क्या वह कोई पाप है ?"

"कभी नही।"

"और उस भूल मे अपने-आप उसके हाथ मे कोई अमूल्य पदार्थ आ जाय, तो क्या वह कोई चोरी हुई ?"

राजू पडित ने जम्हाई ली और खुले मुख को चुटकी बजाकर बन्द करते हुए उत्साह से बोले, "हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण ! कैसी चोरी, कैसा अपराध, कैसा पाप-पुण्य ! अरे, सब प्रभु की माया है ! और भूल-अनजान, ये दो तो ऐसे पुनीत तत्त्व हैं, ऐसे शिशु-स्वभाव है, जिनमे ईश्वर बसता है, इसलिए ये अपने-आप मे पवित्र हैं, महान् है !"

चेतराम परम आश्वस्त मुद्रा से राजू पण्डित को देख रहा था, होठों पर मुस्कान थी।

बडे उत्साह से राजू पण्डित अपनी पोथी मे न जाने क्या ढूँढने लगे। चेतराम का पूरा ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हुए बोले, "भूल और अनजान की अनेक पवित्र कथाएँ है इस ग्रन्थ मे, सुनो, मैं दो-एक सुनाता हूँ—कुन्ती की कथा, ओहो कितनी दिव्य, कितनी पवित्र शकुन्तला की कथा !"

"मुझे पूरा सन्तोष है पुजारी जी !" चेतराम ने प्रसन्नता से कहा, "मुझे शान्ति भी है। मै इस समय तो क्षमा चाहूँगा, बात यह है कि गद्दी पर दोनों बच्चों को सुला आया हूँ।"

"अवश्य, अवश्य, अच्छा, ओहो ! तो मेरी सत्तो भी वहीं सो-गई ?"

"हाँ, हाँ, सत्तो और सूरज दोनों !" चेतराम खुलकर हँस पडा, "मधू भी क्या-क्या नाम रख गई !"

"नहीं, नहीं, बहुत अच्छे नाम है—सूरज मे जकार जै का परिचायक, सन्तोष मे सकार साकार शक्ति का नाम, सन्तोष—सत्तो! बडे शुभ नाम है, और बुआ का रखा नाम!"

दोनों ठहाका मारकर हँस पडे। राजू पण्डित पोथी लिये चेतराम के सग चले। पर गली की मोड तक आते-आते वह वापस लौट गए, जैसे वह चेतराम को विदा देने आये थे, यद्यपि चेतराम यह सोचता था कि राजू पण्डित अपनी बच्ची सत्तो को लेने आ रहे थे।

जुलाई बीतने-बीतते गेहूँ मे एकाएक मँहगी आ गई—बारह आने मन की गरमी! गोरेमल की रहस्य-वाणी सत्य हुई। पूर्वी प्रदेशो, बिहार और आसाम मे जबरदस्त बाढ आई। लोग बरबाद हो गए, धरती की सारी तैयार फसल नष्ट हो गई।

और इस तरह सौ परचे वाले गेहूँ के सट्टे में चेतराम की बडी शानदार जीत हुई। उस रात उसकी गद्दी पर घी के चिराग जले, तिजोरी में प्रतिष्ठित लक्ष्मी की पूजा हुई।

चेतराम को इस पहली विजय पर इतनी प्रसन्नता थी कि उससे कही रहा न जाता था। उस रात को उससे गद्दी पर न सोया गया। वह भीतर जाकर सोया, लेकिन उसे वहाँ भी नींद नही आती थी। उसके सामने एक बहुत बडे तराजू का चित्र उभरता था—तराजू के बड़े-बडे लोहे के पलडे; बाट वाले पलडे पर सट्टे का एकपेजी काग़ज़ था—'कबाला', और दूसरे पर चाँदी के रुपये जो चारों ओर हरे-हरे नम्बरी नोटो से पटे थे। चेतराम की दृष्टि मे वह लोहे का तराजू भी टॅगा हुआ था, जिसमे बाट वाला पलडा अब भी जमीन से ऊपर न उठ रहा था।

रात भर चेतराम की दृष्टि मे तराजू लटकता रहा। सुबह जब वह

उठा तो उसकी आँखे थककर भारी हो आई थी।

वह स्वर मे फुसलाहट भरकर बोला, "सुन रही हो, अरे रूपाबहू, सुन रही हो. सुनो तो जरा, एक बात कहूँ हूँ, सुनो !"

"कुछ कहोगे कि चोंचले ही चलाओगे !" रूपाबहू ने कड़े स्वर मे कहा।

"जरा धीरे बोलो न," चेतराम ने अपने स्वर को और चिकना कर लिया, "चलो कही तीरथ-व्रत कर आयें। क्यो, क्या राय है ?"

रूपाबहू चुप थी, उसने इधर जैसे ध्यान तक न दिया।

चेतराम ने कहा, "या कुछ अपने लिए गहने गढा लो। तुम्हारे गले की सीतारामी तो है ही, मै चाहता हूँ तुम्हारे गले मे एक आठ-दस तोले का चन्द्रहार बन जाय। किसीको जयपुर भेजकर कोई अच्छा-सा कीमती नग भी मँगवा लूँगा—पुखराज, नीलम, लाल, कुछ भी। क्यो, क्या सोच रही हो, रूपाबहू ?"

"मै कहे देती हूँ, तुम मुझसे ज्यादा बकवास न किया करो," रूपाबहू ने आग्नेय दृष्टि से देखकर बुझी हुई वाणी मे कहा। "तुमने सट्टा जीता है—जीता होगा, मै क्या करूँ ? मुझे पागल मत बनाओ, मेरी कोई इच्छा नही। मैंने भर-पाया।"

"अच्छा, अब चुप हो जाओ रूपाबहू !" चेतराम ने कातर स्वर मे कहा।

"जाओ बाहर यहाँ से, मै तभी चुप होऊँगी।"

चेतराम का मुँह छोटा-सा निकल आया। पिटी गोट की तरह वह वहाँ से बाहर भागा।

तब से लगभग दो सप्ताह तक चेतराम अपने व्यापार के कामो मे लगा रहा। कलकत्ता, पटना, गोरखपुर और गया के व्यापारियो का ताँता बँधा था। अपने गोदाम मे जितना भी गेहूँ उसने जमा किया था, एक-एक दाने का सौदा कर लिया।

बडी कोठी वाले सैयामल के गोदाम में भरे गेहूँ को चेतराम ने

उस भविष्य के लिए अभी सुरक्षित कर रखा था, जब उसके मुनाफ़े के बारह आने का पूरा रुपया हो जायगा। उसे विश्वास था कि दीवाली तक गेहूँ के बाज़ार में कुछ गरमी और आएगी। वह व्यापारियों को लौटाते हुए अपने मन मे सोचा करता था—'जैसे-जैसे दीपक जलेंगे, बाजार मे वैसी ही गरमी बढेगी।' और वह अपने इस विश्वास पर अटल था।

रूपाबहू का स्वभाव बन गया था वह किसीकी गलती को क्षमा न कर पाती थी—वह गलती किसीकी, और कैसी भी क्यों न हो। दसिया के प्रति इस दिशा मे वह न जाने क्यो सहृदयता बरतती थी। रूपाबहू कहती थी, 'दसिया एक आँख की कानी है, बडी भली है। मुझे बडी अच्छी लगती है। अगर इसका रग भी काला होता, तो यह मुझे बेहद अच्छी लगती। यह गोरी क्यो हुई?' यही वह उसे दोषी ठहराती थी।

रूपाबहू की दृष्टि मे दसिया नौकरानी को कुछ छूट मिली थी, तभी वह घर मे बडे गर्व और अधिकार के साथ रहती थी। दादी उसे देखकर जलती थी। उसकी गोद मे जब वह अपने सूरज को देखती तो भुनभुनाकर रह जाती।

दीवाली के दिन थे, बस्ती मे खूब धूम थी। घर-घर मे लक्ष्मी-पूजन की तैयारी थी। हर गद्दी पर महूरत शोधने की चर्चा थी। हर गली, हर पेच, हर मुहल्ले, मोड, नुक्कड और कोठे पर भाँग की हरियाली, पीने-पिलाने के नखरे और जुए के दाँव चल रहे थे।

दिये की लौ से गेहूँ के भाव मे सचमुच गरमी आ गई। चेतराम ने ठीक दीवाली की शुभ रात्रि मे अपने गेहूँ की बिक्री से महूरत साध ली। फिर उसकी दीवाली मन गई।

अगले दिन शाम को जब बच्चे को दूध पिलाने के लिए दसिया घर में आई, तो रूपाबहू ने देखा उसके आँचल में कुछ बँधा है। उसने

पूछा, 'आँचल मे क्या है री ?"

"मिठाई है बहू !"

"कहाँ मिली ?"

"वह वो वो जो ठाकुरद्वारे के पुजारी बाबू है न, उन्होंने प्रसाद दिया है।"

"इतना प्रसाद ?"

रूपाबहू कुछ घूँटकर पी गई और उसके सामने से स्वयं हट गई, जैसे कुछ उसे सहसा याद आ गया। वह उलटे पाँव लौटी, दसिया से बच्चे को छीन लिया और उसे स्वयं दूध पिलाने लगी।

दसिया जब रात को अपने घर जाने लगी, रूपाबहू ने उसे अपने पास बुलाया, चुपचाप अपने कमरे मे ले गई और उसका आँचल मिठाइयों से भर दिया।

"अब तो तेरा पेट भर जायगा न ? जिस चीज़ की जरूरत हो मुझसे माँग !" रूपाबहू ने स्नेह से कहा। दसिया कृतज्ञ-सी मुस्कराती रही, कुछ बोली नहीं, चुपचाप अपने घर चली गई।

एक दिन दसिया अपने घर से पीली साडी पहनकर आई। वह उसकी माँ की धराऊँ साडी थी। बहुत प्रसन्न थी, बहुत सावधानी से बच्चे को सम्हाल रही थी।

रूपाबहू उस दिन कुछ अस्वस्थ थी। उसे बुख़ार भी था और सिर-दर्द भी। दिन में उसने कई बार दसिया को पुकारा, उसे अपने पास बुलाना चाहा, लेकिन संयोगवश वह मिल न सकी। तीसरे पहर वह मिली। घर मे थी, रूपाबहू के पुकारते ही वह दौडकर उसके पास गई।

"कहाँ थी तू ? मैने तुझे पुकारा, तू मिली नहीं," रूपाबहू ने कहा, "आ बैठ, ज़रा मेरा सिर दाब दे !"

दसिया सिरहाने बैठ बहू का सिर दाबने लगी। रूपाबहू बोली, "बहुत इधर-उधर मत घूमा कर ! बच्चा क्या घर-दुकान मे नही

बहल सकता ? बहुतेरी जगह तो है अपने पास !"

दसिया चुप थी।

"जरूरत भी क्या इधर-उधर जाने की ?"

फिर रूपाबहू आँख मूँदकर चुप हो गई। सिर-दर्द मे कुछ शांति आ रही थी। लेकिन उस बीच उसने अनुभव किया कि दसिया की किसी उँगली मे अँगूठी है।

"कैसी अँगूठी है री तेरी ?" रूपाबहू ने पूछा, "आज ही पहनी है क्या ?"

दसिया चुप थी, और वह अधिक शक्ति से बहू का सिर दाबने लगी।

"क्या सिर तोड देगी ?"

दसिया ढीली पड गई और हँसने लगी, हँसी समाप्त हुई तो मुस्कान के साथ वह कहने लगी, "ठाकुरद्वारे के राजू पडित बडे भले आदमी है, बहूजी ! आपको बहुत पूछते हैं। आज उन्होंने मुझे परसाद दियो, जे कहो कि तेरी आँख अच्छी हो जाय ! अच्छो आदमी है—बहुत भलो !"

रूपाबहू उठ बैठी। दसिया को देखने लगी, जैसे वह उसे पहचान रही हो। दसिया बैठी मुस्करा रही थी।

"इधर तो आ !"

दसिया खडी हुई। रूपाबहू ने उसे सिर से पॉव तक देखा—आँचल, कमर की गॉठ, माथे का पल्ला और अँगूठी।

"आज दोपहरी मे वहीं थी ?" रूपाबहू पलग से नीचे आ खडी हुई। "सच-सच बोलना, वहीं थी न दोपहरी मे ?"

वह पागलों जैसी मुस्करा रही थी।

रूपाबहू क्रोध से कॉंपने लगी। अपने को सँभालती हुई भी वह दसिया पर टूट पडी और बेतरह मारने लगी।

"निकल जा अभी मेरे घर से, निकल जा !"

और उसी आवेश मे उसने घसीटकर उसे कमरे से बाहर निकाल दिया।

वहाँ सारा घर आ घिरा। पर यह सब क्या है, क्यो है, न इसे कोई पूछ पा रहा था, न समझ ही रहा था।

दसिया एक आँसू भी न रोई। वह जैसे सब पी गई और पीकर चुपचाप अपने घर चली गई।

सब चले गए, कई दिन बीत गए।

एक दिन दोपहर को रूपाबहू को स्वयं रोना आया। खूब रोई वह, और अपने सामने जैसे दसिया को गिरी देखने लगी, जो अब भी सिर झुकाए जैसे मुस्कराती चली जा रही थी। रूपाबहू उसे ठंडी दृष्टि मे देखती रही, देखती रही। फिर अपने-आप से डर गई, भयाकुल हो आई।

पास ही बच्चा बैठा खेल रहा था, उसके पास गौरी बैठी थी। रूपाबहू का ध्यान बच्चे की ओर गया। वह एकटक न जाने क्या उस शिशु मे देखने लगी।

उसी शाम से बस्ती मे आर्यसमाज का सोलहवाँ वार्षिक अधिवेशन प्रारम्भ हुआ था। स्टेशन से एक बृहद् जलूस निकलकर कॉलेज और सिविल अस्पताल वाली चौडी सडक से धीरे-धीरे बस्ती मे प्रवेश कर रहा था।

कोई हाथी के हौदे मे बैठा हारमोनियम पर गा रहा था—

अजब हैरान हूँ भगवन् तुझे कैसे रिझाऊँ मै।
तुही भगवान् पत्थर मे, तुही भगवान् अक्षत मे,
भला भगवान् को भगवान् पर कैसे चढाऊँ मै!
अजब हैरान हूँ भगवन् तुझे कैसे रिझाऊँ मै!

कोई सजे हुए बहल पर बैठा गा रहा था, कोई-कोई बैल-जुते

ठेलों पर अलाप रहे थे—ढोलक, हारमोनियम के संगीत पर—

सब वेद पढे, सुविचार बढे, बल पाये चढे नित ऊपर को,

अविरुद्ध रहे ऋजु पंथ गहे परिवार कहे वसुधा भर को।

खुले ताँगे, ट्रकों और सजी हुई लारियो पर जत्थे-के जत्थे लोग बैठकर, खडे होकर भाषण दे रहे थे, जय जयकार कर रहे थे और आर्य समाज के नियम के परचे, सगठन सूक्त के पैम्फलट तथा 'वैदिक प्रार्थना', 'सध्या विनय', 'गृहस्थ जीवन रहस्य', 'यवन मत समीक्षा' नामक छोटी-छोटी पुस्तके बस्ती की जनता मे मुफ्त बाँटी जा रही थीं।

पिछले वर्ष के अधिवेशन मे जब ऐसा ही जुलूस म्युनिसिपल आफ़िस से परली तरफ बढ रहा था, तब मिर्जाटोला और काजी मुहल्ला दोनों की मस्जिदो मे मुसलमानो ने मिलकर कस-कसकर नारे लगाए थे—नाराये इस्लाम, अल्ला हो अकबर ! कहते है कि अगर बीच मे सशस्त्र पुलिस का जत्था बचाव के लिए न आ गया होता तो हिन्दू-मुसलिम दगा हो जाता। लेकिन कुछ लाग कहते है, कि यह चाल स्वय अंगरेज़ कलक्टर मिस्टर विलियम की थी, जो मुरादाबाद से दो दिन पहले यहाँ आ गया था और अपनी नई आइरिश लेडी को महज़ यह दिखा रहा था कि कितनी आसानी से यहाँ हिन्दू-मुसलमान जानवरों की तरह लड सकते हैं।

६

तब सूरज अपने पाँवों पर खडा होने लगा था, कुछ ही क़दम चलकर वह लडखडा उठता था और पेट के बल गिर पडता था।

इसी गिरने-उठने की स्थिति मे उससे उसकी दसिया छिनी; और ऐसी छिनी कि नन्हा-सा सूरज न उसका पूरा नाम लेकर पुकार सकता था, न स्वयं अपने पाँव उसके घर ही जा सकता था। बस, वह रो

सकता था और इसलिए वह इधर अकारण रोता रहता था, जैसे यही उसके शिशु-मन का विद्रोह हो।

पैरो मे जो लडखडाहट थी, वही उसकी गति थी—वही, उतना ही था वह। और एक दिन अकेले मे उसने जैसे संकल्प किया—गिरना तो आवश्यक है, क्योंकि उसे चलना है—अकेले, निरालम्ब। गिरना स्वय एक गति है, बैठ जाना अगति है।

एक दिन इस सत्य की अनुभूति पा ली उसने, और वह गिरने का सहारा लेकर चल पडा। एक ही साँस मे जैसे वह घर से बाहर चला आया और चौखट को पार करते-करते वह उसी शक्ति से गिरा, जिस उत्साह और बल से वह चला था। जैसे वह शक्ति गति से थकी न हो, बल्कि उत्साहित हो गई हो। वह गिरा, लेकिन उसी दम उठ गया, जैसे उठने ही के लिए गिरा हो। उठा, और खिलखिलाकर हँसने लगा, यद्यपि ऊपर के होठ के भीतर से खून बह निकला था। पर जैसे वह अपने विजयोल्लास का पर्व हँसकर मना रहा था, कि 'देखो मै अकेले घर से बाहर निकल आया—निरालम्ब! देखो, अब मै चल पडा। इतनी दूर चला आया, और अब मै चल सकता हूँ।'

चेतराम ने गद्दी से दौडकर सूरज को उठा लिया, पर बच्चा अंक मे न टिका, मचलकर फिर अपने पाँवो आ खडा हुआ, जैसे उसे उन पाँवो को श्रद्धा देनी थी, जो आत्म-साधन थे।

और अपनी इस गति को वह पूरे चार वर्ष तक पूजा देता रहा। भीतर से भागकर, छिपकर और प्राय रोकर वह बाहर आता और पिताजी की छाया मे अक्सर गद्दी पर बैठ जाता—खेलता, सोचता, अनायास घण्टो चुप रहता और थककर सो जाता।

एक दिन उसकी यह सीमित गति असीम हो गई। घर से वह बाहर निकला, सडक पर आया। बहुत देर तक चारों ओर निहारता रहा, जैसे वह अनुमान पाने लगा कि 'ओह! संसार यह है—इतना

असीम ! इतना व्यापक !'

और न जाने किधर, किस ओर, कैसे, क्यो वह घूमने चल पडा ? और घूम-फिरकर वापस भी लौट आया। गद्दी पर पिताजी को रिपोर्ट भी दे दी कि वह घूमने गया था, उसके पैर के अगूठे मे ठेस लगकर घाव भी हो गया, लेकिन वह अब बहुत तेज दौड सकता है।

बस्ती के लोग शाम के छ बजे तक भोजन कर लेते थे और आठ बजते-बजते सब घर भीतर से बन्द हो जाते और सब सो जाते थे।

दिसम्बर के दिन थे, खूब ठण्ड पड रही थी। सूरज दादी के कमरे मे लेटा था। उसे पिछले चार दिन से सूखी खाँसी आ रही थी। वह अपने बिस्तर पर लेटा जाग रहा था। उसके पैर के दोनों अगूठों मे दर्द था। चोट लगकर वे पक आए थे।

वह न जाने कब तक जागता रहा, खाँसी और अंगूठे के दर्द से उसे नीद नहीं आ रही थी। एकाएक उसे लगा कि बाहर बन्द दरवाजे पर उसे कोई पुकार रहा है। वह चुपके से उठा, अंधेरे मे टटोलता हुआ वह लँगडाते-लँगडाते बाहर तक चला आया। नि संकोच उसने किवाड खोल दिए।

सामने निरी अकेली मधू बुआ खडी थी।

सूरज बुआ को पहचान न सका, पर विश्वास अवश्य पा गया। बुआ ने बढकर भूख से उसे अपने अक मे जकड लिया और फूट-फूटकर नि.शब्द रोने लगी, जैसे छोटी बहन अपने बडे भाई के पैरों से लिपट-कर रोती है।

लेकिन दादी, सूरज और चेतराम के अलावा और कोई न जग सका। सूरज में असख्य भाव उमड रहे थे, अनेक उत्साहो से वह भर रहा था। चाहता था कि वह अभी बुआ के सामने तेज़ी से दौड़कर दिखा दे कि अब वह दौडकर पूरी बस्ती पार कर सकता है।

बुआ सूरज के सग ही सोई। उसीके छोटे-से लिहाफ़ में वह समा गई और अपने अङ्क मे सूरज को बाँधने लगी।

सूरज के पास बहुत सी बाते कहने को थी। उसे बुआ को यह भी दिखाना था कि अब वह कितना साफ बोल लेता है। लेकिन जब वह कुछ कहने लगता, उस पर खाँसी दौड आती और उसकी उमडती हुई वाणी उसी मे घुट जाती।

बुआ ने उसी रात सूरज की खाँसी रोकने के लिए कई दवाइयाँ की—पाँच आने का लड्डू भी हनुमानजी को मान दिया, और रात-भर उसे अपने भूखे अङ्क मे दबाये वह उसकी पीठ और कन्धे सहलाती रही। सूरज की गरम साँसे बुआ के कण्ठ से टकरा रही थी, उसे लग रहा था जैसे उसमें कुछ बरस रहा हो, जैसे वह सम्पूर्ण हो रही हो, जैसे वह माँ बन गई हो और वह उसी क्षण अपने भावों में दौडकर खुरजा पहुँच गई हो और अपने घर के आँगन मे खडी होकर बरस रही हो—'देखो लोगो, मै पुत्रवती हूँ! कौन कहता है मेरे अङ्क मे दूज का चाँद नही है, यह देखो!'

न नींद सूरज को आ रही थी, न बुआ को। सूरज बुआ को जकडकर अपने मे बाँधे था, और जैसे वह इसलिए भी नहीं सो रहा था कि ऐसा न कही हो जाय कि बुआ चली जाय और सुबह उसे लगे कि रोज की भाँति यह भी एक स्वप्न ही था। सूरज उसके कण्ठ मे मुँह गडाकर कह रहा था, "एक दसिया थी, माँ ने उसे बहुत मारा। वह मुझे छोडकर चली गई। सीता दीदी मुझे डाँटती है, गौरी दीदी मुझसे लडती है। लेकिन वह मुझसे जीतती नहीं, मै उसे पटक देता हूँ—उसके बाल पकडकर। मै पाँच साल का हो गया बुआ! मैं पढने लगा हूँ। गौरी आठ साल की है, पर मै उसकी किताब पढ़ लेता हूँ। ··और वह जो सीता दीदी है न, उससे मै डर जाता हूँ। बहुत दूध पिलाती है, कहती है—'दूध न पियेगा तो मै तेरा सिर तोड दूँगी!' ··बुआ सिर कैसे तोडा जाता है? सिर मे निकलेगा क्या? क्या बिना तोडे यह नहीं खुल सकता?"

बुआ ने उसे अपने कण्ठ से दबाकर चुप कर लिया, "भइया, अब

तुम चुपचाप सो जाओ, कल सुबह खूब बातें करेंगे।"

"अब मुझे छोडकर नही जाओगी न ?"

"नही जाऊँगी, जब तुम कहोगे तभी जाऊँगी।" बुआ के स्वर काँपकर जैसे गीले हो गए, "तुम मुझे अपने घर रखोगे न सूरज भइया! खाना खिलाओगे न ?"

सूरज हाथ-पाँव मारकर उठ बैठा। कहने लगा, "अपनी थाली मे खिलाऊँगा, हाँ नही तो, मै तुझे अपनी थाली में खिलाऊँगा और तुम्ही मुझे भी खिलाओगी, नही तो कभी नही खाऊँगा, हाँ !"

यह कहकर वह फिर बुआ से लिपटकर सो गया, जैसे इस सकल्प और प्रतिश्रुति के लिए उसे पहले उठना ही था।

तब तीन महीने बीत चुके थे। मधू बुआ का पति ईशरी घर से लडाई करके न जाने कहाँ भाग गया था। पूरे दो महीने बाद दिल्ली से उसने मधू के पास एक ख़त भेजा, जिसमे उसने ढाई सौ रुपये की आवश्यकता प्रकट की थी। मधू ने अपने गले की सीतारामी बेचकर पति के पास रुपये भेज दिए थे।

यह सब सास ससुर से कितना भी छिपाकर किया गया, पर बात थी कि फूट ही गई। तब से घरवालो ने बुआ का वहाँ रहना हराम कर दिया। खाना-पानी उसके लिए शत्रु बना दिये गए।

तब से एक महीना बीत गया, पर ईशरी का कोई और पत्र न आया। मधू बुआ रास्ता देखती-देखती उदास हो गई। उन्ही क्षणों मे उसे सूरज की बेहद याद आती थी, लेकिन पिंजडे से उडकर अपने सूरज की शरण आना कोई साधारण बात न थी।

तडके ही चेतराम ने चिट्ठी देकर अपने आदमी को खुरजा रवाना किया। आदमी वहाँ से तूफान लेकर लौटा। मधू के ससुर ने कहला भेजा था कि 'जिस बहू के पाँव अपने-आप मेरे घर से निकल गए, वह

मेरे घर मे फिर पाँव नही रख सकती। जब पूत भाग गया तब ऐसी पतोहू से बेपतोहू भला !'

चेतराम ने मधू पर कुछ भी प्रकट न होने दिया, लेकिन मधू को जैसे सब-कुछ प्रकट था। वह पूरा चित्र देखने के उपरान्त ही वहाँ से चली थी। उस घर से उसे ऐसा कुछ भी नही देखने-सुनने को शेष रह गया था, जो उसे नई पीडा दे सके। घर-गृहस्थी की सारी पीडा जैसे उसमे कभी की पुंजीभूत हो चुकी थी। जहाँ इन्सान वस्तु समझ लिया जाय, वहाँ भावना की नई पीडा क्या ?

इसलिए चेतराम और दादी खुरजा वालों के प्रति अनेक तरह से उत्तेजित हुए, लेकिन मधू बस मुस्कराकर रह गई, जैसे उसे अपने पर दया आ गई हो, जिसका कोई भी उत्तर उसके पास था ही नही।

सूरज दौडा-दौडा राजू पंडित के यहाँ गया। सन्तोष बैठी खाना खा रही थी। उसे देखते ही वह खाने से उठ गई और बिना हाथ-मुँह धोए वह सूरज के सग हो ली।

सूरज उसकी उँगली पकडे मधू बुआ के पास आया और विश्वास से बोला, "देख, यह सन्तोष है।"

फिर सन्तोष को झकझोरते हुए आज्ञा दी, "नमस्ते कर ले, मेरी बुआ हैं—मधू बुआ। नहीं करेगी नमस्ते ?"

सन्तोष जैसे सहम गई, उसने सूरज की ओर देखते हुए बुआ के सामने अपने हाथ जोड दिए, "नमस्ते !"

सूरज हँस पडा, सन्तोष लजा गई और सूरज के कन्धे से सिमट गई।

बुआ की आँखे भर आईं।

'सूरज और सन्तोष, दोनों को ये नाम मैने दिये है,' मधू बुआ सोचने लगी—अत्यन्त अमृतमय-सुखद स्मृति को बाँधती हुई, 'ये नाम मैने दिये हैं—मैने दिये है—ये मेरे है—ये मेरे भाव है, सबसे पवित्र, सबसे निरपेक्ष।'

फिर वह बुआ से भाव बन गई, भाव से मूर्ति, भाव की मूर्ति, भाव की माँ!

उसी समय न जाने कहाँ से रूपाबहू दिखाई पडी। चुपचाप सामने आ खडी हुई।

दोनो बच्चे आकाश से जैसे जमीन पर उतर आए। सूरज मधू बुआ की उँगली पकडे खडा भी रहा, पर सन्तोष वहाँ से भागी और सीधी अपने घर चली आई।

कुछ ही क्षण मे वह फिर सूरज के पास आई, उसके सग बुआ के पास गई। उसने सूरज के कान मे कुछ कहा, और सूरज बुआ से बोला, "तुम्हे सन्तोष की माँ बुला रही है।"

बात रूपाबहू के कान मे पडी, वह उफन आई, "कोई जरूरत नहीं है। जिसे मिलना हो, वह खुद आये।"

"लेकिन सन्तोष की माँ यहाँ तक आ सकेगी? सुना है अब तो वह खाट से नीचे नही उतर पाती," मधू बुआ ने कहा। "चलो भाभी देख आये, तुम भी चलो न, कभी किसीके यहाँ आती-जाती नहीं।"

रूपाबहू चुप खडी रह गई।

मधू बुआ ने फिर कहा, "पहले ठाकुरद्वारे तक भी जाती थी अब तो!"

रूपाबहू सामने से हट गई।

उस दिन तो मधू बुआ सन्तोष की माँ शारदा के घर न जा सकी। दूसरे दिन रूपाबहू ने स्वय शारदा को देख आने के लिए कहा।

शारदा के सामने पहुँचकर मधू बुआ को लगा, जैसे वह किसी व्यक्ति के स्थान पर उसकी छाया-मात्र देख रही है—वह भी ककाल की छाया। लेकिन वह कंकाल स्त्री है, माँ है और उसकी छाया तो बस, समूचे स्त्रीत्व की छाया है।

प्रात.काल का समय था। राजू पंडित ठाकुरद्वारे में थे। दादी रसोई की तैयारी मे लगी थी।

आँगन मे सूरज और सन्तोष बैठे खेल रहे थे, गीली मिट्टी का कोई खिलौना बना रहे थे।

मधू शारदा के पास बैठी, उसे अपलक ताक रही थी—बल्कि जैसे वह शारदा के पीछे ससार की उन सारी सुहागन स्त्रियों को देख रही थी, जो समझती हैं, सिद्धि पाती है कि वे किसीकी परिणीता है, पर उन्हे आजीवन विश्वास नही मिल पाता, वह मान नही मिल पाता, जिसकी भूख लेकर वे इस संसार मे आती है। —

शारदा ने अपनी दोनो हथेलियो मे मधू के दाये हाथ को बाँध रखा था। उसे अजीब-सा सुख मिल रहा था,—ताज़े रक्त और स्पदन-शील त्वचा के बीच मासलता के स्पर्श का सुख।

और वह बिना रोये हुए भी रोती जा रही थी, जैसे वह मिट्टी अब भी गीली है—इतनी गीली, जिससे कोई मूर्ति बन सकती है।

शारदा ने बहुत धीमे स्वर मे कहा, "मधू बेटी, एक छोटी-सी इच्छा है मेरी। आलू की खूब गरम, मसालेदार सब्जी हो, हीग पडी हुई, बहुत बढिया उरद की दाल हो और गरम-गरम फुलके हो।"

शारदा के स्वर भीगकर फँस गए। वह मुँह मे आये हुए भाव-रस को एक घूँट बनाने लगी।

"मै आज ही तुम्हे खिलाऊँगी, चाची!"

यह कहकर वह वहाँ से उठी। चेतराम से कहकर चुपचाप उसने बाहर-ही-बाहर सब चीजे जुटा लीं, और शारदा के ही कमरे मे वह व्यजन भी तैयार हुआ।

पता नहीं, शारदा कब की, कितनी भूखी थी। पूरे स्वस्थ व्यक्ति जितना उसने भोजन किया और तृप्त होकर बोली, "अब मै मर जाना चाहती हूँ। दूसरी भूख मुझे न लगने पाए, उससे पहले ही मै मर जाना चाहती हूँ। पर पता नहीं क्यो, जो जितना ही मरना चाहता है, उसे उतना ही जीना पडता है, जैसे उसे उस इच्छा के अपराध का दण्ड भोगना होता है···क्यों मधू बेटी, ठीक नही कह रही हूँ मैं?"

"ठीक कह रही हो।"

अन्न की गरमी से शारदा की पलकें अपने-आप भारी होकर झुकने लगीं, झुककर मुँद गईं और बात-ही-बात मे वह बेखबर सो गई।

तब मधू ने उसके रूखे बालों मे तेल डाला, कंघी की और उज्ज्वल सीमंत मे सिंदूर भरकर उसे रक्तिम कर दिया।

सूरज और सन्तोष गीली मिट्टी से खेल चुके थे।

मधू ने उन्हे अपने पास बुलाकर कहा, "सन्तोष, तू यही अपनी माँ के पास रहा करना—यहाँ से हटना नही। माँ के ऊपर मक्खियाँ न बैठने पाये, माँ जिस चीज के लिए जब आवाज दे, तुम सदा खड़ी मिलना, हाँ। माँ बीमार है तुम्हारी—माँ नही रहेगी तब कहाँ पाओगी?"

सन्तोष माँ के सिरहाने खडी रही—धर्म की भाँति अटल, सुनिश्चित। सूरज भी वही उसके साथ खडा रहना चाहता था, पर मधू ने आग्रह से उसे अपने साथ लिया और घर चली।

रास्ते मे सूरज ने पूछा, "बुआ, सन्तोष की माँ नही रहेगी, कहाँ चली जायगी?"

"मर जायगी," बुआ के मुँह से एकाएक निकल गया, जिस पर वह पछताने लगी।

सूरज ने तुरन्त मृत्यु का अनुमान लगाया, "जैसे हमारे आँगन मे वह चूहा मर गया था।"

"हाँ, वैसे ही।"

"मरकर कहाँ चले जाते हैं?"

"बस, खो जाते है," बुआ ने बात समाप्त करनी चाही।

सूरज बुआ की बातों को अपने-आपमे दुहराने लगा, "मर जाते है, बस खो जाते है। संतोष की माँ खो जायगी, संतोष की माँ।" एकाएक सूरज रुक गया और अपने खिचे हुए भावों से बोला, "रूपाबहू भी मर

जायगी, वह भी खो जायगी।"

मधू के कान खडे हो गए। उसने ऐसी दृष्टि से सूरज को देखा कि वह समझकर सहम-सा गया कि उससे कोई बहुत बडी गलती हो गई। वह चुप हो गया और घर मे पहुँचकर भी चुप रहा, लेकिन अपने-आप मे वह गुनने लगा—सन्तोष की माँ उसे प्यार नहीं करती, न वह उसे खिलाती है, न टहलाने ले जाती है, न उसके लिए खिलौने और मिठाई मँगाती है, और सन्तोष की माँ मर जायगी। लेकिन जब सन्तोष की माँ मर जायगी तब रूपाबहू भी मर जायगी। वह भी तो मुझे प्यार नहीं करती। और दिन में कई बार वह सन्तोष के यहाँ गया। हर बार उसने पाया, जैसे बुआ ने कह रखा था, उसी तरह सन्तोष अपनी माँ के सिरहाने खडी थी।

तीसरे दिन शाम को बिना किसी सूचना के दिल्ली से गोरेमल आ पहुँचा। जहाँ जो हवा बह रही थी, वह वहीं-की-वहीं रुक गई। सारी दुकान खिच-तन गई। चेतराम ने अपने कान खडे कर लिए।

इस बार गोरेमल अपने साथ कुछ विशेष कागज-पत्तर लाया था। अखबार की पूरी एक गड्डी अपने संग बाँधे था। भोजन के उपरान्त जब वह दुकान वाले भीतरी कमरे मे जा लेटा तो उसने अपने चारों ओर अख़बारो को जैसे बिखेर लिया और उनमे लाल पेंसिल से जगह-जगह न जाने क्या-क्या कैसा निशान बनाने लगा।

पिताजी से भेंट करने के लिए तश्तरी मे दो दाने इलायची लिये भीतर से रूपाबहू निकली।

सिर गडाये ही गोरेमल ने बेटी को आशीर्वाद भी दिया और इलायची भी ले ली, पर उसके मन को इतनी भी फ़ुरसत न थी कि वह अपनी बेटी को देखे, उससे कुशल-समाचार दे-ले।

बडी देर तक रूपाबहू पिताजी को देखती खड़ी रही। जब वह हार-

"ठीक कह रही हो।"

अन्न की गरमी से शारदा की पलकें अपने-आप भारी होकर झुकने लगीं, झुककर मुँद गईं और बात-ही-बात मे वह बेख़बर सो गई।

तब मधू ने उसके रूखे बालो मे तेल डाला, कंघी की और उज्ज्वल सीमत मे सिंदूर भरकर उसे रक्तिम कर दिया।

सूरज और सन्तोष गीली मिट्टी से खेल चुके थे।

मधू ने उन्हे अपने पास बुलाकर कहा, "सन्तोष, तू यही अपनी माँ के पास रहा करना—यहाँ से हटना नही। माँ के ऊपर मक्खियाँ न बैठने पाये, माँ जिस चीज के लिए जब आवाज दे, तुम सदा खडी मिलना, हाँ। माँ बीमार है तुम्हारी—माँ नही रहेगी तब कहाँ पाओगी?"

सन्तोष माँ के सिरहाने खडी रही—धर्म की भाँति अटल, सुनिश्चित। सूरज भी वही उसके साथ खडा रहना चाहता था, पर मधू ने आग्रह से उसे अपने साथ लिया और घर चली।

रास्ते मे सूरज ने पूछा, "बुआ, सन्तोष की माँ नही रहेगी, कहाँ चली जायगी?"

"मर जायगी," बुआ के मुँह से एकाएक निकल गया, जिस पर वह पछताने लगी।

सूरज ने तुरन्त मृत्यु का अनुमान लगाया, "जैसे हमारे आँगन मे वह चूहा मर गया था।"

"हाँ, वैसे ही।"

"मरकर कहाँ चले जाते हैं?"

"बस, खो जाते है," बुआ ने बात समाप्त करनी चाही।

सूरज बुआ की बातों को अपने-आपमे दुहराने लगा, "मर जाते है, बस खो जाते हैं। सतोष की माँ खो जायगी, संतोष की माँ।" एकाएक सूरज रुक गया और अपने खिचे हुए भावों से बोला, "रूपाबहू भी मर

जायगी, वह भी खो जायगी।"

मधू के कान खड़े हो गए। उसने ऐसी दृष्टि से सूरज को देखा कि वह समझकर सहम-सा गया कि उससे कोई बहुत बड़ी गलती हो गई। वह चुप हो गया और घर मे पहुँचकर भी चुप रहा, लेकिन अपने-आप मे वह गुनने लगा—सन्तोष की माँ उसे प्यार नहीं करती, न वह उसे खिलाती है, न टहलाने ले जाती है, न उसके लिए खिलौने और मिठाई मँगाती है, और सन्तोष की माँ मर जायगी। लेकिन जब सन्तोष की माँ मर जायगी तब रूपाबहू भी मर जायगी। वह भी तो मुझे प्यार नहीं करती। और दिन में कई बार वह सन्तोष के यहाँ गया। हर बार उसने पाया, जैसे बुआ ने कह रखा था, उसी तरह सन्तोष अपनी माँ के सिरहाने खड़ी थी।

तीसरे दिन शाम को बिना किसी सूचना के दिल्ली से गोरेमल आ पहुँचा। जहाँ जो हवा बह रही थी, वह वहीं-की-वहीं रुक गई। सारी दुकान खिच-तन गई। चेतराम ने अपने कान खड़े कर लिए।

इस बार गोरेमल अपने साथ कुछ विशेष कागज-पत्तर लाया था। अखबार की पूरी एक गड्डी अपने संग बाँधे था। भोजन के उपरान्त जब वह दुकान वाले भीतरी कमरे मे जा लेटा तो उसने अपने चारों ओर अखबारों को जैसे बिखेर लिया और उनमे लाल पेंसिल से जगह-जगह न जाने क्या-क्या कैसा निशान बनाने लगा।

पिताजी से भेंट करने के लिए तश्तरी मे दो दाने इलायची लिये भीतर से रूपाबहू निकली।

सिर गड़ाये ही गोरेमल ने बेटी को आशीर्वाद भी दिया और इलायची भी ले ली, पर उसके मन को इतनी भी फुरसत न थी कि वह अपनी बेटी को देखे, उससे कुशल-समाचार दे-ले।

बड़ी देर तक रूपाबहू पिताजी को देखती खड़ी रही। जब वह हार-

कर लौटने को हुई तब एक क्षण के लिए गोरेमल ने सिर उठाया, "रूपा, तेरी माँ ठीक से है। और तेरा मुन्ना कहाँ है ?"

रूपाबहू चुप खडी थी।

"सूरज उसका नाम रखा है, बहुत अच्छा नाम है—गोरेमल की तरह सूरजमल !" गोरेमल बहुत प्रसन्न था, "उसे सदा अपने पास रखो, अब तो वह कुछ पढने-लिखने भी लगा होगा, क्यो ?"

रूपाबहू ने जैसे कुछ न सुना। बोली, "पिताजी, इस बार मै भी आपके सग चलूँगी। हर बार बहाना बना देते है आप। इस बार मै माँ को देखे बिना नही मानूँगी।"

गोरेमल सिर गडाकर अपने कागजो मे उलझ गया। रूपाबहू कुछ देर खडी रही, फिर धीरे से भीतर चली गई।

पूरे दो घण्टों मे जब गोरेमल ने सब कागजों को देख लिया, हिसाब-किताब सब दुरुस्त कर लिया, तब उसने चेतराम को अपने पास बुलाया और उसके सामने लाल निशान लगे अखबारो को बिखेर दिया। चेतराम ने सारे अखबारो को उलट-पुलट लिया, पर वह चुपचाप सिर गडाये ही रहा।

गोरेमल की आवाज गूँजी, "क्यों, कुछ समझ नही सके न ?... तभी तो कहता हूँ, तुम लोग क्या व्यापार करोगे ! अरे, जमाने की नब्ज पकडो। हर आदमी को सूँघकर चलो, तब व्यापार चलता है, गद्दी पर बैठने से कुछ नही होता। हुँ, गद्दी पर तो कोई भी बैठ सकता है।"

चेतराम सिकुडकर भीगी बिल्ली बन गया।

गोरेमल कहता जा रहा था, "अरे चेतराम, हाथ को पारस पत्थर जैसा बना लो, जिसे छुओ वही सोना हो जाय। सोना और ससार ! समझे, क्या मतलब ? अर्थात् जिसके पास सोना है उसीका संसार है। लेकिन ख़बरदार चेतराम, जो सोयेगा सो सोना नहीं पायेगा, जो जागेगा, नींद में भी जो जागेगा, सोना उसीका होगा।"

यह कहकर गोरेमल ने अखबारो को अपनी ओर समेट लिया और रहस्य की वाणी मे बोला, "अखबार मे जो यह लाल-लाल निशानात लगे है, ये सोने की खाने हैं। नही समझे? क्यों समझोगे? नालायक ।" कुछ क्षण चुप रहने के बाद गोरेमल ने अपनी आवाज और धीमी कर ली, "सुनो, जागो चेतराम! कुछ ही साल के भीतर निश्चय ही ससार मे कोई महायुद्ध होगा और यह महायुद्ध अग्रेज लडेगे और लडवायेगे। इस देश मे भी कोई क्रान्ति होगी। चाहे हिन्दू-मुसलमान की लडाई हो, चाहे आपस मे सबकी लडाई हो। देखो न चेतराम, कैसी-कैसी पार्टियाँ बन रही है, जैसे हर आदमी एक पार्टी है। पार्टी के भीतर पार्टी और हर आदमी के भीतर द्वेष, कलह एव असन्तोष। इस सबका असर हिन्दुस्तान के व्यापार पर पडेगा चेतराम, ख़ासकर गल्ले के बाजार पर!" यह कहकर गोरेमल ने अख़बारो को बिखेर दिया, "सूँघो इन अख़बारों को, नब्ज पकडो भविष्य की और उसके इशारों को समझकर काम करना शुरू कर दो। देखो न, ये लाल-लाल निशान देखो! यूरोप को तो छोडो ही, अरे अपने मुल्क की नब्ज़ देखो, यह काग्रेस, उसमे यह गरम दल, यह नरम दल, गरम दल मे भी यह क्रान्तिकारी, यह फारवर्ड ब्लाक। और यह हिन्दू महासभा, यह हरिजन सभा, यह डिप्रेस्ड क्लास और इस सबका बाप जमींदार असोसिएशन और प्रिस कमेटी। एक ओर आजादी की लडाई, सत्याग्रह, दूसरी ओर इलेक्शन, और अग्रेज़ो का यह सबसे भयानक हथियार मुस्लिम लीग एव जिन्ना साहब। ये सब लडाई और तबाही के आसार है। और यही 'बिज़नस' का नुक्ता है।"

चेतराम ने सिर ऊपर उठाया। चेहरे से वह अब भी घबराया ही दीख रहा था, पर उसके मुख पर आभा छिटक रही थी, जैसे वह भीतर-ही-भीतर मुस्करा रहा हो, कोई अद्भुत रहस्य पाकर उसे मन के आह्लाद में छिपा रहा हो।

पूरे चार दिन रहकर गोरेमल दिल्ली लौट गया। रूपाबहू से कह

गया कि तुम किसीके संग दिल्ली चली आना। पिता के जाते ही रूपा-बहू ने चेतराम के नाकों दम कर दिया।

चेतराम अपने-आपमे बेहद परेशान हो रहा था। उसे याद था, ब्याह के डेढ वर्ष बाद एक बार रूपाबहू मायके गई थी। तब वह भी तीसरे दिन उसके पीछे चला गया था और सग लेकर लौटा था। उसके बाद दो बार और वह उससे दूर हुई थी, तब चेतराम उसकी याद मे छिप-छिपकर रोया करता था। बहुत दिन के बाद इस बार फिर रूपाबहू दिल्ली जाने के लिए हठ कर रही थी और चेतराम घबरा रहा था।

लेकिन किसी भी मूल्य पर रूपाबहू की बात तो पूरी होनी ही थी। मोह का मारा चेतराम स्वय उसे पहुँचाने दिल्ली गया, यद्यपि चेतराम को देखकर गोरेमल बहुत नाराज हुआ, उसे बहुत बुरा-भला कहा।

दूसरे ही दिन चेतराम को लौटना पडा। उस रात को वह रूपा-बहू के सामने रोने लगा और रास्ते-भर उसकी आँखे रूपाबहू की याद लिये डबडबाई रही। किसीसे एक शब्द तक उससे न बोला गया, न कुछ खाया, न पिया, बस बस्ती लौटकर वह एकदम गद्दी पर सो गया।

रूपाबहू के संग उसका सूरज बेटा न जा सका, वह गया ही नहीं। वह कहता था, 'मै बुआ के संग रेलगाडी पर जाऊँगा।' और रूपाबहू अपने सग केवल छोटी लडकी गौरी को ले गई।

दस-बारह दिन के बाद।

एक दिन सूरज बुआ के हाथ से रात का खाना खा रहा था। इधर-उधर की बाते करते-करते वह सहसा बीच ही मे यह पूछ बैठा, "बुआ, बहू खो गई क्या?"

बुआ चुप थी।

सूरज आगे बोला, "मर गई बहू?"

बुआ का मुख आरक्त हो आया। उसने जूठे हाथ से सूरज के

गाल पर एक चपत दे दी और भय से इधर-उधर देखने लगी।

सूरज रोकर वहीं लोट गया। लोटा ही नहीं, वरन् अपने सिर को जमीन पर पटकने लगा।

बुआ ने बहुत समझाया, बडी मिन्नतें कीं, लेकिन सूरज ऐसा बिगड खडा हुआ था कि वह किसी तरह काबू मे आता ही न था, बस, रोता ही जा रहा था जैसे वही उसके मन का सत्य हो, वही उसका सहज विद्रोह हो। बुआ संग लेकर सोईं और उसे चुप कर, सुलाने के लिए एक कहानी कहने लगी, "भइया, मेरे राजा भइया! सुन रहा है न? दो चिडियाँ थीं—और एक राजा था। राजा के घर के सामने उन चिडियों को रुई का एक गत्ता मिला। उसे लेकर वे धुनियाँ के पास गईं। धुनियाँ ने रुई धुन दी और उसमे से अपनी मजदूरी का आधा हिस्सा ले लिया। फिर वे जुलाहे के पास गईं। जुलाहे ने कपडा बुन दिया और आधा ले लिया। कपडा लेकर वे दरजी के पास गईं। दरजी ने दो टोपियाँ सी दीं। एक टोपी दरजी ने ले ली और दूसरी टोपी चिडिया ने अपने चिडे के सिर पर रख दी। दोनों ने राजमहल पर बैठकर गाना शुरू किया, 'मेरी टोपी कितनी अच्छी, ऐसी टोपी राजा के पास नहीं।' राजा ने अपने सिपाहियों को हुक्म देकर चिडे से उसकी टोपी छिनवा ली। तब दोनों ने कहना शुरू किया, 'राजा का धन घट गया, राजा गरीब है, उसने हमारी टोपी छीन ली।' तब राजा ने उनकी टोपी लौटा दी, और फिर वे गाने लगे 'हाय-हाय, राजा डर गया!' " मधू बुआ ने रुककर देखा, सूरज सो गया है। आँखें ढप गई है, लेकिन जिस बिन्दु पर पलकें रुकी है, वहाँ आँसू की एक पतली-सी रेखा है।

छेदामल नगर हिन्दू महासभा का सेक्रेटरी है। बडी कोठी का सैयामल गऊशाला कमेटी का प्रेसीडेण्ट है। घीसिरा मुहल्ला का चौधरी

रामनाथ नगर काग्रेस कमेटी का जॉइण्ट सेक्रेटरी है। बडे दरवाजा का गुलजारीलाल नगर व्यापारमण्डल का वाइस-प्रेसीडेण्ट है। ऊँची हवेली के साहूगुरचरनलाल म्युनिसिपेलिटी के चेयरमैन है। छीतरमल कच्ची आढतिया का छोटा भाई गीदरमल म्युनिसिपेलिटी मे सेक्रेटरी है। शम्भू दलाल का भतीजा काग्रेस इलेक्शन कमेटी का कन्वीनर है। सरजू सुनार आर्यकन्या पाठशाला का ऑनरेरी सेक्रेटरी है। तुलाराम द्वादशश्रेणी कॉलेज मैनेजिग कमेटी मे मेम्बर है। वृन्दावन बिहारीलाल भार्गव प्रान्तीय काग्रेस कमेटी का जॉइण्ट सेक्रेटरी है।

लेकिन चेतराम क्या है?

कुछ नही, बेचारा काग्रेस का चार आने वाला मेम्बर भी नही हो सका है। दिन-रात राहु-केतु की तरह गोरेमल जो उसके चारो ओर रहता है।

गोरेमल कहता है, बिजनसमैन का इन पार्टियो और सस्थाओं से क्या मतलब! बस दूर से तमाशा देखो, रामझरोखे बैठिके—रामझरोखे मे इसलिए कि कोई माई का लाल भाँप भी न सके कि चेतराम भी कहीं से कुछ देख रहा है!

लेकिन चेतराम के मन की यह उत्कट इच्छा रही है कि वह कांग्रेस पार्टी मे रहे—कुछ नहीं तो मेम्बर तो हो हो जाय। उसने अपने 'सुखसागर' ग्रन्थ मे गाधी, जवाहरलाल, सुभाषचन्द्र, मदनमोहन मालवीय, गोखले, पटेल और तिलक के चित्रो को बड़ी श्रद्धा से सँजो रखा है और इन सबको वह भगवान् के अवतार मानता है।

उस रात हनुमान वाटिका मे नगर काग्रेस सभा के तत्त्वावधान मे एक विराट् सभा हो रही थी। उसमे रामपुर, बदायूँ और अलीगढ़ से वे तीन सत्याग्रही आये थे, जो क्रमश एक जलियाँवाला बाग हत्या-काड का घायल सत्याग्रही था, दूसरा खेड़ा-अहमदाबाद का सत्याग्रही था, और तीसरा वह था जो गांधीजी के संग मोतिहारी (चम्पारन) गया था और अमृतसर कांग्रेस मे अंग्रेज़ों के फौजी राज के खिलाफ़

बोल चुका था।

गद्दी पर रामचन्दर मुनीम को बैठाकर चेतराम उस रात हनुमान वाटिका की ओर जाने लगा। जैसे ही वह बड़ा दरवाजा पार कर वार्ष्णेय चिकित्सालय के पास पहुँचा, उसके कानों में कांग्रेस वालंटियर्स के समवेत स्वर गूँज उठे—

सैय्याद ने हमारे चुन-चुन के फूल तोड़े
उजड़े हुए गुलशन मे तुम गुल खिलाते जाना
कुछ जेल में पड़े हैं हम क़ब्र मे गड़े है
उजड़ी हुई क़ब्रों पर दीपक जलाते जाना!

भावावेश मे चेतराम की बाँहे फड़कने लगी। वह आगे का रास्ता दौड़कर तय करने लगा। वह जल्दी-से-जल्दी उस विराट् सभा में पहुँचकर सबके स्वर मे अपना स्वर मिलाना चाह रहा था। दौड़कर हाँफता हुआ चेतराम अपना दायाँ हाथ नचा-नचाकर अपने-आपमें कहने लगा—

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं, नर पशु निरा है और मृतक समान है॥

७

रूपाबहू को दिल्ली गये चार महीने से ऊपर हो गए। तब से दो बार चेतराम उसे विदा करा लाने के लिए गया, पर वह असफल रहा। इधर वह तीन चिट्ठियाँ भी डाल चुका है, लेकिन किसीका जवाब ही न आया।

रूपाबहू ने दिल्ली मे चेतराम के तीव्र आग्रह का जवाब देते हुए उस बार कहा था, 'क्या पागल बने फिर रहे हो मेरे लिए? झूठे कहीं के! वहीं रखकर क्या कर लेते हो? चौबीस घण्टे तो तुम्हे अपने

व्यापार से फुरसत नहीं मिलती। सदा व्यापार, खाते समय भी उसीकी चिन्ता, सोते समय भी उसीके स्वप्न! तुम जैसे लोगो को औरत नही चाहिए, अनाज के बोरे चाहिएँ। औरत बहुत-कुछ चाहती है, बहुत बडा कलेजा होना चाहिए औरत रखने के लिए—बहुत कुछ चाहती है, तभी वह बहुत कुछ देती है, लेने वाला भी तो हो कोई!"

चेतराम रूपाबहू की इस बात को पूरी तरह से समझ न सका था। उससे कुछ बोला भी न गया था। इस बात को वह गुन भी न सका, पता नहीं, रूपाबहू के कहने का क्या मतलब था! उँह, छोडो इसे, बडे घर की बेटी है मेरी बहू, कुछ बडी ही बात सोचती-कहती होगी। बडी अच्छी, बडी सुन्दर!

चेतराम अपनी गद्दी पर बैठा कुछ और भी सुन्दर अपनी याद मे बाँधने जा रहा था, तभी सामने से राजू पण्डित की आवाज आई, "आयुष्मान् लाला, आयुष्मान्! सब आनन्द-मंगल! जय हो · जय हो!" यह कहते-कहते राजू पण्डित गद्दी पर बैठ गए और परम भाव से कहने लगे, "बहुत दिन हो गओ सेठजी, रूपाबहू मायके से न आई! लक्ष्मी इतने दिन तक घर से बाहर रहे, ऐसा हमारो शास्त्र नहीं कहता लाला! लक्ष्मी टंट मे, या लपेट मे, बस!"

राजू पण्डित हँस आए और उसी हास्य मे लाला चेतराम को भी बहना पडा। वैसे चेतराम का मन अब और भर गया। राजू पण्डित ने कहा, "मै स्वय दिल्ली जा सकता हूँ, और रूपाबहू को बात-की-बात मे अपने सग लिवा ला सकता हूँ, औरत तो बस, तुम जानो हे लाला, बात और भाव की भूखी होती है और ठाकुरजी की कृपा से ·।"

राजू पण्डित एकाएक चुप हो गए, क्योंकि चेतराम जैसे कुछ सोचने लगा था। एकाएक चेतराम बोला, "पुजारीजी, मन कहता है कभी कि सब त्याग दूँ और गाधीजी के संग किसी सत्याग्रह मे प्राण दे दूँ। कभी-कभी मन ऊब जाता है इस जीवन से। पुजारीजी, यह

बात अपने ही तक रखियेगा, गोरेमल बडा झक्की आदमी है।'

पुजारी ने कहा, "राम-राम कहो जी लाला! मुझे भी काग्रेस पसन्द है, लेकिन मुझे गाधीजी पसन्द नही आते—हिन्दू-हरिजन-यवन-पारसी-डोम धरकार सब एक समान! कितनी गन्दी बात है यह! इस अर्थ मे तो अपनी हिन्दू सभा उत्तम है।"

सहसा इसी बीच फोन आ गया और चेतराम उसमे फँस गया।

राजू पण्डित के पास एक अद्भुत शक्ति थी। वह थी उनकी जिह्वा की सरस्वती, जैसे अमृत बरसता रहता हो उससे। कुछ भी हो, कोई और कैसा भी क्यो न हो, राजू पण्डित की मधुर वाणी उसे पिघलाकर छोडती थी। और बोलते-बोलते जब एकाएक बीच मे रुककर, अपने चन्दन-भरे माथे पर सिकुडन पैदा कर, आँखों की दोनो पुतलियो को ऊपर चढाने लगते, तो ऐसा लगता जैसे जोगी की समाधि लगने जा रही है।

चेतराम बुत-सा बैठा रहा। राजू पण्डित की बातों से बचने के लिए वह एकाएक गद्दी से उठ खडा हुआ और सीधे घर मे चला गया।

उस दिन दोपहर के समय सूरज सडक पर खेलता-खेलता न जाने किधर बढ गया और किसीको उस समय ध्यान भी न रहा। दो घण्टे बाद जब सन्तोष अपने घर से आकर बुआ के सामने सूलज-सूलज की रट लगाने लगी, तो लोगो को सुधि हुई कि सूरज कही गायब हो गया है।

परेशान बुआ स्वयं ढूँढने निकली। दुकान के सारे नौकर दौडे। चेतराम बेहाल होने लगा।

लेकिन सूरज कहीं बहुत दूर नहीं गया था। सडक से बढ़ता हुआ वह छेदामल के अहाते में चला गया था। उस अहाते मे अनाज-गुड से भरी हुई कम-से-कम पचास गाडियाँ खडी थी और पचास से भी ज़्यादा आवारा कुत्तो की वहाँ भीड लगी थी। ये कुत्ते रोज़ इसी

आशा मे वहाँ बैठे रहते कि शाम होगी और दयालु छेदामल उन्हे बाजरे की रोटियाँ खिलायेगा। बैलगाडियो, किसानो, आढतियों, दलालो, साहूकारो और आवारा कुत्तो के अतिरिक्त उस अहाते में तीस-चालीस लडकी-बच्चो की भी टोली रहती थी। बच्चो मे जितनी लडकियाँ थी वे दौड-धूप, छीन-झपटकर बैलगाडियों के नीचे से गोबर इकट्ठा करती थीं और जो लडके थे, वे ज़मीन से एक-एक दाना अनाज बीनते थे, पैसे और गिट्टी से 'गुप्प डाल' के खेल खेलते थे और आपस मे गालियाँ दे-देकर खूब लडाई करते थे। गालियों में विशेषकर बहनो की गालियाँ देते थे, क्योंकि उन सबकी बहने सिर पर गोबर उठाए वही, उनके इर्द-गिर्द खडी मिलती थीं।

सूरज चुपचाप अहाते मे घुसकर बच्चो की टोली के पास आ खडा हुआ और अतुल जिज्ञासा से उन्हे अपलक देखने लगा, चुपचाप एक निरपेक्ष दर्शक की भाँति उनके जीवनपूर्ण खेल, लडाई, मार-पीट और उनकी गालियाँ देखता-सुनता रहा।

एकाएक कुछ लडकों की दृष्टि सूरज पर पडी। दो सयाने लडके उसकी ओर बढ़े। तब सूरज वहाँ से निकल भागा और इतने डर से भागा कि चार ही कदम पर गोबर से फिसलकर मुँह के बल गिर पडा और उसी स्थिति मे रो पडा। कुछ लडके सूरज को घेरकर खड़े हो गए और हँस-हँसकर तालियाँ पीटने लगे। दो लडके उसे उठाने लगे, पर वह उठता ही न था, जैसे वही उसका आत्म-सम्मान था। तब वही लडके फिर गालियो में बाते करने लगे।

लडकों के सरदार की आवाज उठी, "खूब गाली दो, तब यह अपने-आप उठकर भागेगा—कछुआ कहीं का।"

उसी समय चेतराम के दलाल शम्भू की दृष्टि वहाँ गई। उसने सूरज को उठा अपने कन्धे से लगा लिया। रास्ते में सूरज शम्भू दलाल के कन्धो पर क्रोध से छटपटाता रहा और सम्पूर्ण शक्ति और साधन से वह अपनी उस स्थिति से जैसे विद्रोह करता गया।

रात को जब सब-कुछ शान्त हुआ और मधू बुआ उसे सुलाने चली, तब सूरज ने कहा, "बुआ, मै गाली दूँ तुम्हे ?" बुआ को कुछ न सूझा। वह हैरान रह गई। उसने सुना, सूरज आगे कह रहा है, "बुआ, आज मैने गाली सीखी है, बहुत-सी गाली, दूँ ?" बुआ ने उसके मुख पर हाथ रख दिया, "बहुत बुरी चीज ! जो मुँह से गाली निकालता है, उसकी जीभ कट जाती है और सारे मुँह में फोडे निकल आते है, बडी गन्दी चीज है।"

सूरज चुप रह गया, जैसे वह कुछ गुनने लगा, किसी सत्य को अनुमान में बाँधने लगा। सहज ढंग से बोला, "तो बुआ, उन सब लडको की जीभ कट गई है ? सबके मुँह में फोडे निकल आए है ?"

"और क्या ? तभी तो उनके पास कोई नहीं जाता।"

सूरज चुप रह गया।

दो दिन बाद सूरज फिर सडक पर टहलता हुआ छेदामल के अहाते की ओर जाने लगा, लेकिन उस दिन दुकान के आदमियों के हाथ पकडा गया। इस तरह सूरज के टहलने-घूमने पर निगाह रखी जाने लगी, और वह भी दुकान के नौकरों की नज़र !

तब सूरज छिपना सीखने लगा। नज़र से बचकर भटकने के लिए सोच बैठा।

और एक दिन दोपहर से भी पहले वह छेदामल के अहाते में जा पहुँचा। लडकों की टोली में उसने एक विशेष लडके को देखा। वह लडका सूरज से दो-ढाई साल बडा था। उसका सारा पहनावा बडे सुन्दर ढग का था। सब बच्चे उसे रम्मन के नाम से पुकार रहे थे। और वह रम्मन अपने दायें हाथ में एक छोटी-सी छडी लिये हँस-हँस, दौड-दौडकर उन सारे बच्चो को मार रहा था। आज का जैसे वही खेल था। सूरज एक बैलगाडी के पीछे खडा हुआ यह सारा खेल मन्त्र-मुग्ध होकर देख रहा था। वह खेल था, लेकिन कुछ लड़के कभी-कभी रम्मन की छडी के प्रहार से रो क्यों देते हैं ? और जब वे

रोते है, तब रम्मन उन्हे कैसी-कैसी गालियाँ देता है। तो वह रम्मन भी गाली देता है और उसे जवाब देने वाला उन लडको मे कोई नहीं है। बल्कि वे लडके आपस में न जाने क्यो गाली बक रहे है। उन सबकी ज़बान कट गई होगी, सबके मुँह मे फोडे निकले होगे! सूरज खडा-खडा उन तीनों लडको को देख रहा था, जिन्होने उस दिन उसे मुँह के बल गिराया था और उसे गालियाँ दी थी।

सूरज धीरे-धीरे बढ़कर बच्चो के सामने आ खडा हुआ। वे दो पुराने लडके और उनका सरदार—ये तीन उसकी ओर सकेत करके बडी ज़ोर से हँसे।

रम्मन ने सूरज को बहुत ध्यान से देखा, फिर हँसते हुए लडकों के सरदार की पीठ पर एक छडी मारकर सबको चुप करा दिया। हाथ से सकेत करके वह सूरज को अपने पास बुलाने लगा और सहमा हुआ सूरज न जाने किस विश्वास पर रम्मन के पास चला आया।

लडको के सरदार का नाम जगनू था। वह रंग का बेहद काला, पर शरीर का उतना ही स्वस्थ था। सब लड़कों मे बडा लगता था।

जगनू तपाक से बोला, "रम्मन भइया, यह चौडी सडक वाले लाला चेतराम का लौंडा है।" फिर सूरज से बोला, "क्यों बे, तेरो नाम क्या है?"

"सूरज," रम्मन की ओर देखकर उसने उत्तर दिया।

"खेलोगे हमारे सग?" रम्मन ने पूछा और सूरज के कोट की दोनों थैलियों को टटोलने लगा। उसमें मधू बुआ के रखे हुए काजू और किसमिस के दाने थे। सूरज बडे उत्साह से स्वयं दोनों हाथों से सारे मेवे निकाल-निकालकर रम्मन की हथेलियो पर रखने लगा।

थोडा-सा मेवा जगनू को मिला और शेष रम्मन खा गया। सूरज खडा-खडा जगनू और रम्मन के बहुत तेज़ी से चलते हुए मुखो को निहारता रहा, उनकी लम्बी जीभे देखता रहा। और उसने यह भी देख लिया कि उनमें से किसीके भी मुँह में कही कोई फोडा-फुंसी नहीं

है। और तब सूरज उस टोली का दोस्त बना लिया गया।

उस दिन जब वह अपने घर की ओर चला, तो उसमे एक नया उत्साह और एक नई उमंग बरस रही थी।

बिना किसी की आँख से छिपे, बिना अपने को चुराये हुए वह बडी मस्ती से दुकान पर होता हुआ सीधे घर चला गया और मधू बुआ को जैसे डाँटकर बोला, "तू बडी झूठी है बुआ! कहाँ उनकी जीभ कटी है जो गाली देते हैं? किसीके मुँह मे कोई फोडा भी तो नही!" बुआ हतप्रभ रह गई। उसे पता हो गया, वह कहाँ से लौटा है। वह एक क्षण तो सूरज को देखती रह गई, फिर स्वर मे अनुशासन के भाव का वजन देकर बोली, "पहले यह तो बता, कहाँ गया था तू? अपने मन के होते जा रहे हो? गन्दे लडकों मे जा मिलते हो? गन्दे लडके और गन्दी आदतें!"

बुआ का स्वर तीव्र होता गया। सूरज के पास सीता दीदी आ खडी हुई। और सूरज ने देखा, आँगन मे सन्तोष भी आकर चुपचाप खडी है। उसी क्षण वह झपटकर बुआ से लिपट गया और रो-रोकर उसके अक मे सिर पटकने लगा।

तब बुआ हँस पडी, "नहीं-नही, मेरा सूरज राजा बेटा है। यह कहाँ गन्दे लडकों मे खेलता है? क्यों सीता, भइया अच्छा लडका है न? सन्तोष अच्छी लडकी नहीं है—गन्दी लडकी!"

सीता के समर्थन को सुन सूरज ने सिर उठाकर सन्तोष को देखा। सूरज की आँखे आँसुओं मे डूबी थी और उस दृष्टि के बीच से उसे सन्तोष ऐसी लगी, जैसे वह भी रो रही हो।

तब सूरज आँसू पोंछकर उसी दम चुप हो गया और सन्तोष के पास आ खडा हुआ।

सन्तोष बोली, "मेरे घर नही चलोगे?"

सूरज कुछ बोला नही, उसी क्षण वह सन्तोष के संग जाने लगा।

बुआ ने दूध पिलाने के लिए पुकारा, सीता उसे रोकने के लिए

दौडी, पर सूरज हाथ न लगा।

पता नहीं, कब से राजू पडित शारदा से लड रहे थे। शारदा से बहुत बोला न जाता था, बार-बार खाँसी उठ आती थी, पर पूरा बोलने के बदले वह पूरी आँख रो अवश्य रही थी।

राजू पडित ने व्यग्य किया, "बिना मुझे मारे भला तू मरने वाली है ?"

~ "तो क्या मैं जिन्दा हूँ ?"

"ज़िन्दा तो नही हो, लेकिन गज-भर की जबान तो है।" राजू पडित ने मुँह मे तम्बाकू-डालते हुए जैसे अपने-आपसे कहा, "बेधर्मी कहीं की !"

बुझी हुई शारदा सहसा जल उठी, "बेधर्मी तू, तेरी सात पुस्त, मै क्यो होने लगी ?"

"नही तो क्या मधू के हाथ का थाली-भर भोजन मैंने किया था ?"

शारदा को तीर-सा लगा। वह तिलमिला उठी और रोकर बोली, "तेरे धर्म में लगे आग ' और तू जो इधर-उधर चाटता फिरता है, वहाँ तेरा धर्म पलता है क्या ? मेरे मुँह से न निकलवा, मै सब कह दूँगी। चुप रहती हूँ तभी क्या ? सब जानती हूँ, तभी चुप हूँ—तभी मौत के पास भी हूँ।"

राजू पडित के पैर काँप गए। वह चुपचाप विष का घूँट पीकर बाहर जाने लगे। सामने से मधू आ रही थी। राजू पंडित ने झट हँसने का अभिनय किया, "कहो मधू बेटी, कैसी हो ? रूपाबहू कब आ रही हैं ? गृहस्थी का सारा भार तुम्हीं पर होगा, क्यों ? ओह ओ हो कितनी लायक बेटी हो तुम 'साक्षात् लक्ष्मी !"

मधू अपनी गति से भीतर चली गई। शारदा अपनी खाट पर पडी-पडी निःशब्द रो रही थी। मधू को देखकर वह बिलकुल खुल-कर रो पडी और बीच-बीच मे कुछ कहने का प्रयत्न करने लगी। अंत मे उससे केवल इतना ही कहा गया—इतना ही, "मै क्यों जी

रही हूँ बेटी ?"

मधू ने शायद इतना ही समझा, पर उसके पास कुछ उत्तर देने को न था। वह अपनी समूची करुणा से शारदा को ताकती रही।

मधू बुआ सूरज को पकड़ने आई थी, लेकिन सूरज वहाँ न था और न सन्तोष ही दिखाई दे रही थी। पता नही, दोनो कहाँ थे। उदास-सी मधू बुआ घर लौटने लगी। ठाकुरद्वारे को पार करते-करते कहीं से एकाएक उसे सूरज की आवाज सुनाई दी। घूमकर उसने सूने ठाकुर-द्वारे मे झाँका, और आश्चर्य मे डूब गई—दोनों ठाकुरजी के सिंहासन पर पैर रखकर सारी देव-प्रतिमाओं को उलट-पुलट रहे थे।

जब तक मधू बुआ ठाकुरद्वारे मे प्रविष्ट हो, सूरज और सन्तोष ने उसे देख लिया। देखकर वे दोनों डरे अवश्य, पर इतना नही कि सामना न कर सके। बल्कि बुआ की क्रोध-भरी दृष्टि देख वे फूटकर हँस पड़े और बुआ के पैरो से लिपट गए, जैसे वे दोनों 'चोर-साह' का खेल खेल रहे थे, जिसमे चोर बुआ पकड़ी गई और खेल ख़त्म हो गया।

दूध पीकर न जाने कब सूरज फिर सन्तोष के संग भाग गया। शाम को लौटा, और आते ही एक अजीब बिगड़ी मुद्रा मे बुआ से उलझ गया। कहने लगा, "बुआ, मेरी माँ कहाँ है ?"

"बेटे, दिल्ली गई है।"

"तो सतोष की माँ दिल्ली क्यो नही गई ?"

"वह क्यों दिल्ली जायगी ? वह तो बीमार पड़ी है।"

"अच्छा, जब वह अच्छी हो जायगी, तब दिल्ली जायगी और सन्तोष यही रह जायगी न ?"

मधू बुआ अब क्या उत्तर दे ? उत्तर तो प्रश्नो के देते बनते है। वह चुप रह गई, जैसे उस पर किसी बुज़ुर्ग की डाँट पड़ गई हो।

सूरज ने मचलकर पूछा, "सन्तोष की माँ उसके लिए रोती है, मेरी माँ तो मेरे लिए और भी रोती होगी न ?"

"हाँ बेटे, बहुत रोती होगी।"

"तब मुझे वह छोडकर क्यो चली गई ? बोलो, वह क्यों चली गई ? वह मेरे लिए वहाँ क्यो रोती है, मै तो यहाँ हूँ !"

सूरज के पास उस दिन अनेक प्रश्न थे। वह अपने प्रश्नों के साथ मचल भी रहा था और उसकी तीव्रता के फलस्वरूप जिद भी कर रहा था। मधू बुआ जब हारकर मौन हो जाती तब सूरज जमीन पर पैर पटकने लगता, एडियाँ रगडने लगता और इतने आवेश मे आ जाता कि जैसे उसका दम घुट रहा हो, और वह उस घुटन को तोडना चाहता हो।

एक दिन सूरज ने छेदामल के अहाते मे जाकर रम्मन के कान में कोई बात कही। रम्मन उससे बेहद खुश होकर सूरज को अपने घर लाया।

छेदामल की पत्नी बसन्ता ने चेतराम के पूत सूरज को पहली बार देखा। जी भर गया। उसके हाथ मे दो लड्डू देकर उसने सूरज का माथा छुआ।

रम्मन को जल्दी मची थी। मौका पाते ही वह सूरज को लेकर चम्पत हो गया। दोनों ठाकुरद्वारे मे पहुँचे। दोपहर के बाद का वही दो घंटे का मौका था जब पुजारी राजू पंडित ठाकुरद्वारे मे नहीं रहते थे।

लेकिन उस दिन ठाकुरद्वारे के भीतर ताला पडा था। सूरज ने कई बार बन्द ताले को हिलाया-डुलाया, फिर रम्मन को देखकर उदास हो गया।

रम्मन ने पूछा, "किसने ताला लगाया है ?"

"पुजारी ने राजू पडित ने।"

रम्मन ने छूटते ही पुजारी को एक भद्दी गाली दी और सूरज से कहा, "तुम भी गाली दो।"

सूरज चुप, निश्चेष्ट उसका मुख ताकने लगा।

"देता क्यों नही ?"

"किसकी गाली दूँ ?" सूरज जैसे रो देगा।

"उसकी माँ की।"

"वह तो मेरी दादी है।"

"अबे, उसकी बेटी को गाली दे।"

"सतोष को ?" सूरज डर-सा गया, "नहीं, नही, वह मेरे संग खाना खाती है।"

"तो पुजारी को ही दे।"

सूरज चुप रहा, जैसे फिर कुछ सोचने लगा।

"अच्छा, देता हूँ गाली," सूरज ने आत्मबल से कहा। "मेरी बुआ बडी झूठी है, कहती है, जो गाली देता है उसकी जीभ कट जाती है।"

"देख, मेरी जीभ देख न ! कहाँ कटी है ?"

रम्मन जीभ निकालकर सूरज को दिखा रहा था, उसी क्षण न जाने कहाँ से दौडी-दौडी संतोष आई और सूरज के दायें हाथ से चिपक गई। अधिकार से बोली, "चलो घर, बुआ ढूँढ रही है।"

रम्मन भी सूरज के सग उसके घर गया।

रम्मन के नाम से चेतराम का पूरा घर परिचित था—विशेषकर मगूदादी तो उसे खूब जानती थी।

अलीगढ मे छेदामल का कोई भतीजा था। रम्मन उसीका लडका है। डेढ़ वर्ष हुए होगे, छेदामल ने इसे गोद लिया है, और तब से पुत्र-भाव की सारी भूख छेदामल इस दत्तक पुत्र से मिटा रहा है, तथा इसकी मंगल-कामना मे वह प्रति मगलवार पाँच कुत्तो को दो-दो पूरियाँ खिलाता है।

पर आज रम्मन को मधू बुआ ने पहली बार देखा। बडा ही होन-हार बालक था। सूरज से थोडा ही बडा था, लेकिन देखने में तीन-चार वर्ष जेठा लगता था।

मधू रम्मन, सूरज और सतोष से बाते कर ही रही थी कि मगू-दादी ने उसके कानो मे रहस्य-भरे स्वर मे कहा, "ख़बरदार, जे बालक को अपनो हाथ से कुछ खिलानो-पिलानो मत !"

सब तो नही पर सूरज ने दादी की बात जैसे सुन ली। उसने छींककर कहा, "दादी, मुझे रम्मन की माँ ने इत्ते-इत्ते बडे लड्डू खिलाये हैं !"

दादी तो बस अवाक् रह गई, जैसे फूँस मे किसीने आग रख दी हो। उफनकर बोली, "क्यो रे रम्मन, सूरज ठीक कह रहो है ?"

रम्मन ने समर्थन में सिर हिलाया, पर कुछ बोला नहीं।

मंगूदादी के कंधों पर जैसे छिपकली गिर गई हो। उसी दम छेदामल के घर पहुँची।

बसन्ता आँगन मे बैठी अपनी नौकरानी से पति के लिए बादाम घिसवा रही थी।

मंगूदादी को एकाएक देखकर वह सहम-सी गई, खाट से उठने लगी। तभी मंगूदादी ने आक्रमण किया, "बडी लड्डू वाली बन के आई है ! मेरो लल्ला को तैने क्यों लड्डू दयो ? मेरो घर लड्डू न रहा का ?"

बसन्ता को काटो तो खून नही। वह दादी से आँखें न मिला सकी, सिर गड़ाये उस सिल-लोढ़े को देखने लगी, जिस पर बादाम पीसे जा रहे थे। उसे लगा, जैसे वह भी बादाम की तरह पिसती जा रही हो।

उसकी आँखे भर आई, पर वह रोना नहीं चाहती थी। कुछ बोलना चाहती थी, पर वाणी मे हिम्मत न थी। उसके ऊपर जैसे घडों पानी पड गया। जब आँखें वश में न रहीं, बरसने लगीं, तब बसन्ता ने हिम्मत करके सामने मंगूदादी को देखना चाहा। पर वह तो बाण छोड़कर चली गई थी। संयोगवश बसन्ता की वह दृष्टि छेदामल पर पडी। बसन्ता ने फफककर अपना मुँह आँचल में छिपा लिया।

छेदामल घबरा गया। बसन्ता को इस तरह रोते देखकर उसकी हिम्मत पस्त हो गई। वह भी रुआँसा हो आया। नौकरानी ने जो-कुछ देखा-सुना था, वह बता गई, पर संतोष न हुआ। वह अधीरता से बसन्ता को एकटक देखने लगा।

उसी समय भीतरी दहलीज़ की ओर रम्मन और सूरज एक संग खडे दीख पडे। बसन्ता चुप हो गई और एक अजीब दृष्टि से दहलीज़ देखने लगी, जैसे आँखों के आँसू जम गए थे और ओले की तरह उसकी पलको मे ढुलकने लगे थे।

बसन्ता चुपचाप उठी। बढ़कर रम्मन को घर लिया और उसे खींचती हुई आँगन मे चली आई। चारपाई पर उसे ढकेलकर बरस पडी, "यह है मेरा दुश्मन! आज तू न आता तो उस पोपली की हिम्मत थी कि मुझे बात से घायल करके चली जाती। मैं बाज़ू पकड लेती, हाँ!"

रम्मन बडे ज़ोर के रुदन का अभिनय कर रहा था और उसकी दृष्टि बार-बार दहलीज़ की ओर जाती, जहाँ से सूरज लापता हो गया था।

छेदामल ने रम्मन को धमकाने का प्रयत्न किया, "देख, तू मेरा ग़ुस्सा नहीं जानता, ख़बरदार अगर तू फिर सूरज को इस घर मे लाया!"

रम्मन ने झट जवाब दिया, "मैं कहाँ लाता हूँ, वह तो खुद चला आता है!"

"अच्छा" अच्छा चल, भाग यहाँ से!" छेदामल ने जैसे बसन्ता का मन रखने के लिए उठकर भागते हुए रम्मन की पीठ पर थपकी दे दी।

तब बसन्ता बरसने लगी, "आज मेरी भी कोख जगी होती, तो ये दिन क्यों देखने पड़ते! आज बसन्ता जादू-टोना करने लगी। मुझे नहीं हुआ तो बच्चे मेरे दुश्मन हैं जैसे। इतनी हिम्मत उस बुड्ढी की!"

छेदामल से न रहा गया, तुनककर बोला, "मैं अभी जा रहा हूँ चेतराम के पास। कल के बनिये आज के साहूकार! वह दिन भूल गया क्या, जब टाट बिछता था। बडी मंगू-झगूदादी बनी फिरती है!"

इस तरह बातो-ही-बातो मे छेदामल शान्त होकर चुपचाप बाहर आया और दुकान की गद्दी पर जा बैठा।

सूरज छेदामल के घर से भागकर सीधे मधू बुआ के पास आया। बुआ और दादी मे कुछ झडप हो रही थी। बुआ विरोध कर रही थी कि मंगूदादी क्यों झूठ-मूठ की बात लेकर बसन्ता भाभी के यहाँ लडने गई थी? वह क्यो नहीं पहले अपने सपूत-नाती को घर मे खूँटा गाड-कर बाँध रखती? किसका दोष, किसके सिर मढ़ा जाय? सो भी वह दोष हो तब तो? किसीके स्नेह-प्यार मे जो शंका करे, उसमे झूठ खडा करे, सबसे बडा दोषी वही है।

मंगूदादी को अच्छे-बुरे के तर्क से क्या सरोकार? निराधार मधू बुआ को भी फटकार बैठी।

संध्या तक सूरज बुआ के पास से न टला। छाया की तरह सग-संग डोलता रहा। इस बीच दो बार रम्मन उसे बुलाने आया, पर वह न गया। सन्तोष भी आई, उसके संग भी न गया।

रात की रोटी के लिए बुआ चौके मे पराँठे बना रही थी। सब्जी बन चुकी थी और सूरज वही अलग पीढ़े पर चुपचाप बैठा था।

एकाएक सूरज ने देख लिया, बुआ रो रही थी। देख तो वह कब से रहा था कि बुआ आँचल से बार-बार अपनी आँखे पोछती थी, बार-बार पल्ले से नाक छिनकती थी, पर वह यह समझता था कि धुआँ लग रहा है, सब्जी का मिर्च-मसाला लग रहा है। पर अब उसने देख लिया कि चौके में कहीं भी धुआँ नही, सब्ज़ी न जाने कब की बन चुकी है।

बुआ रो रही है, सूरज अपने-आपमें सहम गया, स्वयं को दोषी

ठहराने लगा और किसी सत्य को पकडने लगा, 'दूध तो पिया है, सुबह तेल भी रखा लिया था, दोपहर को बुआ के संग रोटी भी खाई है। ओहो अब समझा, मैंने ठाकुरद्वारे मे रम्मन से कहा था—मेरी बुआ बडी झूठी है : तो बुआ मुझे पीटती क्यो नहीं ? खूब मारे मुझे ! जी-भर मारती क्यो नही ? खुद क्यो रोती है ? बुआ मुझे क्यो नही मारती ? सत्तो (सतोष) को उसके पिताजी मारते है, रम्मन को वह चाचीजी मारती हैं !'

सहसा सूरज के मुँह से निकल पडा, "बुआ, तू मुझे क्यो नहीं मारती ?" बुआ चुप थी—प्रतिक्रियाशून्य।

"तू रो रही है बुआ ?" सूरज से न रहा गया, वह बुआ के गले से लिपट गया, "क्यों रो रही है, बुआ ?"

बुआ अपने सत्य से सूरज को बचाना चाहती थी, पर सूरज था कि प्रश्न और तर्कों के जाल बिछाता चल रहा था।

बुआ आँसू पीकर बोली, "बेटे, तेरे एक फूफाजी है, जो मुझे छोडकर न जाने कहाँ चले गए। वादा किया था कि जहाँ रहूँगा तुम्हे चिट्ठी लिखूँगा, पर आज पूरे ग्यारह महीने हो गए, उनका कोई पता नहीं। न जाने कहाँ है, कैसे है ?"

बुआ का बाँध एकाएक टूट गया, सिसककर रो पडी।

"मै मुनीमजी से फूफाजी को चिट्ठी लिखवाऊँगा," सूरज ने अपने मुख को बुआ के दाये कान मे गडाकर कहा। "बुआ, तुम मुझे रेलगाडी मे बिठा दो, मै फूफाजी को ढूँढ लाऊँगा।"

"लेकिन पता कहाँ है ?"

"डाकखाने मे होगा, बुआजी !"

सूरज विश्वास से बोला और बुआ के होंठों पर मुस्कराहट बिखर गई, जबकि उसकी आँखे आँसुओं मे डूबी थीं। कुछ क्षण बुआ का मुख निहारकर सूरज अपने-आप कहने लगा, "बुआ, बुआजी, बुआ रे ! मै अपने हाथ-पैर गन्दे नही रखूँगा। कपडे बदलवाने, दूध पीने और

उबटन लगवाते समय नही रोऊँगा। और काजल भी लगवा लिया करूँगा, बुआ !"

"तू बड़ा राजा बेटा है !" बुआ का कंठ भर्रा रहा था, "आज तू संतोष के यहाँ नहीं गया था ?"

"सत्तो अच्छे कपड़े नही पहनती बुआजी, बड़ी गंदो रहती है, आँख मे कभी काजल नही डलवाती।"

बुआ पिघलती जा रही थी और उसके सामने संतोष की माँ शारदा का एक मटमैला, खोया-खाया-सा चित्र उभरने लगा था।

भोजन बनते ही बुआ ने सबसे पहले सूरज को भोजन कराया, फिर सीता-गौरी का थाल लगाकर वह मंगूदादी के पास गई। "अम्माँ, उठ, चल भोजन कर ले !"

यह कहती हुई मधू रूठकर सोई हुई दादी को जगाने लगी। लेकिन दादी तो जैसे जगी बैठी थीं। सुलग रही थी, बस किसी चिनगारी की जरूरत थी।

दादी भड़क उठी, "जा, बसता कूँ बुला ला। मै कौन ही ?"

बुआ चुप खड़ी रह गई। उसे कुछ न सूझा। अंत तक कुछ न सूझा। बस, अपने-आप पर रो पड़ी।

तब जैसे दादी का जी ठंडा हुआ। वह चुपके से उठी और चौके मे चली गई।

मधू बुआ ने रोते-रोते कहा, "जिसे बच्चा न हो वह जादू-टोना वाली हो जाती है ! खूब कहती फिरो इसे। तभी खुरजा वाले मुझे भी जादू टोना वाली कहते हैं। क्यो न कहेगे' लाख बार कहेगे। जब किसी की बेटी का नाम तुम बेचोगी, तो तुम्हारी बेटी का नाम पहले बिकेगा— खूब बिकेगा। तब अपनी बेटी के नाम पर क्यों बुरा मानती हो ?"

मंगूदादी के पास कोई जवाब न था, बल्कि जवाब ढूँढ़ने की ओर उसका ध्यान ही न था। अब तो ध्यान इधर खिच गया था कि बेटी रो रही है और इस तरह दादी के जी में कुछ कचोटने लगा।

८

उस वर्ष फागुन लगने से पूर्व ही दिन गुलाबी लग रहे थे। बाज़ार-भाव में मद्दी फैली थी। अमृतसर, लाहौर, लायलपुर और दिल्ली से लाला लोग भाव पूछकर थक रहे थे, पर गेहूँ जैसे राजा अन्न के भाव चार रुपये मन थे।

इसलिए बस्ती का सारा व्यापार जैसे ठंडा पड गया था, और पडता ही जा रहा था। लेकिन त्यों-त्यों सट्टे के बाजार में न जाने क्यों गरमी बढती चल रही थी। आख़िर लोग करें क्या? लेन-देन, वादा-तकाज़ा न रहे तो जिया कैसे जाय? पैसा एक जगह रुककर बेकार माना जाता है, पैसा गोल होता है—और गोल का धर्म है, चलते रहना, चलते रहना।

और सट्टे के बाजार में पैसा वर्तमान को बेधकर भविष्य तक को बाँध लेता है।

एक दिशा में गरमी और थी।

लोग हिन्दी-अखबारों के अतिरिक्त अब अंग्रेज़ी के अखबार भी पढने-सुनने लगे थे। भाव पीछे देखे जाते, अखबारो में पहले राजनीतिक ख़बरें और घटनाएँ पढी जाती, और फिर दुकान की गद्दियों पर, बरामदो के तख्तो पर. बैंक, पोस्ट ऑफिस की बैंचो पर, मंदिर-ठाकुरद्वारों की दहलीजों मे लोग आपस मे बहस कर-करके बातें करते मिलते—'ओ जी लाला! सुना, अरे का पूछो हो, आजकल तो पैसा तर जाय अख़बार पढ़न से, अपन जवाहरलाल नेहरू जेल से रिहा होकर जरमनी गये थे न! जे वहाँ कमला नेहरू बीमार थी न! बेचारी का वहीं स्वर्गवास हो गया। राम राम स्वदेश के लिए विदेश मे स्वर्गवास! सो जवाहरलाल अब देश लौट आये। काग्रेस प्रेसिडेण्ट अब जवाहरलाल ही होगे। बडे लीडर हैं। ये अगरेज़ थर-थर काँपते है जवाहर से! बादशाह के लडके के सग इगलैंड मे पढे हैं। पेरिस मे कपड़े धुलते

थे, स्पेन का नाई बाल काटने आता था। इंगलैड मे नेहरूजी की मोटर इतनी शानदार थी कि बादशाह का लडका उसे देखकर रोने लगा था।'

चेतराम ने अपनी गद्दी पर जिस व्यक्ति को अंग्रेजी अखबार पढने तथा उसका खुलासा समझाने के लिए दो घंटे के लिए नौकर रख छोडा था, उसे तीन रुपये महीने मिल रहे थे। चदूलाल उसका नाम था और वह दाईं आँख का काना था। सुबह सात बजे से नौ बजे तक वह चेतराम को कुछ अख़बार समझाता, पढता और दस बजे से म्युनिसिपल स्कूल मे बच्चो को अग्रेज़ी पढाने चला जाता।

इतवार का दिन था।

चंदूलाल ठीक अपने समय से चेतराम की भीतरी गद्दी पर आया। नियमानुसार गद्दी पर अनेक लोग आ जुटे थे। सब दरवाज़े बन्द थे, सामने के दरवाज़े पर मोटा परदा गिरा दिया गया था। चदूलाल ने देखा, आज वहाँ बस्ती की एक मशहूर हस्ती चन्दनगुरु अपने कुछ आदमियो के साथ आ डटा था, और अकारण वहाँ कहकहे फूट रहे थे। न जाने किस-किस घर की, और बारी-बारी कितने घरों की अफवाहे उड रही थीं। और जैसे पूरी दुकान उस रस के नशे में सराबोर हो रही थी।

चदूलाल ने अपनी आँखो पर साढ़े ग्यारह वर्ष पुराना चश्मा लगाकर बडी उदासी से वहाँ बैठे हुए लोगो की ओर देखा। कल रात पुलिस गश्त लगा रही थी और खुफ़िया पुलिस का एक दस्ता उस पुलिस से भी छिपकर बस्ती की तहकीक़ात करने आया था। तभी दारोगाजी ने चंदूलाल को साहूजी की गली मे पाकर एक झापड मारा था, "साले, काडे-कडैचा, सुना है तुम लोगो के अख़बार पढ़ते हो! चेतराम की गद्दी पर कौन-कौन लोग क्या-क्या अख़बार लाते है? साले बताता क्यों नहीं? पचास रुपये महीने मिलेगे, तू मुख़बिरी क्यों नहीं कर लेता? कितनी दफ़ा तुझसे कहता चला आ रहा हूँ। बेटा,

जिस दिन गुस्से में दो-चार पडे या हमारे गिरफ्त मे आये, फिर जन्म-भर याद करोगे!"

चंदूलाल का जी हो रहा था कि वह रो-रोकर वहाँ बैठे हुए लोगो से पहले अपनी बीती कह ले, पर उसे ऐसा लग रहा था, जैसे बस्ती-भर मे सरकार के मुखबिर और खुफिया पुलिस घूम रहे है। वहाँ भी है, उस बन्द कमरे मे भी।

लेकिन दूसरे ही क्षण चदूलाल के मन मे जैसे एक आवाज़ गूँजी, 'इन्कलाब जिन्दाबाद, अपने देश मे अपना राज', और वह तपाक् से वहाँ एकत्रित अखबार पढने बैठ गया — भिन्न-भिन्न लोगो द्वारा लाये गए कई दिनों के बासी-ताजे अंग्रेजी-हिन्दी-उर्दू के अख़बार, 'गुम्मी रिपोर्ट', 'तेज', 'सैनिक', 'आजाद', 'वीर सिपाही', 'मोर्चा' और कुछ दस्ती पर्चे आदि भी।

फिर भी रोज की अपेक्षा चन्दूलाल आज बहुत आहिस्ता-आहिस्ता लोगों को बता रहा था, पक्तियाँ पढ-पढकर सुना-समझा रहा था— 'लायलपुर की म्युनिसिपेलिटी नेहरूजी का अपने यहाँ स्वागत करना चाह रही थी, कलक्टर ने मना कर दिया। वहाँ के विद्यार्थियो के विरोध-प्रदर्शन पर पुलिस ने लाठी-चार्ज किया · पूरे हिन्दुस्तान के आँकडे निकले है कि अब तक कुल तीन सौ अडतालीस अखबारो को आर्डिनेस और बोर्ड ऑफ सेन्सर्स द्वारा सरकार बन्द कर चुकी है। मथुरा कॉलेज के एक प्रोफेसर का पूरा घर जेल मे नजरबद है, खुलेआम तलाशी लेने पर उनके घर मे तीन किताबे मिली थीं—गोर्की की 'वाइड सी केनाल', एम० एन० राय का एक पैम्फलट तथा एक गुजराती किताब 'दरियाइ ढाव लम्यओ'। ···अंग्रेजी हुकूमत की निर्मम तानाशाही के अलावा कपूरथला, जोधपुर, मैसूर, बडोदा और सिरोही जैसे राज्यों ने भी जनता को जेलों मे बन्द करना शुरू किया है। ·· अलमोडा जेल से खान अब्दुल गफ्फार खाँ रिहा! लेकिन वह पंजाब और फ्रंटियर मे प्रवेश नहीं कर सकते। बगाल जेल में अब तक

कुल दो हजार लोग नजरबद। पंजाब मे पैंतीस सोशलिस्ट, चालीस काग्रेसी। लोगो पर यह कानून लगा है कि वे किसी तरह भी अपने गाँव नही छोड सकते।' उसी बीच सहसा चेतराम ने टोका, "मास्टर चन्दूलाल, कही कुछ लडाई-भिडाई की भी खबर है कि निरा यही सब है!"

"लडाई तो यह भी है, यह किस लडाई से कम है—निहत्थी जनता, अहिसावादी सैनिक, सत्याग्रही, स्वतन्त्रता-संग्राम मे लगे है, तानाशाही अग्रेजो से, हिसावादी ब्रिटिश सत्ता से।"

"अरे यार, यूरोप की लडाई के बारे में बताओ, लेक्चर न झाडो!" चन्दनगुरु ने कहा।

चंदूलाल को चन्दनगुरु का लहजा पसन्द न आया।

आँख फेरकर वह चेतराम को बताने लगा—इटली ने अबीसीनिया पर आक्रमण कर दिया था, अब इटली की ताकत दिनो-दिन पश्चिम-उत्तर की ओर बढ रही है—इधर मसोलिनी, उधर हिटलर!

"बोलो राजा लखनलाल की जै!" बडे जोर से चन्दनगुरु चीख़ उठा और पूरी ताक़त से हँसने लगा।

उसकी सूरत से चन्दूलाल को नफ़रत हुई। वह अख़बार पटककर बडी तेजी से अपना चश्मा सँभालते-सँभालते दुकान के बाहर निकल गया।

"अजी मास्टर चन्दूलाल ने कुछ इलेक्शन की खबर नही बताई!"

"अजी अपनी बस्ती की मिनिस्पेल्टी के इलेक्शन की बात पूछो, सुनो मै बताता हूँ।" और चन्दनगुरु बडी देर तक इस आधार पर गलियों के बीच बस्ती की राजनीति की चर्चा करता रहा और एक सिरे से लोगों को बुरा-भला बकता रहा। न जाने किस-किसको गालियाँ सुनाता रहा। गद्दी के शेष लोग चन्दनगुरु का मुँह निहार रहे थे, और दो-चार लोग उसकी हाँ मे हाँ और नहीं-में-नही मिलाते चल रहे थे। बात बढ़ी, फैली और फैलती गई। बस्ती की राजनीति से पहले

म्यूनिसिपेलिटी के बारे मे बात करता रहा, फिर गली-मुहल्लों के विषय मे, फिर कुछ घरो को बाते—एक-से-एक अफवाही तथ्य, एक-से-एक बढ़कर रहस्यमय घटनाएँ, जैसे पूरी बस्ती चन्दनगुरु की मुट्ठी की चीज थी।

यह चन्दनगुरु था कौन ?

क्या था ?

था कुछ नही, बना अधिक था। इसके यहाँ साधारण ढग से खाडसारी का रोजगार था, जिसकी जिम्मेदारी इसके छोटे भाई कुन्दन पर थी।

और यह चन्दन अखाडे बाँधकर पहलवानी करता था। आज से आठ साल पूर्व यह इस क्षेत्र का सबसे नामी पहलवान था और इस बस्ती के तेरह अखाडो का उस्ताद था। उन दिनो चन्दन उस्ताद ने लगातार कई दगल मारे थे, अलीगढ के नामी पहलवान अहमदरजा को पछाड दिया था। रामपुर के सत्तार, हाथरस के फूलसिह, बरेली के भगत् और आगरा के अलीजान को हराया था। उसी वर्ष सावन की पचमी के दिन पूरी बस्ती के अखाडो ने मिलकर एक बहुत बडा उत्सव किया। चन्दन उस्ताद के नाम पर उसकी अवस्थानुसार छत्तीस बार बन्दूक दागी गई, छत्तीस सेर भाँग घुटी, छत्तीस लठैतों ने चन्दन उस्ताद का पूजन किया, छत्तीस कपूर, छत्तीस तोले गूगुर, अगरु और लाल चन्दन सुलगाये गए। कच्छी, लगोट और जाँघिये के अलावा चन्दन उस्ताद को पूरे वस्त्रो के साथ पूरे छत्तीस गज का असली रेशमी साफा भेट किया गया और चन्दन उस्ताद को उस आयोजन मे चन्दन-गुरु की पदवी दी गई। लोग बताते है, उसके बाद म्यूनिसिपल चेयर-मेन ने पूरे छत्तीस मिनट तक भाषण भी दिया था।

उस क्षण से चन्दनगुरु पूरी बस्ती पर छा सा गया। खूब डटकर वह पूजा जाने लगा। बस्ती के सारे अखाडों पर सालाना बँधा, और सावन मे पंचमी के दिन पूरी रक़म मिलाकर चन्दनगुरु को मिलनी शुरू हुई।

इस तरह बस्ती ने चन्दनगुरू को बडी प्रतिष्ठा दी, और गुरु की धाक भी खूब जमी। तीन वर्ष बाद गुरु ने कोई चौबाइन भगा ली पूरे सात महीने अपने संग रखा, फिर वह न जाने कहाँ चली गई। इसके बाद चन्दनगुरु ने और भी कई नाते जोडे, और इसी बीच रामपुर के एक डाके और कतल के सिलसिले मे गुरु को दो वर्ष जेल मे भी रहना पडा।

सात से दस बजने को आ गए। धीरे-धीरे गद्दी से उठ-उठकर लोग अपनी-अपनी दुकान पर चले गए।

समय पाकर चन्दनगुरु ने चेतराम को अपने पास खीच लिया और रहस्यमय स्वर मे कहने लगा, "देखो लाला, जिसके घर लक्ष्मी बरसती है, उसके पास अगर बडी इज्जत भी हो जाय, तो का पूछो हो!" चेतराम एकटक चन्दनगुरु की आँखो में निहारने लगा।

"मै आज तुमसे, लाला, एक बहुत बडी बात कहने आया हूँ।'

दोनो कई क्षण तक एक-दूसरे को देखते रहे। फिर चन्दनगुरु मुस्कराने लगा और चेतराम अपनी मूँछो मे हँस पडा। गुरु ने गम्भीरता से कहा, "सुनो लाला चेतराम, इस साल तुम म्युनिसपेल्टी की चेयरमैनी के लिए खडे हो जाओ! मै लेता हूं ज़िम्मा, मूँछ मुडा दूँ अगर मै तुम्हे चेयरमैन न बना दूँ।"

चेतराम की आँखो मे एकाएक कुछ दीप्त हो आया। मुँह मे पानी भर गया, जिसके छीटो से उसकी आँखे भीग गई। चेतराम शरमाने लगा, गुरु के प्रति मन-ही-मन वह श्रद्धा से इस तरह झुक गया, जैसे वह उस क्षण के लिए सचमुच बस्ती का चेयरमैन हो गया। चेतराम को हाँ-ना कुछ सूझता ही न था। गुरु जो-जो कह रहा था, उसे वह जैसे मानता चल रहा था।

आधे घंटे के बाद चन्दनगुरु चला गया, और चेतराम जैसे आदमी के भीतर इतना बडा चमत्कार कर गया कि वह बेहाल होने लगा। उससे दोपहर की रोटी न खाई गई, मारे उल्लास और जीवनपूर्ण

साध से जैसे जमीन पर उसके पैर ही न पडते थे। उससे गद्दी पर रहा ही न जाता था। हर क्षण भीतर-ही-भीतर चन्दनगुरु की बात उसे मथ रही थी और उसका अन्तर उससे हर घडी कह रहा था—चन्दनगुरु कह रहा है, खडे हो जाओ इस चेयरमैनी इलेक्शन मे। अवश्य खडे हो—चन्दनगुरु ने कहा है—कुरसी मिलकर रहेगी! आज तक जिसे चन्दनगुरु ने खडा किया है, वह होकर रहा है! और चेतराम मे अब बस्ती के चेयरमैन बनने के कौनसे गुण नही है—सब तो हैं, जभी तो चन्दनगुरु ने उसीको छाँटा है। वह अवश्य ही चेतराम की पूरी ताक़त जानता होगा। चन्दनगुरु और चेतराम—एक की ताक़त, एक का पैसा!

चेतराम की अजीब हालत हो रही थी। उसके पैर कहीं टिक ही न रहे थे। कई बार कपड़े बदले, कई बार चौक बाज़ार हो आया। शाम को जी न माना, एक ताँगा किया और म्युनिसिपल दफ्तर की ओर चला गया।

लौटकर सीधे ठाकुरद्वारे गया। भगवान् के चरणों पर टोपी रखकर बडी देर तक आँख मूँदे रहा। अन्त मे राजू पडित से उसने अपने मन की बात कह दी।

राजू पंडित ने तुरन्त कोई किताब खोली, अँगुलियो पर कुछ जोडा-घटाया, फिर बडे विश्वास से कहा, "बस, हो गए! सेठ चेतराम चेयरमैन हो गया। समय आ गया—सारे ग्रह, सारे नक्षत्र प्रश्न के अनुकूल हैं।"

चेतराम ने तुरन्त भगवान् के सामने दस रुपये का नोट रख दिया, और सीधे वहाँ से चन्दनगुरु के घर पहुँचा।

दूसरे ही दिन, पूरी बस्ती मे यह बात धुएँ की तरह फैल गई कि चेतराम चेयरमैनी का चुनाव लडने जा रहा है। अगले दो हफ्तो मे चेतराम अपनी गद्दी पर न बैठ सका। चन्दनगुरु के सग पूरी बस्ती मे डोलता फिरा। बस्ती के सोलह मुहल्लो, सवा सौ गद्दियों और तेरह

दरवाज़ों से वह गुजर आया।

बोलने-समझाने का सारा काम चन्दनगुरु करता था, यद्यपि चेतराम को अपनी यह कमी बहुत खल रही थी। एक दिन चेतराम के मन ने कहा—अजी, तुम्हारे पास रुपये है, फिर किस चीज की कमी! बोलना और भाषण देने की कला क्या, ससार की कोई भी कला रुपये के दायरे से बाहर नही! कॉलेज के किसी अच्छे वक्ता प्रोफेसर को पकडो, उसे एक बोरा गेहूँ भेंट करो, एकाध टिन घी भेजो, फिर देखो, वह बेचारा अपनी पूरी तपस्या और ताक़त से तुम्हे वक्ता बना देगा। इन छोटी बातो मे क्या है, बस एक हफ्ते की मेहनत है!

चेतराम ने अपने मन की बात मान ली।

कॉलेज के विद्वान् वक्ता प्रोफेसर दयाराम शास्त्री एम० ए०, एल० टी०, एल-एल० बी०, साहित्यरत्न के निर्देशन मे वह भाषण देना सीखने लगा।

सहसा एक दिन, बिना किसी सूचना या आहट के गोरेमल के खास मुनीम के साथ दिल्ली से रूपाबहू आ गई।

रात के दस बजे थे तब।

सूरज सो गया था, चेतराम घर नहीं लौटा था। मधू बुआ चौके का सब काम ख़त्म करके दही जमाने बैठी थी। मंगूदादी का दम फूल रहा था जो हाँफती-खाँसती अपने कमरे में बैठी थी। और सीता अपने नये ब्लाउज़ की बाँह पर रेशमी फूल काढ़ रही थी।

माँ से पहले गौरी ही दौडकर घर में आई, और सबको बडे आत्म-गौरव से सूचना देने लगी कि वह नाना के यहाँ से लौट आई। उसके पास पाँच रुपये हैं। उसके कान मे बुदे हैं, और उसने नाना के यहाँ हवाई जहाज देखा है। मोटर पर घूमकर आई है।

रूपाबहू जब मधू बुआ से मिली तो उसका मुख भाव-शून्य था।

शायद वह यात्रा करके आई थी, इसीलिए वह बेहद थकी-थकी-सी लग रही थी।

यंत्रवत् दादी के कमरे मे गई, और उसके चरण छूकर • उसी दम लौट आई। दादी आशीष देकर कुछ और बोलने को थी, पर रूपाबहू वहाँ थी कहाँ!

इसलिए मगूदादी अपने-आपसे कुछ बहुत ही अस्पष्ट ढंग से बोलने लगी, जिसका आशय सम्भवत यह था कि 'दुनिया मे बहुत सी बहुएँ है, पर मेरी बहू के नीचे-नीचे। सबसे छोटे बालक को छोड़कर कैसे इतने दिन मायके रह आई, पत्थर का दिल है। सिगरे गली-मुहल्लों की औरते बातें करती है, बोली सुनाती हैं कि पूत को किस हृदय से, क्योकर अपने संग न ले गई। एक बात, हजार कारण ढूँढे जाते हैं। किस-किसको, क्या-क्या, कितना समझाऊँ! बलिहारी जाऊँ तेरी!'

लेकिन मंगूदादी की ये बाते रूपाबहू के कमरे तक नही पहुँच रही थी। दादी तो अपनी शान्ति के लिए बक रही थी।

रूपाबहू के ही कमरे मे मधू बुआ सोया करती थी और उसीके पलंग पर सूरज सोता था।

आज भी सूरज वहीं बेखबर सो रहा था। रूपाबहू उसके पलंग पर झुककर देखने लगी—वह बढ़ गया है, रग और निखर आया है। हाथ-पैर कितने साफ़-सुथरे और मनमोहक है! सिर के बाल घुँघराले है—तेल पड़ा है, कघी डाली गई है। आँखों मे सोने के पहले भी जैसे दुबारा काजल डाला गया है। माथे के एक किनारे भी काजल की अँगुली लगाई गई है, नजर बचाने के लिए। कपड़े साफ-सुथरे हैं, कमीज़ पर कितना अच्छा स्वेटर पहनाया गया है!

रूपाबहू ने एकाएक सूरज के माथे को चूम लिया, बाँहों मे भरकर उसे उठाने चली, तभी कमरे मे मधू बुआ आ गई।

रूपाबहू डर-सी गई, और अपने-आपको छिपाने लगी। उसे ऐसा

लगा, जैसे वह अपराधी है। और वह एक क्षण के लिए मधू बुआ के सामने पीली पड गई।

फिर रूपाबहू चुप रही। अपनी तरफ से वह कुछ न बोली—तब भी न बोली, जब मधू ने उसे यह सूचना दी कि चेतराम चेयरमैनो के लिए चुनाव लडने जा रहा है।

बस, जैसे वह भागकर सो गई—बेखबर सो गई।

सूरज की आँख चार बजे खुल गई, और वह रोज की तरह बुआ को जगाने लगा। रूपाबहू जग रही थी, देख रही थी, सुन रही थी, पर उसका मन सूरज को आवाज देने से न जाने क्यो बैठा जा रहा था।

बुआ की नींद टूटी। सूरज को सीने से चिपकाकर उसी दम बोली, "तेरी माताजी आई है।"

"माताजी कौन ?"

"तेरी माँ, और कौन ! वह देख सो रही है !"

सूरज बुआ के सकेत की ओर बडी जिज्ञासा से देखने लगा। कमरे मे अन्धकार था, फिर भी जैसे उसे बेधकर वह अपनी माँ को उसी दम देख लेना चाहता था।

जब नहीं देख सका, तब वह हठ करने लगा, "मै माँ के पास जाऊँगा। माताजी कहाँ है ? मेरी माताजी ! मै नहीं सोऊँगा तुम्हारे पास, मै अपनी माताजी के पास जाऊँगा।"

"आ जा मेरे पास," रूपाबहू के मुख से एकाएक फूट गया।

और सूरज उसी क्षण चुप हो गया। बुआ ने उठकर रोशनी की। और उस प्रकाश मे रूपाबहू को देखकर सूरज उतनी ही तीव्रता से मधू के कण्ठ से लिपट गया, जितनी सम्मोहक इच्छा से वह अपनी माँ के पास जाने को आतुर था। रूपाबहू सूरज को अपने पास लाना चाह रही थी, मधू बुआ उसे अनेक मनुहारों से भेज भी रही थी, लेकिन सूरज था कि वह बुआ के गले से लिपटा जा रहा था, फिर भी जैसे संशकित दृष्टि से बार-बार सबकी आँखे बचाकर रूपाबहू को देख

लेता था।

लिहाफ के नीचे छिपकर वह बुआ से धीरे-धीरे बातें करने लगा। बुआ ने कहा, "तेरी माताजी है।"

"माँ हैं!"

"हाँ-हाँ माँ, जैसे मगूदादी मेरी माँ है।"

सूरज ने तेजी से उत्तर दिया, "जैसे सतोष की माँ है।"

मधू बुआ चुप थी, उससे कुछ न बोला गया।

सूरज पूरे स्वर मे बोला, "वैसी माँ, जिसे रम्मन और जगनू गाली देते है। बुआ, उस अहाते के सब लड़के माँ-बहन की गाली देते है।"

"अब कभी मत जाना वहाँ, गाली बकने से जीभ कट जाती है।"

सूरज सहसा हँसा, हँसी के बीच कहता गया कि बुआ झूठी है, बुआ झूठी है। और उसी स्थिति में वह शक्ति लगाकर माँ-बहन की दो-तीन गालियाँ दे गया।

बुआ माथा ठोककर रह गई, सूरज और खिलखिलाकर हँसने लगा, जैसे उसने असत्य को पा लिया, और अब उसका मजाक बना रहा हो।

सूरज ने गाली दे ली और अपनी जीभ टटोली। जीभ तो वैसी ही थी, बल्कि गाली देने से जीभ पर एक अजीव आनन्द रस बरस रहा था, जैसे चाट खाने से बरसता है।

रूपाबहू निश्चेष्ट पडी थी। उसका इकलौता बेटा यह क्या बक रहा है, वह जैसे कुछ समझ न रही थी।

मधू बुआ श्री-हत थी।

सूरज ने रूपाबहू के सामने बुआ को जैसे फेल कर दिया हो।

चेतराम फूला न समाता था। घर मे उसकी रूपाबहू आ गई, यह उसके प्यार की जीत है। अब निश्चित रूप से चुनाव मे भी उसकी जीत होगी।

सुबह बहुत तडके उठकर वह ठाकुरद्वारे गया, भरे मुख से राजू पंडित को सूचना दी कि 'सूरज की माँ आ गई, रात आई है।'

उस सुबह बडी धूम से ठाकुरद्वारे पर हरि-कीर्तन हुआ।

नहा-धोकर, खूब अच्छे कपडे पहन चेतराम रूपाबहू के सामने गया और आँख मिलते ही सिर झुका लिया। अपने को बाँधने के लिए वह गौरी बेटी को प्यार करने लगा और जो-जो बातें रूपाबहू से कहने-पूछने के लिए थी, उन्हे गौरी से कहने लगा।

रूपाबहू दो-एक बात करके अपने कमरे मे चली गई। चेतराम ने गौरी को छोडकर सूरज को सग ले लिया, कमरे मे पहुँचा, और पलग पर बैठ गया।

चेतराम को रूपाबहू से अनेक बातें करनी थीं। उसने बहुत पहले से सोच रखा था कि जब भी रूपाबहू दिल्ली से आयेगी, वह उससे रूठा रहेगा, जब तक वह उसे मनायेगी नही, वह बात नहीं करेगा।

लेकिन उस क्षण सब-कुछ भूलकर अपनी अनेक तरह की बातो का सिलसिला आरम्भ करने के पूर्व वह ग़लती से अपने चुनाव लडने की बात कर बैठा।

रूपाबहू झुँझला उठी, "तो मुझे क्या सुनाते हो? क्या मिल जायगा मुझे?"

चेतराम ने स्वर को मक्खन-सा चिकना कर लिया, "क्यों नहीं, ऐसी बात क्यो मुँह से निकालती हो?" और कुछ क्षण रुककर बोला, "तुम चेयरमैन-बहू कहलाओगी। लोग''' ''

"सेठानी और रूपाबहू ही कहलवाकर पक गई, मिल गया जो मिलना था।"

"क्या चाहिए तुम्हे?" चेतराम आर्त स्वर मे बोला, "कभी बताओगी भी, कुछ माँगो, कहो, अगर फिर न पाओ तो मुझे कहो!"

"जो मिलना चाहिए, वह भी कहीं माँगा जाता है," रूपाबहू के

मुख से यह बात इस तरह निकली, जैसे वह अकेली है और अपने-आप से कह रही है, "जो माँगने से मिला वह दान है, अधिकार नहीं, मुझे तुम्हारा दान नहीं चाहिए।"

"ठीक कहती हो, बड़े घर की बेटी हो।"

"आग लगे ऐसी बेटी पर!" यह कहकर रूपाबहू कमरे से बाहर निकल गई।

मायके में भी रूपाबहू इस बार बहुत अच्छे ढंग से न थी। बाद को तो उससे और उसकी माँ से अक्सर कहा-सुनी होने लगी थी। पिता गोरेमल से भी अनेक बार उल्टी-सीधी बातें हो गईं थीं। इस तरह वह प्रसन्न मन से नहीं आई है। उसे जैसे अपने अन्तर की विवशता से उतने दिन दिल्ली रहना पड़ा है, वरना उसे इतने दिन वहाँ रहना अच्छा नहीं लगा है। बहुत-कुछ खला है उसे। तभी वह दिल्ली से इतनी दुबली होकर आई है, जिसे देखकर चेतराम उस दिन बहुत दुखी था और अनेक चिंताएँ करता रहा था।

चेतराम को तीसरे दिन पता लगा, जब एकान्त में उसको मगूदादी ने बताया कि रूपाबहू की इस बार विदाई नहीं हुई है। जैसे लड़कर आई है, जभी मुनीम के संग यहाँ पहुँची है—न कोई विदा, न विदाई। पूत छोड़कर गई थी तो गोद कैसे भरे! और जायँ बड़े उछाह से।

उस दिन सूरज छेदामल के अहाते में पहुँचकर रम्मन और जगनू के सामने एक रुपया रखने लगा। रम्मन चुप रहा, लेकिन जगनू की प्रसन्नता हद तक पहुँच गई। उसने आज तक अपनी मुट्ठी में रुपया नहीं रखा था। उस क्षण सूरज से रुपया पाते ही उसने मुट्ठी में कस लिया और अपने हाथों को चूमने लगा। अहाते के सारे बच्चे उन्हें घेर-कर खड़े हो गए थे।

सूरज ने गम्भीरता से कहा, "मेरी माँ आई है, यह रुपया उसीने मुझे दिया है।"

"बड़ी अच्छी है तेरी माँ," रम्मन ने कहा।

"हाँ, अब मुझे तुम लोग मेरी माँ की गाली न दिया करना।"

"अबे, तू भी हमारी माँ को गाली दे लेना, क्यो जगनू ?"

रम्मन ने यह कह जगनू के हाथ से रुपया ले लिया और उसे हथेली पर उछालने लगा।

कुछ क्षण के बाद जगनू और रम्मन ने यह फैसला किया कि उस रुपये से अभी बाजार से इतना सामान खरीदा जाय—दो बडल बीडी, एक दियासलाई, एक जोडी ताश, ग्यारह बीडे पान और बाकी पैसो के चाट-कचालू।

और सब सामान खरीदा भी गया। सामान खरीदने बाजार मे उन दोनो के सग सूरज भी गया था।

अहाते की टोली मे पान बँटे, बीडी बँटी। रम्मन ने सूरज के भी होठ पर बीडी जलाकर रख दी। एक ही कश मे उसे उल्टी हो आई, और पान से उसका सारा कपडा रँग उठा।

इस हालत के अतिरिक्त जब वह दोपहर को घर लौटा, उसके सिर का घूमना बन्द न हुआ था।

ठीक होने पर शाम को जब उससे उसकी कैफियत पूछी गई, तो वह एक चुप, हज़ार चुप रहा। ऐसे मौको पर चुप हो जाना सूरज ने रम्मन से सीखा था। और जब रूपाबहू ने उससे रुपया माँगा तो उसने साफ कह दिया कि कही गिर गया। यह मन्त्र उसे जगनू ने दे रखा था।

इतना झूठ बोलने के बाद जब वह रात को बुआ के पास आया, तब उसके मन मे फिर एक बात घूमी—बुआ झूठी है, कहती थी जो झूठ बोलता है, उसके दाँत टूट जाते है।

कहाँ टूट जाते है, झुट्ठी!

सूरज जब उन लडको के साथ बाजार मे सामान खरीदने गया था, उसने चौक मे दसिया को देखा था और उसे पहचान भी गया था। पुकारा था, और वह झट आ गई थी।

सूरज ने यह घटना बडे मजेदार ढग से बुआ और रूपाबहू के बीच सुनाई थी। इसे सुनकर रूपाबहू के मन मे दसिया की जो सुधि आई और उसके आधार पर जो दसिया की तस्वीर खिची, उसमें एक भटकी हुई पीडा थी। अगले दिन रूपाबहू ने दसिया को बुला भेजा।

दसिया की अब शादी हो गई थी, और वह खूब मोटी-दुलदुली होकर पति के घर से लौटी थी। रूपाबहू ने उसका खूब स्वागत किया, भोजन कराया, एक नई साडी दी, जम्पर का कपडा दिया, और शाम को जब वह अपने घर जाने लगी तब उसे पाँच रुपये और ढाई सेर गुड दिया।

दसिया ने बहुत बातें की थी—अपनी ससुराल की बडाई की, अपने पति की अच्छाई की, लेकिन पूरे दिन-भर की बातो मे उसने कहीं भी राजू पडित की बात न की थी, रूपाबहू ने उसे एक दिन कितना मारा था, इसकी भी छाप उसके मन पर कही न थी। वह सब कुछ भूल गई थी, जो उसके पीछे था। वह अतीत से असम्पृक्त थी, केवल वर्तमान की थी, इसीलिए वह इतनी खुशहाल और मस्त थी। रूपाबहू को दसिया से स्पर्द्धा हो आई। वह दसिया की तरह क्यों न हुई—उसीकी तरह गरीब, उसीकी भाँति एक आँख की कानी, और उसी जैसे भाव-लोक की।

उसे दसिया से बडी प्रीति हो आई थी। दसिया को उसने एक दिन इतना दण्ड दिया था, आज रूपाबहू को वह आत्म-दण्ड लग रहा था।

उसने मन मे चाहा कि दसिया फिर उसके घर नौकरी कर ले, इस बार उसकी तनख़ाह दूनी तक हो सकती थी, लेकिन दसिया ने साफ कह दिया, "अजी, वह जो हैं, मुझे कुछ न करने देगे। मुझे तो वह धूप और धुआँ दोनो नही लगने देते, कहते है, तू मैली हो जायगी, हाँ!"

चेतराम ने रूपाबहू की इच्छा के सकेतमात्र से अगले ही दिन घर

में एक नौकरानी रख दी। पर सूरज के मन का मेल इस नई नौकरानी से क़तई न था। वह जब तक सुबह रूपाबहू की आज्ञाओ मे दौड लगाती, उससे बहुत पहले सूरज घर से गायब हो जाता।

फिर एक और लडका नौकर रखा गया, जिसे सूरज मार-मारकर अपने से दूर ही रखता था। उसे भी अच्छा लगता था। सूरज जब रम्मन, जगनू, लाले, कपूरी और रजुआ के साथ बाजार मे घूमता, गलियों मे चक्कर लगाता, तब वह नौकर अपने घर हो आता था।

चेतराम को बिलकुल फुरसत न थी। चुनाव को लेकर वह दिन-रात चन्दनगुरु के साथ डोलता फिरता था। अब तक उसके काफ़ी रुपये ख़र्च हो चुके थे, और चुनाव मे जीत जाने की उसकी पूरी-पूरी आशा बँध चली थी।

इस बीच अगर कुछ पौने सोलह आने वाली बात हुई थी, तो वह केवल यह थी कि चेतराम कुछ सट्टो मे नुकसान खा गया था। ख़ैर, सट्टे के बाजार मे हार-जीत तो लगी ही रहती है।

इस बीच दिल्ली से गोरेमल के कई पत्र इस आशय के आये थे कि माल ख़रीदा जाय। अगर बिकता नहीं तो गोदाम भर जायँ। गोदाम किराये पर लिये जा सकते है।

चेतराम इन बातो पर ध्यान न दे सका। अभी और मंदी आयेगी, भाव और गिरेंगे—फिर अभी माल खरीदने से क्या फायदा!

चेतराम को क्या गोरेमल से कम अनुभव है! वह क्या बाज़ार की नस नहीं पकड सकता! चेतराम जो कर दिखायेगा, बडे-बडो की सूझ में वह बात न आयेगी।

चेतराम अब भाषण दे लेता है। सारी बस्ती पर उसका प्रभाव छा गया है। अब वह सेठ चेतराम चेयरमैन साहब कहलायेगा, फिर 'बिज़-नेस' मे रंग चढ़ेगा। चेतराम का ख़ानदान सेठ साहू से ऊपर उठकर साहब और चौधरी साहब की संज्ञा पा जायगा। फिर कोई नाम न ले सकेगा—'चौधरी साहब' कहेगे लोग। नमस्ते साहू साहब!

होली का त्यौहार आया।

और चेतराम के घर मे जैसे अनेक तरह से होली मनाई जा रही थी। स्वयं चेतराम समीप आये हुए 'इलेक्शन' के नशे मे एकदम चूर था। चन्दनगुरु के सग हरदम जैसे चार बोतल का नशा लिये डोलता था। उधर वह लगातार कई सट्टो मे हार गया था, और इधर बेहद मद्दी के कारण सट्टे के बाजार मे भी पाला पडने लगा था। बस्ती की एक कहावत थी कि होली की आग से बाज़ार मे गरमी फैलती है। चेतराम को इस सत्य का बहुत भरोसा था।

और जो सूरज था—चेतराम का मूलधन—वह अपने दोस्तों के सग पिछले दस दिन से गली-मुहल्लों मे बेतरह होली मना रहा था। अपने झुड मे रंग और पिचकारी के साथ लडको के संग गाता फिरता था, 'सर बाँधे कफ़निया रे शहीदो की होली निकली।' एक ओर लडके अँगरेज बनकर खडे होते थे, दूसरी ओर भारतवासी और बीच में सूरज, रम्मन, जगनू और रजुआ वीर जवाहर, सुभाष, भगतसिह बनते थे, फिर होली मचती थी। रोज़ चार-पाँच बार कपड़े खराब कर आता। रोज़ रूपाबहू के हाथ खूब पिटता, पर वह नित्य चेतराम की गद्दी से पैसे मार लिया करता। गद्दी पर वह अपने पिताजी को अब बहुत कम ही पाता, लेकिन जब पाता तो उसे एक रुपया जरूर मिल जाता, और जब न पाता तो रम्मन की बताई हुई युक्ति से वह एक की जगह तीन पा लेता।

और रूपाबहू ?

पिछली रात, जब लोग होली जलाने जा रहे थे, वह अपने घर के पीछे वाले कमरे से बढकर खिडकी पर खडी थी। खिडकी बन्द ही थी, उसे खोलने की हिम्मत जैसे उसमें न थी। और वह बन्द किवाडों के बीच से गली मे देख रही थी। लोग भीड मे गाते-नाचते और गालियाँ देते चले जा रहे थे। एक साथ इतनी आवाज़ें मिलकर फैल रही थी कि उनमें से कुछ भी साफ़ सुनाई नही पडता था। धीरे-धीरे जाने वालों का ताँता कम हुआ। लोग इक्के-दुक्के जा रहे थे। अन्त में पाँच-छ आदमी

बेतरह शोर मचाते हुए आये, ठाकुरद्वारे के सामने रुके और राजू पडित के नाम से रूपाबहू का नाम जोडकर अजीब भद्दी-भद्दी गालियाँ देने लगे।

रूपाबहू भाग खडी हुई। भीतर आँगन मे आई। दम फूलने लगा। फिर भी उसे लग रहा था कि वह भद्दी गाली उसका पीछा कर रही है, और उसकी छाया बनती जा रही है। वह अपने कमरे मे बन्द हो गई, सिर ढककर लेट गई। लोग होली जलाकर लौटने लगे। उनका शोर अब और भी बढ़ गया था। रूपाबहू क कमरे मे वह पूरा शोर जैसे उसके बन्द किवाडों और खिडकियों को तोडकर आ रहा था। और उसे लग रहा था, वह समूचा शोर गाली है, जो इस मुहल्ले मे केवल रूपाबहू को दी जा रही है। उस शोर में एक अजीब वाणी है, जिसके पूर अर्थ उसीको समझने पड रहे है।

और यह मधू बुआ?

जिसके पति ईशरी ने आज तक उसे ख़त न दिया। खुरजा मे, सास-ससुर की बात कौन चलाए! जब पति ही चुप है, उसे छोड गया है, फिर वे क्यों पूछे? खुरजा वाले क्यों सुध लेते? वे तो यह सोचकर दुश्मनी ठान बैठे है कि चुडैल बहू के कारण बेटा भी निकल गया।

पिछले दिनो दुकान पर खुरजा के दो व्यापारी आये थे। मधू बुआ ने किवाड के पीछे से बातें की थीं, और उनसे पता लगा था कि ईशरी बम्बई मे है, क्रान्तिकारियो के दल मे है, पूरे हिन्दुस्तान मे मारा-मारा फिरता है। लेकिन उसका पता क्या है, क्या हाल है, मधू बुआ पूछती रही, पर उन व्यापारियो से कुछ भी तो पता नहीं लग सका। तब से हर शाम-सुबह मधू बुआ रोती है। और होली जलने की इस रात को तो उसकी दशा अजीब हो रही थी। कुछ उसके अतस् मे सुलग रहा था।

शाम से ही सूरज भी लापता था। संतोष भी नहीं आई। उसकी माँ की दशा बहुत ख़राब हो चुकी है।

भोर होते ही रग की होली आरम्भ हुई। जी चुराकर मधू बुआ रसोई में जा बैठी और कुछ मीठे पकवान बनाने लगी। रूपाबहू इतनी निश्चेष्ट और उदास थी कि जैसे होली थी ही नहीं! घर में सूरज के साथ उसके सारे दोस्त आये थे—रंग में डूबे और अबीर-गुलाल से पटे हुए। सीता और गौरी ने सूरज की शरारतो की कई शिकायतें कीं, लेकिन रूपाबहू निर्विकार-सी रही।

मधू बुआ के मन में कहीं से बार-बार यह भाव उठता कि वह रूपा भाभी के सग होली खेलती, पर न जाने क्या था, जो उस भाव को झट दबोच लेता था।

रूपाबहू ने दादी और मधू दोनों को सुनाकर कई बार कहा था, "देखो, आज भी वह अपने दरवाजे पर नहीं।"

आठ बजते-बजते राजू पंडित आये, पीले वस्त्र पहने हुए। बायें हाथ मे रग से भरा पीतल का छोटा-सा कलश, और दायें हाथ मे ठाकुरजी का होली का प्रसाद।

रूपाबहू नहाने जा रही थी। आँगन को बस पार ही कर रही थी, उसी समय एकाएक उसके सामने राजू पंडित आ गए। वह कुछ भी न सोच पाई, न कुछ कह सकी, बस माथा घूमने लगा और वह वही इस तरह बैठ गई, जैसे उसे किसीने तोडकर बिठा दिया हो। उसे पता नही, राजू पंडित उस पर सारा रग कब डाल गए, कब सबको प्रसाद देकर और क्या-क्या कह-बोलकर कैसे चले गए!

वह एकाएक तब जगी, जब उसके सामने सूरज आया, जिसके हाथ मे राजू पंडित का दिया हुआ प्रसाद था और जिसे वह बडी तेज़ी से खा रहा था।

रूपाबहू जैसे जागकर उठ गई, सूरज पर झपटी, ऐसा झापड उसे दिया कि हाथ और मुँह दोनो से सारा प्रसाद कहीं दूर उड गया। सामने फिर गौरी भी पड़ी, वह भी राजू पंडित का प्रसाद खा रही थी। उसे भी पूरे क्रोध से मारा। चौके मे झपटी, थाली मे शेष प्रसाद रखा

था। थाली सहित उसे उठाकर आँगन मे पटक आई। फूल की थाली के टूटने की आवाज मे दोनों बच्चो के चीखकर रोने के स्वर बिलकुल मिल गए।

और रूपाबहू नहाना-धोना सब भूल गई। वह उसी तरह धधक-कर जलती हुई बैठी रही, जैसे वही होली थी, और कोई उसे जला गया था।

ठीक दोपहर के समय चेतराम अपने घर लौटा। बडी मस्ती से वह घर मे घुसा, आँगन मे आया।

घायल सिहनी की भाँति रूपाबहू ने उसे देखा, और होठों पर कुछ बुदबुदाकर रह गई, जैसे वह अपने-आपको शाप दे रही हो।

"क्या बात है?"

चेतराम के मुँह से इतना निकलना था कि रूपाबहू उस पर टूट पडी, "बेशरम कहीं के! चेयरमैन बनेगे! तेरे घर मे कोई भी चोर-डाकू घुस आए, कुछ भी लूट ले जाय, तुझे क्या!"

चेतराम को काटो तो खून नही। बस वह सुनता ही रहा।

"तेरे जीते-जी कैसे किसीकी हिम्मत पडी कि वह चोरो की तरह घुसकर मेरे आँगन में चला आये और मुझे भिगो जाय! गली-गली के भिखमंगे मुझसे होली खेलेगे तेरे जीते!···तेरी जिन्दगी मे सब बाहर-ही-बाहर है—बाहर ही है सब-कुछ तेरा—जा तू वही रह! तेरी बीवी, लडकी, लडका, सब भाड़ में जायँ!"

चेतराम सामने से हट गया।

संध्या के चार बजते-बजते जब बस्ती के छोटे-बडे बीसियो मुहल्लों, सवासौ गद्दियो और सोलहो दरवाज़ो के महाजन लोग, कच्चे और पक्के आढ़तिये, दलाल और मुनीम, ग्राहक और रोज़गारी लोग आपस में आ-जाकर बड़े प्रेम रो होली मिल रहे थे, उस समय कटेली, रूपामऊ और सिधयाने इलाके के धीमरों की एक भीड चौडी सडक से गुजर रही थी, जिसमें आधे से ज़्यादा लोग नाचते हुए गा रहे थे मस्त

दीवाने, जिसमे दस-बारह छोकरे जनाने वेष मे थे, आठ-दस लोगों की कमर मे बडे-बडे ढोल, नगाडे और चार-छ के हाथ मे बडे-बडे झाँझ थे, गन्दे-गन्दे, मटमैले और रंग से पुते हुए। इतनी बडी भीड मे मूल गायक एक सत्तर वर्ष का बूढा था जो एक अद्भुत गति से गीत की कडी उभारता था। और फिर शेष गाने वाले उस कडी को अपने-अपने स्वरों मे उठाकर इस तरह वातावरण मे बो देते थे कि लगता था कि हवा, सूर्य की वह रोशनी, बस्ती की वह समूची खुशबू, अजीब, मोहक और भरी-भरी खुशबू, जिसमे गुड, गल्ला, घी, मिठाई, सीरा, तेलहन और सडे हुए बोरों तथा गोबर की गंध मिली रहती थी, अपने सडे पख को खोलकर आकाश मे उड रही है—धुल जाने के लिए, निर्मल और स्वच्छ हो जाने के लिए!

लगता था, सब नाचने वाले कच्ची शराब पिये हुए है, सब बजाने वाले भर-पेट ताडी पिये हुए है, लेकिन वह बुड्ढा न जाने क्या पिये हुए है जो सबके बीच मे एक हाथ कान पर रखकर और एक हाथ नाचने वाले (वाली) के कन्धे पर रखकर इतने मोहक स्वर मे गा रहा है—

देवरा मै तेरी भौजइया
नैना तोही से लागे।
कुट्टी करो तेरो भइया, नैना तोही से लागे
मैने मना करी रे देवरा पाँच बजे मत अइहो
धारे सोवै तेरा भइया, नैना तोही से लागे!

इन मस्त पागलो का नाचता हुआ दस्ता ऊँची हवेली, साहू गुरचरनलाल के दरवाजे पर जा रहा है। वे राजा जमीदार हैं, ये असामी रिआया हैं उनकी। ये उन्हे अपने जीवन की सर्वोत्तम उन्माद के क्षण भेंट करने जा रहे है। ये अपने गीतो-भरे नृत्य, अपनी बेहोशी के तान उन्हे नजर करने जा रहे है। वहाँ इन्हे एक-एक बंडल बीडी, पाव-पाव-भर गुड़ और डेढ़-डेढ़ पाव कच्ची शराब के दाम मिलेगे। लेकिन यूँ ही

नहीं, यह सब तब मिलेगा जब इनमे से कुछ लोग बेदम होकर जमीन पर धर लेगे, जब ये नाचने वाले छोकरे बेहोश हो जायँगे और जब यह बदमाश बुड्ढा मुँह से शराब बहाने लगेगा, तब। अबे, जीतकर कैसा इनाम, राजा के सामने हारकर इनाम ले!

रूपाबहू किवाड की ओट से यह भीड देख रही थी और पसीने से तर होती जा रही थी। अगले जन्म मे वह भी कटेली, रूपामऊ और सिधयाने जैसे किसी गाँव मे पैदा होगी, किसी धीमर की बेटी, किसी धीमर की दुलहन होगी, जिसका पति इसी तरह नाचेगा, इसी तरह साहब का गदा टोप लगाये गाएगा, और जरा-सी गलती पर जिसका पति चमडी उधेड लेगा, हाथ-पाँव काट लेगा। एक मुट्ठी मे जीवन, दूसरी मे मौत! यह क्या, न जीना न मरना!

मधू बुआ ने रात को चेतराम को बता दिया कि राजू पण्डित होली खेल गए है।

चेतराम अपने मे क्रोध लाने का प्रयत्न करने लगा, पर उसमे कोई भाव उठता ही न था। उसके सामने यह सत्य अपने चारों पावों पर खडा होकर उसे समझा देता कि यह कोई नई बात तो नही। राजू पंडित तो पिछले दस वर्ष से हर होली की सुबह रूपाबहू पर रंग डालने आता रहा है, और गद्दी से उसके सवा पाँच रुपये दक्षिणा के भी बँधे हैं।

अगले दिन, दोपहर के बाद, मधू बुआ ने गौरी और सूरज को खूब मल-मलकर नहलाया, उन्हे नये-नये कपड़े पहनाये। सुबह वे दोनों बच्चे माँ के हाथ से इतनी बुरी तरह पिट गए थे कि वे अब भी रूपाबहू को देख-देखकर रोने को हो आते थे।

आँगन मे बढकर रूपाबहू ने सूरज और गौरी को बेहद दुलार से देखा, और उन्हे एक साथ अंक मे भर लेने के लिए वह आतुर-सी हुई। तभी सूरज ने गौरी को अपने पीछे छिपाकर माँ को बडे आवेश में देखा, "हट, हम नही आयेंगे तुम्हारे पास!"

"क्यों?"

"तुम बहुत मारती हो !"

"तुम भी मुझे खूब मारना, हाँ !" यह कहती हुई रूपाबहू का स्वर पिघल गया। वह फफककर रो पड़ी, और उन रूठे हुए बच्चों को अपने संग लिये कमरे मे चली गई।

रात को उन दोनों बच्चो को भोजन कराने के लिए रूपाबहू स्वय गई। बुआ चौके मे बैठी प्रसन्नता से उन्हे देख रही थी। भोजन के बाद माँ सूरज को पानी का गिलास देने लगी। उसने छूटते ही कहा, "मै गिलास का पानी नही पिऊँगा।"

"क्यो रे ?" बुआ भी पास आ गई।

"बोतल का पानी पिऊँगा," सूरज ने कहा, "दुकान वाले कमरे मे पिताजी चन्दनगुरु के साथ बोतल का पानी पी रहे हैं, हाँ ! मै भी पिऊँगा। यह पानी नही पिऊँगा मै !"

माँ का माथा ठनका, श्री-हत हुई।

उस घर में आज तक किसीने शराब छुई तक न थी। प्याज-लहसुन का कोई स्वाद तक न जानता था। पता नही सूरज की बात में कितनी चोट थी कि अनजाने ही सब घबरा गए।

६

सूरज रोता हुआ घर लौटा। बुआ ने समझा कि लडको से लडाई हुई है। पर उसीसे पता चला कि संतोष बहुत बीमार हो गई है। काशीपुर से उसके मामा आये हैं। अब संतोष माँ के संग अपने मामा के यहाँ चली जायगी। बुआ से न रहा गया। जाकर देखा, सत्तो को सचमुच बहुत तेज बुखार था। माँ से अलग वह दूसरे कमरे मे लिटाई गई थी। माँ और बेटी दूर, दो अलग कमरों मे। और बीच में मुहल्ले के कुछ लोग आ खडे थे, जो एक स्वर से राजू पडित को समझा रहे थे कि शारदा को किसी अस्पताल में भरती कराओ, उसकी उचित दवा हो,

उसे कहीं पहाड पर ले जाओ। पर राजू पंडित के पास कोई उत्तर न था। उनके पास केवल ब्रह्म था, जिससे वह सबके मुँह पर ताले लगा देते थे।

शारदा ने अपने भाई को बुलाया था। वह ख़त बुआ ने ही लिखा था। उसमे शारदा ने साफ-साफ लिखवा दिया था कि वह राजू पंडित के घर नहीं मरना चाहती। वह काशीपुर मे मरेगी—वहाँ किसीका भी मुँह देखकर, जिससे वह मौत के बाद मुक्ति पा जाय। लेकिन पिछली शाम से ही मामा और राजू पडित का सघर्ष चल रहा था। राजू पंडित किसी भी तरह शारदा और सत्तो को काशीपुर नही भेजना चाह रहे थे। बार-बार अपने घर की शान्ति के लिए सवा लाख गायत्री-मन्त्र के प्रयोग की बात रख रहे थे।

मधू बुआ जब संतोष के कमरे मे पहुँची उस समय इसी संघर्ष से सारा घर गूँज रहा था।

सत्तो के तपते माथे पर बुआ की चन्दन जैसी हथेली मानो काँप-सी गई।

बुआ ने अत्यन्त कोमल स्वर मे पुकारा, "सत्तो, ओ सत्तो!"

वह चुप थी—जैसे बेहोश!

तभी सूरज ने आवाज़ दी, और सत्तो की बन्द भारी पलके जैसे ही खुलीं, वे सब आँसू ढुलक पडे जो न जाने किस सागर मे बन्द थे। उसने बुआ को देखा, सूरज को कुछ इस तरह देखा, जैसे वह उससे नाराज़ हो, कोई उलाहना हो उससे। पर कही भी जैसे उसमे कोई मूर्त स्वर न था, और बरबस उसकी आँखे फिर मुँद गईं।

सूरज वहीं बैठा रहा, और बुआ शारदा के पास चली गई। उस कंकाल मे न जाने कहाँ से इतनी जीवन-शक्ति बरस पडती थी कि आश्चर्य होता था। वह तपाक से उठ बैठी। वह खुलकर बोल नहीं पाती थी, सारी आवाज साँय-साँय के रूप में उभरती थी, और उसके भी ऊपर वही भयानक खाँसी, जो अब पहले से बहुत कम आती थी,

पर जितनी भी जब-जब आती थी, उस चुके हुए अस्थि-पंजर को मथ देती थी, जैसे खाँसी उसके अवशेष को भी चूस रही हो।

पर सच, इन सबके ऊपर थी शारदा माँ की जीवन-शक्ति!

बुआ को सामने पा वह बरसने-सी लगी। पता नही उसके पास बोलने और कहने के लिए कितनी बाते थी, और वह सब क्यो कह डालना चाह रही थी। जब साँय-साँय भी गूँगी हो जाती, तब वह हाथ-आँख के संकेतो और मुद्राओ से कहती, और जब वे भी ठडे हो जाते, तब शारदा माँ सूखी लकडी के बँधे बोझ की तरह गिर पडती, पर चुप तब भी न होती, आँखे बरसती रहती, बरसती रहतीं। कुछ देर चुप खडी रहकर बुआ कमरे से बाहर जाने को हुई, पर शारदा ने हाथ के सकेत से उसे रोक लिया। वाणी पाने के लिए अपने मे शक्ति संजोने लगी, और बहुत प्रयत्न के बाद उसके स्वर मे कुछ तैरा, "मधू बेटी, अब मैं यहाँ से चली जा रही हूँ, सत्तो को भी ले जाऊँगी।"

"वह तो बहुत बीमार है।"

"अपने मामा के यहाँ अच्छी हो जायगी।"

एकाएक आवाज फिर गूंगी हो गई, और शारदा पता नहीं क्या कहने के लिए छटपटाने लगी।

सकेत से बुआ के दायें कान को अपने होंठों के पास ला उसने टूटते स्वर में कहा, "सन्तोष अकेली रह जायगी, मधू बेटी!"

बुआ चुप थी, और शारदा बिना स्वर और आवाज के वाचाल। और एक बार उसकी साँय-साँय मे कुछ तैरा, "बेटी, ख़ूब प्याज़ और लहसुन डाली हुई गरम-गरम आलू-कटहल की सब्ज़ी और बासमती चावल का भात, ऊपर से आम-मिरचों का अचार।"

मधू बडी तेजी से सन्तोष के कमरे में गई, देखा तो भर गई—सूरज सिरहाने झुका हुआ सन्तोष का सिर दाब रहा था। बुआ को देखते ही वह लिपटकर रो पडा।

"अरे! सत्तो अच्छी हो जायगी रे! देखना, भगवान् उसे अच्छा

करेंगे।"

बुआ के संग वह चुपचाप घर की ओर मुडा। ठाकुरद्वारे के पास आकर खडा हो गया, "भगवान् अच्छा करेंगे बुआ! उन्होंने ही बीमार किया है क्या?"

और बुआ से छिपकर वह दौडता हुआ ठाकुरद्वारे मे घुस गया, मूर्ति के सामने घुटने टेक नतशिर हो गया, कुछ बोला नही, कहा और पढ़ा भी नहीं, बस नि शब्द रोने लगा।

तेरहवे दिन सन्तोष अच्छी हो गई, पर बेहद कमजोर थी। सूरज को उतावली थी। वह सन्तोष को अपने घर ले जाना चाहता था। अंग्रेज़ी स्कूल मे उसका नाम लिखा दिया गया था। घर पर भी उसे मास्टर चन्दूलाल पढाने लगे थे। सूरज सन्तोष को अपने घर लाकर उसे दिखाना चाहता था कि वह किस तरह मास्टर चन्दूलाल को दस बीडी देकर टरका देता है।

अगले दिन सुबह सूरज आठ बजे तक सोता रहा। उसके घुटने मे बडी चोट लगी थी। पिछले दिन रम्मन से उसकी बडी घनघोर लडाई हो गई थी, और रात, उस लडाई से प्राप्त घुटने के दर्द ने उसे एक बजे तक जगा रखा था।

हाथ-मुँह धोकर जब वह खेलने की बात सोचने लगा, तब उसने निश्चय किया कि आज-कल-परसों वह कहीं नही जायगा, सन्तोष के संग रहेगा।

इस निश्चय के बाद वह बडी तेज़ी से बढ़ा, गली मे दौडा, जैसे घुटने का दर्द भूल गया हो। उधर से अकेली मधू बुआ आ रही थी। उसने भागते हुए सूरज को रोकना चाहा। कुछ बहुत तेजी मे कहा भी, पर सूरज का बीच मे कहाँ रुकना!

पर वहाँ दरवाजा बन्द था, बाहर से बन्द, जैसे कि सब कही

चले गए हो, सब चले गए हों। पर सत्तो कहाँ है ?

आवेश मे लौटा हुआ वह बुआ के पास आया, "सत्तो कहाँ है ?"

बुआ चुप थी।

"बोल, बताती क्यो नही ?"

"माँ के संग अपने मामा के यहाँ चली गई।"

"चली गई !" सूरज जैसे मन्द पड गया, वह अचंचल, निस्पद खडा था। फिर सहसा क्रोध से भरकर बुआ से बातों-बातो मे लड गया। लडने से अधिक वह रो-रोकर अशक्त हो रहा था।

चेतराम के चुनाव का दिन सिर पर आ गया। वोट पडने के चार ही दिन शेष थे। दुकान के दोनों मुनीम रामचन्द्र, सीताराम, तीनों नौकर हीरा, मनोरथ, श्यामलाल और अपने सारे दलाल, विशेषकर बिहारी, नैनू और कुंसामल तथा सारे कच्चे आढतिये, मुख्यतया छीतर-मल, गिरधारीलाल और दयाराम मशीन की तरह चुनाव की तैयारी में लगे थे। मास्टर चन्दूलाल बस्ती के घटाघर के पास राज शाम के साढे छ बजे से रात के आठ बजे तक चेतराम के मच से भाषण दिया करते थे। गद्दी से उन्हे अब तीन रुपये रोज मिलने लगे थे। चेतराम चन्दनगुरु के संग बस्ती-भर मे चक्कर काटता फिरता था। खर्च दो बोतलो से बढकर आज सोलह तक पहुँच गया है, पैदल चलने वाले टैक्सी और ताँगे के आदी हो चुके है। जिस दिन चुनाव होने जा रहा है, उससे पिछली रात को मौलवी मुहम्मद शकूर कबरिस्तान मे दो मुर्गे जबह करेंगे। उनके संग बडा दरवाजा के सारे मुसलमान जुमा-मस्जिद में चेतराम की जीत के लिए नमाज पढेगे। राजू पण्डित के ठाकुरद्वारे मे चुनाव की समाप्ति तक अखंड हरिकीर्तन चलेगा। घी के सवासौ चिराग अनवरत जलेंगे। अखड मौन धारण करके राजू पंडित उधर गायत्री के सवा लाख मन्त्रों का जाप करेंगे।

चन्दनगुरु ने अपने घर के छज्जे पर क़रीब-क़रीब पाँच-छ सौ कबूतर पाल रखे थे। चुनाव के दिन सब कबूतरो की गरदन मे 'चेतराम जिन्दाबाद' की चिट बाँधी जायगी।

अकस्मात् अगले दिन अपने मुनीम को लिये दिल्ली से गोरेमल आ टपका। शाम का समय था, और गद्दी सूनी पडी थी। न चेतराम, न उसके मुनीम, न कोई नौकर-चाकर। लेकिन पता नही कहाँ से उस समय गद्दी पर निरा अकेला सूरज फोन पर झुका बैठा था। गोरेमल को देखते ही उसने नमस्ते की और घर मे खबर फैलाने के लिए दौडा।

गोरेमल आश्चर्य मे खडा रहा। उसे कुछ सूझता ही न था कि आख़िर बात क्या है! दुकान और गद्दी सूनी क्यो है? उसने बढ़कर दुकान और गद्दी पर रोशनी कर दी। फिर फोन की घटी बजी। गोरेमल ने फोन उठा लिया। अमृतसर का व्यापारी ढाई सौ मन बाजरा और दो सौ मन खाँड की बातचीत कर रहा था।

गोरेमल ने व्यापारी से सौदा करके फोन को इतने गुस्से से रखा कि साथ में आया हुआ मुनीम घबरा गया। उसी समय सूरज आया।

गोरेमल ने बडे डरावने स्वर मे पूछा, "कहाँ है सब लोग?"

"इलेक्शन मे लगे है।"

"इलेक्शन, कैसा इलेक्शन?"

"पिताजी चेयरमैनी के लिए .. ।"

"क्या? क्या कहा?"

गोरेमल की मुद्रा से ऐसा लग रहा था, मानो वह अपने-आपको काट खाएगा, पीसकर पी लेगा जो उसके सामने पडेगा। पर सूरज बडे संयम और विश्वास से खडा था, और गोरेमल के एक-से-एक जलते हुए प्रश्न का सही-सही उत्तर देता जा रहा था।

और जब क्रोध ने गोरेमल की वाणी बन्द कर दी और वह पागलो की तरह दुकान में सिर्फ चक्कर काटने लगा, तब सूरज भगा वहाँ से

और बाज़ार मे जा खडा हुआ। चौक से होता हुआ वह सीधे उसी साँस में महाजनटोला पहुँच गया।

थोडी देर बाद गोरेमल थककर दुकान से उतर सडक पर आ खडा हुआ, अगले चौराहे तक बढ़ आया। पास और दूर, चारों ओर मीटी-मोटी आवाज़े फैल रही थी। तीन स्वर, तीन बोलियाँ—

चेतराम ज़िन्दाबाद, चेतराम को वोट दो!

चौधरी रामनाथ जिन्दाबाद, चौधरी साहब को वोट दो!

गुलज़ारीलाल जिन्दाबाद, गुलज़ारीलाल को वोट दो!

गोरेमल ने खडे-खडे विचार किया कि पहला स्वर, पहली बोली पूरी बस्ती में सबसे ऊपर उभर रही है, अन्य दो स्वर उसके नीचे दबे हैं। एकाएक उसी क्षण दुकान के दो नौकर हिरनू और मनोरथ दिखाई दिए। गोरेमल से नजर मिलते ही वे दोनों जैसे सूख-से गए। उलटे पाँव ज़रा छिपते हुए पास की गली मे मुडने लगे, लेकिन गोरेमल से वे बच न सके, उन्हे बँधी गाय की तरह पीछे-पीछे आना पडा।

गद्दी पर बैठकर उसने बडे ठंडे स्वर में कहा, "तुम्हारे मालिक लोग कहाँ हैं, लाला चेतराम! बोलो। मुनीम लोग कहाँ है? अच्छा बैठो, वे सब अभी आ जायँगे।"

कुछ देर बाद सूरज के सग दोनो मुनीम भी आये। दुकान मे घुसते ही जब उनकी दृष्टि गद्दी पर मौन बैठे हुए गोरेमल से मिली, उस क्षण उनके पैर तले की धरती ही खिसक गई। हाथ-पैर दबाये दुकान मे वे इस तरह चुपचाप सिमटकर बैठ गए, जैसे जाडे की रात मे कोई रोगी कुत्ता। अपराधी की तरह सब चुपचाप बैठे थे। सिर उठाए केवल सूरज बारी-बारी सबकी आँखो को देख रहा था, जैसे वह उस भयालक सन्नाटे में कुछ देखने और समझने का प्रयत्न कर रहा हो।

उसी तरह, ठीक उसी मुद्रा मे धीरे-धीरे रात के नौ बज गए, फिर चेतराम आया—बेहद थका और चुनाव के नशे में धुत! एक हाथ मे कुछ लिपटे हुए कागज़, दूसरे मे सिगरेट का टिन और दियासलाई।

सडक से ही उसकी नज़र दुकान की ओर गई, फिर गद्दी पर जाकर टिक गई और जैसे उसका अस्तित्व ही काँप गया। पता नहीं, वह किस शक्ति से दुकान मे पहुँचा और गोरेमल के सामने जा खडा हुआ।

तब गोरेमल का विष फूटा, सबसे पहले नौकरो पर। उन्हे पास बुलाकर कहा, "जाओ, तुम सब को नौकरी से छुट्टी। भाग जाओ यहाँ से, गोरेमल अभी जिन्दा है! यह मत समझो कि वह मर गया!"

दुम दबाए नौकर चले गए। फिर गोरेमल खडा हो गया और बेचैनी से चक्कर काटने लगा। एकाएक रुककर उबला, "आख़िर तुम लोगो ने समझा क्या है? गोरेमल मर गया, यही न! लेकिन कान फाडकर सुन लो, गोरेमल एक नहीं सात जन्म तक नही मरेगा, क्योकि उसे पता है कि वह क्या है, और वह उसी दायरे मे चलता है। मरोगे तुम सब! समझो कि मर गए तुम लोग।"

एकाएक गोरेमल रुक गया। क्रोध से उसकी आवाज लडखडा गई, फिर वह कसकर चीख़ा, "कल सुबह गोरेमल की यह दुकान बन्द हो जायगी! हुँ! गोरेमल चेतराम फ़र्म, गोरेमल चेतराम—बैकर्स एण्ड कमीशन एजेण्ट! हुँ! कल से यह फ़र्म नही रहेगी! ख़त्म हो गई आज!"

गोरेमल दुकान से बाहर निकल आया—जहाँ चुपचाप सूरज बैठा था। उसे आठ आने पैसे निकालकर दिये, "जाओ, मेरे खाने के लिए बाज़ार से पूरी सब्ज़ी ले आओ!"

सूरज वहाँ से चला गया। लेकिन अपने पीछे गोरेमल की आवाज़ सुनकर वह बाजार न जा सका। सडक पर छिपकर वहीं खडा-खडा कुछ देर तक सुनता रहा, "कल के बनिये आज के सेठ! दिमाग उलट गया! पेट में बल पड गए! चरबी बढ गई! चेयरमैन बनने चले है! देखूँगा, जब कल से भीख माँगते फिरोगे। ओफ ओ! तभी तो मैं समझ नहीं पाता था कि दुकान मे आग क्यों लगी है! तुम ख़ुद जलो चेतराम, पर मेरी दुकान में आग नही लग सकती! गोरेमल ने खूब ज़माने देखे हैं। कोई माई का लाल गोरेमल को धोखा नही दे

सकता ! यह गौर करने की बात है !"

गोरेमल फिर चुप हो गया, नफरत से चेतराम को देखता रहा, और ठडी साँस लेकर गद्दी पर बैठ गया, "नालायक़, जा तेरी क़िस्मत फूट गई !"

इस तरह गोरेमल पूरे ढाई घण्टे तक उफन-उफनकर बकता रहा, सुलग-सुलगकर भद्दी-से-भद्दी बाते और गालियाँ सुनाता रहा। झुँझला-झुँझलाकर जैसे बौखला गया था। सूरज को स्वभावत बाजार से पूरी लाने में देर हो गई थी। गोरेमल ने उस पर भी आक्रमण किया।

भोजन करते समय भी वह चुप न था। उसकी हर बात घाव करने की शक्ति रखती थी।

रात का एक बजने को आ रहा था। गोरेमल थककर चुप हो गया था, और उसी तरह गद्दी पर ऐसे अधलेटा पडा था जैसे उसे ख़ुद भी किसी घाव का दर्द है।

तब ज्वार थम गया। तूफानी समुद्र की फेनिल लहरें चेतराम के शान्त-मूक, निस्पद-स्थूल तट से टकरा-टकरा, थककर चूर हो गई और भाटे के सग वापस चली गई।

सूरज को गोरेमल ने कई बार डाँटा कि वह जाकर सोये, पर वह वहाँ से टलकर दुकान के बाहर भरे बोरो के छल्लों के बीच छिपा बैठा रहा। घर में भी सब त्रस्त थे। रूपाबहू, मधु बुआ और मंगूदादी तीनो सामने खिडकियों मे बैठी हुई सब सुन रही थी, जैसे किसी अभि-योगी का सारा परिवार कोई फैसला सुन रहा हो।

जब सब शान्त हो गया और गोरेमल को जरा-जरा-सी नींद आने लगी, तब चेतराम ने सिर उठाया, और दोनों मुनीम भी हिले-डुले। दुकान के सारे वातावरण में जो तनाव था, वह ज़रा-ज़रा-सा ढीला हुआ। फिर एकाएक चेतराम ने बढकर गोरेमल के पैर पकड लिये, और फूट-फूटकर रोने लगा।

पैर छुडाकर गोरेमल तपाक से उठ बैठा, "हुँ ! रोने चले है ! अब

क्या होगा रोने से ! मै पूछता हूँ, यह इलेक्शन लडने की भयानक सलाह तुझे किसने दी ? कौन है वह दुश्मन ? जरा गौर करने की बात है !"

"बस्ती की जनता चाहती थी,' चेतराम ने रुँधे कठ से कहा।

"बस्ती की जनता चाहती थी !" गोरेमल ने स्वर को बुरी तरह पीस डाला, "बस्ती की जनता तुझे भिखमगा देखना चाहती है। गोरेमल चेतराम की यह शानदार फर्म बस्ती के दिलों मे कील की तरह चुभ रही है। इसे निकाल फेंकने का केवल यही तरीका है कि तुम जैसे बुद्धू को इलेक्शन मे झोंक दिया जाय !"

चेतराम ने दबे स्वर मे कहा, "मैने सोचा, चेयरमैन बनने से अपना 'बिज़नेस' चौगुना हो जायगा, और ख़ानदान की इज्जत बढ़ जायगी।"

"चौगुना हो जायगा ! इज्जत बढेगी !" गोरेमल के स्वर मे व्यंग्य घृणा-भाव मे बदलने लगा, "ख़ूब इज्जत बढेगी ! क्यो नही ! फ़र्म मे ताले लग जायँगे ! और तू जेल मे होगा ! बेवक़ूफ़ ! गाँठ बाँध ले। यह सारी बस्ती दुश्मन है एक-दूसरे की ! जब एक मरेगा तभी दूसरे का व्यापार बढ़ेगा !· ओफ़, गोरेमल की फ़र्म ! गोरेमल की फ़र्म ! ज़रा गौर करने की बात है !" एकाएक गोरेमल क्रोध मे उफन पडा, "उल्लू के पट्ठे ! आज दो साल से मै तुझे क्या कहता चला आ रहा हूँ ? अख़बार पढ़ता है न ? सुनता है कि नही ! कुछ समझता भी है ! बोल !"

"समझता हूँ," चेतराम ने अभियुक्त स्वर मे कहा, "ज़माना बदलने वाला है, तभी मैने सोचा कि चेयरमैन बनकर ।"

"डाके डालूँगा, यही न !" गोरेमल ने तुरन्त बात काट दी, "क्यों नहीं ! बिलकुल ठीक। ज़रा ग़ौर करने की बात है ! बाप-दादों ने कभी 'बिज़नेस' की भी है ! अरे, 'बिजनेस' छिपकर होती है, जैसे जगल के शिकारी का शिकार !· · नाम बढ़ाकर, फैशन बनाकर, ऊँची दुकान सजा, अपने नाम का ढिढोरा पीट, बड़े-बडे आदमियों से दोस्ती

करके, 'बिज़नेस' नही चलती ! तब तो आदमी नंगा हो जाता है। लक्ष्मी उठ जाती है वहाँ से। बस नाम, फैशन, इज़्ज़त और आबरू लेकर चाटा करो ! मूर्ख ! जब पास लक्ष्मी नहीं तो समझो कुछ नहीं। .. जानते हो गोरेमल यही बैठे-बैठे दसियो चेयरमैन ख़रीद सकता है ! बडे-बडे लीडर हाल-चाल पूछने आते है ! खुशबू रुपये मे होती है, फूल मे क्या ! दुनिया की सारी खूबसूरती, सारा ऐशो-आराम उस मुट्ठी मे है जिसमे रुपया है ! . मानता है कि नही ?"

"मानता हूँ," चेतराम पसीने से तर हो रहा था।

"तो छोड दे अपना इलेक्शन !"

चेतराम पीला पड गया। उसके चेहरे से ऐसा लग रहा था कि वह कितने ही दिन का रोगी है ! वह मुरदा आँखों से शून्य मे देखता रहा और उसके कानो में गोरेमल की आवाज टकराती रही, "इलेक्शन छोड दे ! बैठ जा ! छोडना होगा, बैठना होगा !"

"बस्ती के सारे वोट अपने हाथ मे आ गए हैं," चेतराम जैसे अपने ईश्वर से कह रहा हो, "विजय है अपनी !"

"मै कहता हूँ, सब छोड दो ! सब छोडना होगा ! तुम्हारा वह रास्ता ही नही ! जिसे तुम अपनी विजय समझ रहे हो, वह उसी तरह की भयानक हार है जो दुर्योधन से युधिष्ठिर की हुई थी। और यह बस्ती के वोट, यह शकुनी की चाल है चाल ! समझे मूरख-नादान !"

"मै बस्ती मे मुँह दिखाने लायक नही रह जाऊँगा।"

"रहोगे, और भी ठाठ से रहोगे ! उसका उपाय गोरेमल के पास है।"

चेतराम ने गोरेमल को अपलक देखा, फिर कहा, "बहुत रुपया भी ख़र्च हो चुका है !"

"कितना खर्च हुआ है, मुनीम, बताओ झटपट !"

सारा हिसाब जोड-घटाकर मुनीम ने बताया, "सात सौ तेरह रुपये बारह आने नौ पाई !"

"कोई परवाह नहीं ! समझ लो कि एक सट्टे मे हार हो गई !" एकाएक गोरेमल चुप होकर कुछ सोचने लगा, फिर हड़बड़ाकर बोला, "लेकिन हार क्यो ? गोरेमल का रुपया हार खा जाय, लानत है गोरेमल की सूझ पर ! सात सौ तेरह रुपये बारह आने नौ पाई के वह दो हज़ार बनाएगा और चेतराम का माथा भी उठा रह जायगा !"

क्षण-भर मे गोरेमल का सारा भाव ही बदल गया। सारी मुद्रा झट इस तरह बदल गई, जैसे वह हो ही नहीं। चेतराम को उसने और नज़दीक बिठा लिया, मुनीमो को पास कर लिया, फिर गम्भीरता से मन्त्रवत् बोला, "बेच दो सब वोट ! तुम्हारे खिलाफ उठे हुए उन दोनों लोगो मे ज़्यादा ताक़तवर और मालदार कौन है ?"

"लाला गुलजारीलाल के पास पैसा अधिक है," चेतराम ने बताया, "लेकिन इलेक्शन की ताकत चौधरी रामनाथ के पास है।"

"हमे ताकत से क्या मतलब, हमारा काम पैसे से है ! जाओ, अभी गुलज़ारीलाल को बुला लाओ !"

"अभी ! इस समय !" शेष तीनो व्यक्तियों ने आश्चर्य से देखा।

"और क्या ! ऐसे काम तुरन्त हों यह तो गुड की पाग है, जरा-सा रुके कि सब मिट्टी ! यह सारा काम इसी अँधेरी रात के सन्नाटे मे हो जाय। और सुबह की हवा से सारी बस्ती में फैल जाय कि चेतराम लाला गुलज़ारीलाल के पक्ष मे बैठ गया।"

और सचमुच सौदा हो गया। रात बीतने को आ रही थी। सूरज जागता-जागता बोरों की छल्लियों के बीच उसी तरह सो गया था। रूपा-बहू और मंगूदादी खिड़कियों पर बैठी-बैठी वहीं ज़मीन पर लुढ़क गई थीं। केवल मधू बुआ को नीद नही आई थी।

मुनीम लोग घर चले गए। लाला गुलज़ारीलाल को घर तक छोड़ने के लिए चेतराम स्वय गया।

और जिस समय वह अकेला हुआ तथा उसके पैर घर की ओर बढ़े, उस समय उसे लगा कि किसीने उसकी आँखों मे पट्टी बाँध और

गला दबोचकर उसे किसी गंदी नाली मे डाल दिया है।

घर की ओर उसके पैर बढते ही न थे, जैसे वे पैर उसके न हों। वह बिना पैर का है। वह केवल एक घिनौना-सा पिंड-मात्र है—असहाय ग़रीब। वह बुरी तरह से मस्त था, उसे लग रहा था कि उसके घर के दरवाजे पर चन्दनगुरु बैठा है, जो उसे देखते ही दबोच लेगा।

सूरज कहाँ है ? किसके संग, कहाँ सोया है ? बुआ और भी दुखी थी। सारा घर उसने छान डाला, पर कहीं पता नही। फिर रात के उस अन्तिम पहर मे बुआ रो पडी। और उसी क्षण सूरज की आँख खुल गई। वह दरवाजे से टकराया, आँगन मे आ गिरा और फिर बुआ के पास आ पहुँचा।

बुआ शान्त हो गई, पर कुछ बोली नहीं। सूरज को संग लिये वह चुपचाप घर से निकली, और लाला गुलज़ारीलाल के मुहल्ले की ओर बढ़ी। एक चौराहे के बाद अगले तिराहे पर कोई पागलों की तरह चुपचाप खडा था।

सूरज ने झट पहचान लिया, और दौडकर चेतराम से लिपट गया। तीनों चुपचाप घर की ओर मुडे। उस अन्धेरे मे सूरज बार-बार कभी बुआ का मुँह देखता, कभी चेतराम का। फिर वह आग्रह से पूछ बैठा, "नाना तुम्हे क्यों इस तरह डाँटते हैं पिताजी ? मै उनके यहाँ कभी नहीं जाऊँगा। माताजी को भी नही जाने दूँगा, हाँ ! नाना कही के लाटसाहब थोडे हैं, हैं तो नाना ही न ! नही, मै उन्हे नाना भी नही कहूँगा। सबके नाना तो प्यार करते हैं, दुलार करते है। यह नाना नही गोरेमल है ! · क्यो पिताजी, यह गोरेमल कौन है ? बताइये न, कौन है यह ? गोरेमल होगा अपने घर का ! यह तो हमारा घर है।"

मधू बुआ नि शब्द रो रही थी और चेतराम चुपचाप आँसुओं को पीता चल रहा था। सनातन धर्म मन्दिर मे अखण्ड रामायण पाठ समाप्त हुआ था। हवन के बाद अब धर्मोपदेश के गीत-भजन चल रहे थे। कोई बड़े ही मोटे स्वर में गा रहा था, 'कलियुग ही कलयुग छाय

रहो दिशि चारो, अब कस न कल्कि अवतार बेगि प्रभु धारो'।

उधर सुबह हो रही थी, इधर चेतराम की बेचैनी बढती जा रही थी। सहसा चेतराम ने पाँच सौ रुपये निकाले और उसे चोरों की तरह छिपाए वह चन्दनगुरु के यहाँ भागा।

चेतराम ने सारी बातें चन्दनगुरु से ज्यों-की-त्यो कह दी। वह लाल-पीला होने ही जा रहा था कि चेतराम ने उसके सामने पाँच सौ रख दिये और चन्दनगुरु का मूल रंग कायम रह गया। उसने गभीरता से कहा, "गुलजारीलाल से भी मुझे पाँच सौ रुपये दिलवाओ तो मैं चुप रह जाऊँगा, हाँ! जो कहना है साफ-साफ कहे दे रहा हूँ, तुम्हारी तरह मैं बुजदिल और कायर नही हूँ चेतराम! मुझे लल्लो-चप्पो नहीं आती! तुम आखिरकार बनिये ही तो ठहरे—कलेजा ही कहाँ! बदर और घडियाल वाली कहानी के उस बदर की तरह तुम भी अपना कलेजा अपने पास न रख किसी पेड पर टाँगते हो!"

चन्दनगुरु एकाएक चिता मे डूब गया। फिर गभीरता से बोला, "लेकिन तुमसे एक बात कह दूँ चेतराम! जैसा मैने देखा और पह-चाना है—वह गोरेमल घडियाल भी है और वह पेड भी जिस पर तुम्हारा कलेजा टँगा है।"

यह कहकर चन्दनगुरु बडी ज़ोर से हँस पडा।

जिस दिन इलेक्शन का फैसला हुआ उस दिन तक गोरेमल दुकान में टिका रहा।

पाँच सौ रुपये चन्दनगुरु ने गुलजारीलाल से भी लिये। और उधर एक हज़ार एकमुश्त चौधरी रामनाथ से लेकर वह अन्त में उन्हींके पक्ष मे चला गया। और इस तरह बस्ती के चेयरमैन चौधरी रामनाथ हुए।

चेतराम अपना वोट तक देने न गया था। उसने आज तक घर

और दुकान की दीवारों के बीच अपने को इस तरह बन्द कर रखा था कि वही उसकी शरण हो, रक्षा और आवरण हो। वोट पड़ने के दिन, जिस क्षण लोग शोर मचाते हुए आते-जाते थे, चेतराम को लगता था, जैसे वे सब उसके प्राणों को कुचलते चले आ रहे हैं। और जिस शाम, विजयी चेयरमैन रामनाथ का बस्ती में शानदार जुलूस निकला था, शहनाइयाँ बजी थीं, आतिशबाजी छूटी थी और रात-भर पी-पिलाकर क़व्वाली हुई थी, उस रात चेतराम अन्धे साँप की तरह अपने सिर को टकराता घूम रहा था।

गोरेमल पूरे तेरह दिन के बाद बस्ती से विदा हुआ। राहु पूनम के चाँद को तेरह दिन तक घोटकर पिये रहा। उगलकर जब जाने लगा, उस समय चेतराम की गाँठ मे वह खूब मजबूती से बाँध गया कि चेतराम फ़र्म को छोड़कर एक क्षण के लिए भी किसी अन्य काम में हाथ नही लगायेगा। सट्टे का काम एकदम से बन्द। सारे गोदाम—अपने और किराये के दोनो—गेहूँ चावल से भरे रहें, इनके अलावा और कोई अनाज नहीं। और अपने इन गोदामो के भराव का पता किसी को न हो। केवल जौ, चना, अरहर, उर्द, मूँग, तेलहन, बाजरा और मटर की लेन-देन के काम से फ़र्म को सदा गर्म रखो। बाजार और भाव कितने भी ठंडे क्यों न पड़ जायँ, फर्म को सदा गर्म रखना है।

अब सीता बेटी की शादी भी हो जानी चाहिए, गोरेमल उस तेरह दिन की अवधि मे इस समस्या को भी सुलझा गया। गोरेमल का मुनीम भूरादास, दिल्ली से मालिक के संग आया था, उसीके मझले लड़के रामदास से सीता की शादी तय करा दी गई, क्योंकि भूरादास मरने के बाद अपने तीनों लड़कों के नाम सोलह हज़ार रुपया छोड़ जायगा, क्योंकि भूरादास का वह मझला लड़का रामदास हिन्दी-उर्दू मिडिल पास है और हाथरस में बीड़ी का एक छोटा-मोटा कार-

ख़ाना खोलेगा, क्योकि यह शादी केवल पाँच सौ रुपये मे हो जायगी, और इसमे किसी भी तरह की झंझट नहीं—सब घर का मामला। रुपया कम-से-कम ख़र्च हो, और जो ख़र्च भी हो वह घर ही मे रहे इससे उत्तम क्या ! शादी-ब्याह भी कोई ऐसी चीज है, जिसमे पैसा ख़र्च किया जाय ? कतई नही, कभी नही।

लेकिन भूरादास के लडके से सीता बेटी की शादी—चेतराम का पूरा घर इसके ख़िलाफ़ था। चेतराम मन-ही-मन सुलगता—मुनीम के छोकरे से मेरी बेटी नही ब्याही जायगी ! अपनी बेटी की शादी मै सोलह हज़ार के खर्चे से करूँगा—दिल खोलकर। बेटी मेरी है, सारी कमाई ऐसे ही दिनो के लिए होती है ! रूपाबहू चेतराम को झकझोर देती है—होगा गोरेमल अपने घर का। उसे क्या तमीज़ कि बेटी कहाँ और कैसे ब्याही जाती है ! उसके लिए बस सब-कुछ रुपया है, मेरा बस चले तो मै सारे रुपयो मे आग लगा दूँ ! और वह होता कौन है मेरी बेटी की शादी अपने मनमानी तय करने वाला ! मगूदादी कहती थी—मेरे जीने-जी जे शादी न होगी। मालिक की बेटी किसीके नौकर के घर न ब्याही जायगी। हम लाला वो मुनीम ! बडे चलो है शादी करने ! जे भूरादास पानी मा अपनो मुँह तो देखे। चाँद जैसो मेरी नतिनी उस काले-कलूटे से नायँ ब्याही जायगी। जे हम अगरवाल्ला वो वन्नियाँ। मैं जाको पाँव छूने जाऊँगी ! जे सात जनम नायँ ! मधू-बुआ चुप थी, क्योंकि वह धीरे-धीरे सत्य को पहचान रही है—वह जीवन-सत्य, जो बेहद करुण है, विपरीत और भयावह है, जिसके आगे सारी शक्तियाँ ठण्डी पड जाती है ! और सूरज तो बुआ से साफ-साफ़ कहता था—बुआ ! यह गोरेमल बडा बदमाश मालूम होता है। यह मेरा नाना नहीं, रूपाबहू का बाप है यह !

१०

एक दिन चेतराम की डाक मे एक अजीब चिट्ठी निकली। सूरज के नाम एक बन्द लिफ़ाफ़ा था। चेतराम ने बन्द लिफ़ाफे को ज्यों-का-त्यों घर मे पहुँचा दिया—बुआ के पास। सयोगवश सूरज बैठा भोजन कर रहा था।

बुआ ने तुरन्त अत्यन्त कौतूहल से लिफ़ाफे को फाडकर देखा, काशीपुर से सन्तोष का पत्र आया था—एक पत्र सूरज के नाम दूसरा बुआ को।

खत पाकर सूरज फूला न समाया। सन्तोष इतना अच्छा पत्र लिख लेती है ! नहीं उसने अपने मामा से लिखवाया होगा। लेकिन लिखावट तो सन्तोष की है। सूरज इससे भी सुन्दर लम्बा-चौडा पत्र लिखेगा।

"देखूँ सन्तोष ने क्या लिखा है," बुआ ने सूरज से आग्रह किया।

"देखो न, पढ लो, लिखा है कि मेरी माताजी की तबीयत यहाँ आकर ठीक हो रही है। बुखार बहुत कम हो गया है। खाँसी भी बहुत कम आती है। अब खूब बोलने लगी है। मैं बहुत जल्द वापस आ जाऊँगी। मेरा जी यहाँ नही लगता। तुम्हारी बडी याद आती है। ठाकुरद्वारे मे अकेले न जाना, मै आऊँगी तब संग हम ठाकुरद्वारे में चलेंगे। यहाँ मामा के बाग मे एक अन्धा साधू रहता है, उससे मैंने पाँच भजन सीखे हैं। यह साधू पक्का काग्रेसी है। मामाजी ने बताया है, यह गाधीजी के साथ चम्पारन मे सत्याग्रह कर चुका है। यहाँ लड-कियों की एक पाठशाला है। सारी लडकियाँ खादी पहनती हैं, सूत कातती है, चर्खे चलाती है। यहाँ जवाहरलाल नेहरू आये थे। यहाँ रोज रात के चार बजे से प्रभात फेरी होती है—मर्दों की अलग, स्त्रियों की अलग। लोग गाते हैं—'स्वदेश मन है, स्वदेश तन है, स्वतन्त्रता

पर बलिदान होंगे।' लेकिन माँ को छोड मुझसे कहीं रहा नहीं जाता। मेरे बडे मामा की एक लडकी है उषा, और छोटे मामा की एक लडकी है किरन, दोनों मुझे जीजी कहती है। मुझे बहुत अच्छा लगता है।"

पढते-पढते खत उसने बुआ को दे दिया और बुआ के पत्र को पढ़ने लगा। और उसे सन्तोष पर गुस्सा आने लगा। पत्र तो था बुआ के पास, पर उसमे सारी-की-सारी उसी की शिकायत लिखी गई थी। 'उसे छेदामल के अहाते मे न जाने देना, उसे रम्मन के संग न रहने देना, उसे जगनू, रजुआ, चन्दर और शीबू के साथ न खेलने देना, वे सब-के-सब बडे बदमाश लडके है।'

सूरज को बेहद ताव आया। बुआ की चिट्ठी फेंककर वह बहुत तेजी से जाने लगा और रास्ते में उसने अपनी चिट्ठी को गुस्से से फाड दिया—एक ही बार फाडा कि स्वयं रुक गया, जैसे उसकी चिट्ठी किसी और से फट गई हो। वह सब भूल गया, उसका सारा भाव ही बदल गया। चुपके से दुकान पर गया, गोंद की शीशी ली और फटी चिट्ठी को जोडने लगा।

और उसी दम सूरज सन्तोष के पत्र का उत्तर देने बैठा—एक पत्र अपनी चिट्ठी के जवाब में, और दूसरा पत्र बुआ के पास आई हुई चिट्ठी के उत्तर मे! अपनी चिट्ठी मे उसने लिखा कि यहाँ भी प्रभात फेरी होती है—लेकिन केवल मर्दों की। सब गाते हैं, 'आलम का डंका भारत मे बजवा दिया वीर जवाहर ने।' और यहाँ आर्यसमाज की ओर से भी बडे जोर को प्रभातफेरी होती है। एक बार काली चौरा गेट पर दोनों प्रभातफेरियो में लडाई हो गई।

स्वभावत. ख़त मोटे-मोटे अक्षरों मे लिखे गए थे, और उनके ऊपर एक बुआ का ख़त, सब मिलाकर लिफाफे का वज़न तिगुना हो गया। आग्रह और हठ करके वह बुआ को डाकघर तक लाया। लिफाफा तौला गया, टिकट लगे फिर अपने ही हाथ से उसने चिट्ठी भी डाली, तब उसके मन को शान्ति हुई।

अब वह डाक आने के समय गद्दी पर जरूर पहुँच जाता। वह रोज़ सोचता था कि सन्तोष का पत्र आयेगा। एक दिन उसे एक ऐसा ख़त मिला जो मधू बुआ के नाम आया था। लिखावट भी सन्तोष जैसी न थी, फिर भी उसे पूरा विश्वास था कि वह सन्तोष का ही पत्र है, जो सूरज के पत्र से नाराज़ हो बुआ के नाम पत्र भेज रही है, और ऊपर का पता उसके मामा ने लिखा है।

मधू बुआ ने लिफाफ़ा खोलकर जैसे ही भीतर के पत्र को देखा, पागलो की तरह उसने सूरज को अपने कंठ से कस लिया, "मेरे सूरज राजा बेटा! तेरे फूफा का ख़त है।"

फिर सूरज के सग भागती हुई वह छत पर गई, बिलकुल एक किनारे, जहाँ से कोई आदमी नही दीख पड़ता, वहाँ मुँडेर के सहारे बैठकर वह ख़त पढने लगी—उसके ईशरी ने बम्बई से उसे वह ख़त लिखा था, और बडे भाग्य से अपना पूरा पता भी दिया था।

खत पढ़ते-पढते बुआ एकदम रो पडी—फफककर। लेकिन रुदन को चीख़ नही बनने दिया। आँचल में ख़त, और बाँहो मे सिर डालकर बुआ रोती रही, और सूरज आँखों मे आँसू भरे चुपचाप देखता रहा।

"सूरज भइया, तेरे फूफा बम्बई में बीमार पडे है," बुआ का सारा कठ जैसे पिघल रहा था, "उन्होने तीन सौ रुपये के लिए लिखा है।"

सूरज तपाक से बोला, "बुआ तीन सौ रुपये मैं दूँगा! दुकान के बक्स में से निकाल लाऊँगा।" बरसाती आँखो से बुआ सूरज को तकती रही—निस्सहाय-सी, अबला-सी। "उसमें तो बहुत सारा रुपया रहता है बुआ! मैं निकाल लाऊँगा बुआ!"

"नहीं बेटे! ऐसा नहीं," बुआ ने भरे कंठ से कहा. "बहुत बुरी बात!"

नीचे आकर बुआ चुपचाप अपनी खाट पर जा गिरी। सूरज खडा देखता रहा, बुआ ने आँचल से सारा मुँह ढक लिया था।

सूरज दुकान मे गया। गद्दी पर जा बैठा। गल्ले के उस लकड़ी के बक्स को छूता रहा, सबके मुँह और सबकी आँखे भी देखता रहा, पर आज चारों ओर से उसे बुआ के वे गीले शब्द सुनाई दे रहे थे—'नहीं बेटे! ऐसा नही! बहुत बुरी बात!'

सूरज दोपहर के एक बजे से रात के नौ बजे तक गद्दी और दुकान पर चक्कर काटता रहा, पर उससे कुछ न हो सका। पर वह उतना ही परेशान था। बुआ के पास जाने की उसकी हिम्मत तक न हो रही थी।

फिर वह एक अजीब विश्वास से रूपाबहू के पास गया, बोला, "माँ! मुझे तीन सौ रुपये चाहिएँ!"

रूपाबहू आश्चर्य मे डूबी सूरज को ताकती रही।

"बुआ के पास बम्बई से फूफा का ख़त आया है। वह बीमार हैं वहाँ। तीन सौ रुपयों के लिए लिखा है बुआ को!"

रूपाबहू चुप-की-चुप रह गई। कुछ क्षण बाद बोली, "जा अपनी बुआ को भेज दे!"

सूरज ने बुआ से कुछ न बताया। बुआ को माँ के कमरे मे पहुँचा स्वयं बाहर चला आया, किवाड़ के पीछे से चुपचाप देखने लगा। रूपा बहू बक्स खोल रही है। बुआ के सामने तीन सौ रुपये सहेज रही है, "यह रहे तीन सौ रुपये, उन्हे लिख दो कि रुपया पाते और चिट्ठी देखते ही सीधे यहीं चले आये।"

रूपाबहू बुआ को निहारती रही और उसे चुप कराती और समझाती हुई ख़ुद रोने लगी। "रुको! पचास रुपये और ले लो! लिख देना, ये पचास किराये के रुपये है। आराम से यहाँ चले आये, अब एक क्षण भी वहाँ रुकने की जरूरत नही।"

और अगले दिन से बुआ सूर्य को अर्घ्य देने लगी। आँगन मे चौक पूरकर घी के दीपक जलाने लगी। आटे की लोई, और गोटे बनाकर वह शाम-सुबह उसे सिन्दूर चढ़ाने लगी। दिन को भोजन नही करती, व्रत रहती, शाम की पूजा के बाद मुँह मे अन्न डालती—बिना नमक

का अन्न।

ठीक बारहवें दिन, सन्ध्या समय ईशरी बम्बई से आ गया। गोरा-चिट्टा, हृष्ट-पुष्ट ईशरी बीमारी से स्याह पड़ गया था। आँखें बुझी-बुझी-सी लग रही थीं। और उसे दुख क्या था—कमर से नीचे के भाग में फुंसियाँ और पीले-पीले दाने, दाँये पैर मे एक जगह ऊपर का चमड़ा काला और मोटा हो गया था और उस पर जैसे हरदम आग फूँकने वाली खुजली मची रहती थी।

और बुआ ने यह भी पाया कि ईशरी बेतरह बीड़ी पीने लगा है, एक-पर-एक—लगातार। और उसे बिगड़ी हुई खाँसी भी है, जिससे उसकी पसलियों में दर्द भी है। बुआ ने एक-एक देख लिया, सब पह-चान लिया और सबको चुपचाप सिर-आँखों पर रख वह अपने-आपमें तपने लगी।

सच, ईशरी को जीवन में अब तक इतनी ममता कभी न मिली थी। और यह भी सच था कि वह ऐसे जीवन और ऐसे क्षेत्र से स्वय ही भाग गया था। उसके अनुमान और स्वप्न मे भी शायद यह सत्य न आया हो। ईशरी ने अब तक खोया-ही-खोया था, जो मधु बुआ उसे मिली भी थी, उसे पूरा सम्पर्क भी न दे सका था। यहाँ वह अभागा भी था। लेकिन उससे पहले वह सौभाग्यशाली था। आँख मिली थी, पर उससे कभी देखा ही न था। और जीवन के पिछले कई बुरे वर्ष, जहाँ उसे केवल ठोकर, अपमान, जीने के कटु संघर्ष और अनेक तरह की यातनाएँ मिली थीं, इन सबने सचमुच उसे भर दिया था। बहुत नज़दीक से उसने सत्य देख लिया। ऐसा सत्य जो विश्वास देता है, शक्ति और धैर्य देता है। ईशरी की दवा होने लगी। उसे प्यार-शुश्रूषा मिलने लगी।

और वह अक्सर ऐसी बातें करता था, जो कटु-से-कटु होकर चुभ

जाती थीं, पर उनसे घाव-जैसा दर्द नही उठता था, बल्कि वे बस, छू देती थी। बातें तीखी और उलटी लगती थी, पर मन को कहीं-न-कही बाँध लेती थी—जैसे उसकी बातें सामने बैठकर न सुनी जायँ, छिपकर दूर से सुनी जायँ सीधी लहरों को काटकर तैरनेवाली मछली की तरह, सँपेरे के बीन से ओझल नन्हे-से साँप की तरह।

और रूपाबहू को तो वह ईशरी बहुत प्यारा लगता था। उससे उसे मोह-सा हो गया था। वह ईशरी से अक्सर इस तरह खुलकर बातें करती थी, जैसे माँ अपने ख़ूब पढ़े-लिखे लायक बेटे के सग करती है। ईशरी की अनेक तरह की दवा, और विभिन्न प्रकार के उपचार एक संग चल रहे थे। डॉक्टर के यहाँ इन्जेक्शन से लेकर राजू पंडित के जप-तप, दिवगत धमूं वैद्य की पुरानी पोथी से ढूँढ़कर तैयार किये हुए चूरन और लेप, उस्ताद बन्ने खाँ की तावीज़ और गढ़ी के हनुमान तथा बडे दरवाजा के शिव-दर्शन तक के उपचार फैले थे। पर एक महीने तक उसके रोग मे कोई विशेष परिवर्तन न था, हाँ उसका शारीरिक स्वास्थ्य अवश्य कुछ सुधर चला था।

रूपाबहू का मन घर मे खूब लग गया था। वह अब अक्सर खुलकर हँस लेती थी। और ईशरी के संग वह प्रायः सारी दुपहरी बातों मे काट देती थी।

एक बार कई दिन तक रूपाबहू बहुत उदास और चुप-चुप रही। ईशरी के संग बैठती-उठती, पर जैसे उसे कुछ बाँध बैठा था और वह उस गाँठ को खोलने मे असमर्थ थी। इसलिए उसमे अवश्य कुछ मथ रहा था। और एक दिन रूपाबहू ने ईशरी से पूछा, "भइया, पाप किसे कहते हैं?"

कुछ क्षणों बाद ईशरी अनुभूति और प्रज्ञा से बोला, "पाप, पाप कुछ नहीं है, मन का एक विकार मात्र है। एक ऐसा असत्य है, जो हमारे संस्कार पर लाद दिया जाता है।"

"और पुण्य?"

"पुण्य ! अर्थात् जिसे पाप का उलटा कहते है ! मेरे ख्याल यही वह झूठा साँचा है, जो पाप के असत्य को सदा गढ़ता रहता है।"

"तो पाप-पुण्य कुछ भी नहीं है ?" रूपाबहू का सारा मुखमंडल दीप्त हो आया, अणु-अणु से हँसी बरसने लगी। उसने अतुल आश्चर्य से कई बार बच्चो की तरह दुहराया, "तो पाप-पुण्य कुछ नहीं है ! कुछ नहीं है भइया ! क्या कहते हो तुम, सच, पाप-पुण्य कुछ नही है ?"

"कुछ नहीं ! कुछ नहीं ! ये ऐसे भयानक असत्य है, जिनसे हमारी सारी जिन्दगी घुट-घुटकर तबाह हो जाती है !" ईशरी का भी सारा मुख तमतमा आया था, "हम खुलकर जियें, और सब को उसी तरह जीने दें। जो हम अपने लिए चाहते हैं, वही हम सबके लिए चाहे, इससे बड़ा सत्य और कुछ नहीं हो सकता।"

रूपाबहू को जैसे अपना अस्तित्व मिल गया। उसका माथा चमक आया। जैसे वह न जाने कितने वर्षों बाद आज माँ हुई है।

पर यह स्थिति कुछ ही दिन रह सकी।

मुश्किल से एक महीना बीता होगा कि एक दिन राजू पण्डित ने खबर दी कि सन्तोष की माँ शारदा का स्वर्गवास हो गया।

इस घटना से रूपाबहू के मन पर फिर कुछ लद गया। वह उदास-उदास रहने लगी। रह-रहकर कही से कुछ उसे फिर कुरेदने लगा। उसकी भी इच्छा होने लगी कि वह मर जाय। एक दिन दुपहरी में उसने फिर ईशरी से पूछा, "स्त्रियों में पतिता और कलंकिनी किसे कहते हैं ? कब और कैसे कोई स्त्री पतिता हो जाती है, और उसके माथे पर कलंक चढ जाता है ?" जब तक ईशरी चुप रहा, रूपाबहू अपनी बात अनेक तरह से दुहराती रही।

ईशरी के मुँह से निकला, "ईश्वर ने स्त्री क्या, सबको पवित्र और अच्युत बनाया है, यह समाज है जो हमें अपवित्र और च्युत करता है।"

रूपाबहू झट बोली, "लेकिन अगर किसी व्यक्ति से स्वय ही माया

और भूलवश एक बार कोई चूक हो गई हो तो? अगर वह स्वय च्युत हो गया हो तो?"

"स्वयं कोई च्युत नहीं होता, न अपवित्र ही होता है! कराया जाता है। मज़बूर किया जाता है। उसके स्वयं का क्या दोष? अगर उसके स्वय का दोष हो, मूलत वही च्युत और अपवित्र हो तो उसमे कभी यह द्वन्द्व या प्रश्न ही नही उठ सकता। वह तो अपने को इस तरह भूल जायगा और अपनी उसी च्युत स्थिति मे ही इतना आनन्द-विभोर रहेगा, जैसे कि गन्दी नाली का कीड़ा।"

रूपाबहू भारी आँखो से मन्त्रमुग्ध सुनती रही—सुनती रही।

"लेकिन मानव इसलिए अपवित्र, च्युत और पतित नहीं है, क्योंकि उसे चेतन होकर परिणाम भोगना पड़ता है। कही भूलकर, कहीं गिरकर, धोखा देकर या पाकर वह स्वयं को क्षमा नही करता। वह अन्तस् मे स्वय को यातना और पीड़ा देता है, और अनेक तरह से अपने को तपाता है—रोकर, सुलगकर, जलकर—तभी वह सदा अच्युत है, सदा पवित्र और महान् है!"

रूपाबहू ईशरी के पैरों से लिपट गई और बच्चों की तरह रोने लगी।

११

चुनाव में एकाएक बैठ जाने से चेतराम पर बेहद बीती—उसके अन्तस् पर भी और बाह्य पर भी। जैसे किसी ने उसके दोनों पक्ष कुचल दिये हो और वह आकाश से ढकेल दिया गया हो!

यद्यपि वह घटना अब कई महीने की हो गई, लेकिन चेतराम को लगता था जैसे अभी कल घटी है और वह 'कल' उसमे चिपक गया है।

रण। ··· 'ग्रामोन्नति के लिए मन्त्रिमण्डल जागरूक। हरिजन और पिछड़ी जातियों के प्रति सरकार की विशेष दृष्टि। दक्षिण भारत में समाजवादी नेताओं के विकास के साथ-ही-साथ रूस की लाल झंडी फहराने लगी है। ··· · सूबों में लगान और जमींदारी का रिवीज़न होगा, लगान कम होगा, काश्तकारों को अनेक छूटें मिलेंगी। वह जमीन जिस पर ऐसे जमीदारों का अधिकार चला आ रहा है जो लापता है, उसे या तो सरकार जब्त कर लेगी, या काश्तकार की मौरूसी हो जायगी। ·· ··ग्राम उद्योग-धन्धो, और सहकारी समितियों की स्थापना के प्रति कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल कटिबद्ध। बंगाल और पंजाब की जेलों में अब तक असंख्य राजनीतिक क़ैदी नज़रबन्द।

तब गद्दी के उस अशान्त वातावरण में सहसा सूरज ने बड़ी गम्भीरता से पूछा, "क्यों मास्टर साहब ! उस अंग्रेज़ी अख़बार में कहीं सन्तोष की माँ के स्वर्गवास के बारे में कुछ नहीं छपा है ?"

सब लोग तो आश्चर्य से चुप रहे, लेकिन मास्टर चन्दूलाल को हँसी आ गई। सूरज का जैसे रक्त खौल गया। उसने डाँटकर कहा, "आप हँसते हैं ! आप ही ने तो उस दिन बताया था कि अँग्रेजी अख़बार हिन्दी से अच्छा होता है, क्योंकि उसमें संसार भर की ख़ास-ख़ास घटनाएँ और ख़बरें छपती हैं !" मास्टर चन्दूलाल की हिम्मत न हुई कि वह सूरज से कुछ बोलते। चेतराम उसे शान्त करता हुआ बोला, "बेटे ! यह तो ठीक है—लेकिन सन्तोष की माँ शारदा के स्वर्गवास की घटना बहुत छोटी है—दुनिया में रोज़ ऐसे लाखों मरते हैं।"

सूरज ने आवेश में बात काट दी, "सन्तोष की माँ के स्वर्गवास की घटना छोटी है ? क्यों छोटी है ? वह क्यों नहीं अख़बार में छपने लायक है ? सब झूठे हैं। बेईमान हैं ये अख़बार वाले !"

सूरज उसी गति में वहाँ से चला गया।

सूरज फूफा के पास आया। वहाँ बुआ भी बैठी थी। लगता था, सूरज अभी रो देगा या किसी पर आक्रमण कर बैठेगा। बुआ के

पूछते ही वह रुदन के गीले स्वरो मे फूट पडा, "मै काशीपुर जाऊँगा। सन्तोष की माँ मर गई—सन्तोष रोती होगी, जभी इतने दिन हो गए उसका कोई पत्र नही आया। बुआ ! वह पत्र क्यो नहीं लिखती ? वह कैसी होगी ? अखबार वाले क्यो नही खबर देते ?"

बुआ सूरज के अंतस् से परिचित थी। वह उसके हर आँसू, हर मुस्कान के अर्थ समझती थी।

सब काम छोडकर वह सूरज को संग लिये राजू पंडित के घर गई। राजू पडित अपने आँगन मे बैठे किसी योग-पूजा के बीच जैसे समाधिस्थ थे—ऊपर से नीचे तक रेशमी वस्त्र मे। पत्नी की मृत्यु से अब दाढी-मूँछ बढ़ा ली थी। सिर के बाल भी पट्टे हो रहे थे—पर रूखे और बिखरे न थे, माँग काढ़कर करीने से सँवारे हुए थे। सामने एक ऊँचे आसन पर सरजू सुनार का दस वर्ष का लडका हीरालाल बैठाया गया था।

मधू बुआ और सूरज को देखते ही राजू पंडित ने उन्हे संकेत से बरामदे की खाट पर बैठा लिया और पन्द्रह-बीस मिनट के बाद अपनी योग-क्रिया भी समाप्त कर ली।

हीरालाल चार आने पैसे और दो लड्डू प्रसाद पाकर उसी दम अपने घर गया। राजू पडित ने बुआ और सूरज को प्रसाद देकर गम्भीरता से कहा, "दिवगता शारदा की आत्मा को अभी बुलाया था। उसे चन्द्रलोक मिला है—सती थी न, इसीलिए। मुझसे कह गई है कि मेरे वियोग से दुखी होकर कभी घर न छोडना। और मुझे अपनी कसम रखा गई है कि कभी उदास न होना, नहीं तो चन्द्रलोक मे मेरा उपहास होगा। इतना कठिन दुख भोगकर वह क्यों मरी है—मेरे इस प्रश्न पर शारदा की आत्मा ने बताया है कि पूर्व जन्म में वह किसी बडे राजा की पटरानी थी—राजा आस्तिक था, पर यह जन्म भर नास्तिक थी। शारदा की आत्मा केवल तीन मिनट के लिए मेरे पास आ सकी थी—चन्द्रलोक से केवल इतने ही क्षणों की छुट्टी मिलती है। जाते-

जाते जब मैने उससे यह पूछा कि फिर तुम्हारा जन्म होगा या नहीं, फिर तुमसे मिलन हो सकेगा या नहीं, तब उसने बताया कि अपने सतीत्व तथा पति की अनन्य भक्ति और आशीष से मै आवागमन से मुक्त हो गई हूँ—पर हमारा मिलन तब हो सकता है जब तुम दिवगत होकर सूर्यलोक मे आवोगे !"

मधू बुआ तो इतने आश्चर्य मे पड गई थी कि उससे कुछ सोचा ही नहीं जा रहा था। बस, वह एकटक सूने आँगन में देख रही थी।

सूरज के मुँह से एकाएक निकला, "राजू पंडित, तुम बडे झूठे हो। शारदा माँ काशीपुर से चन्द्रलोक पहुँच गई, और अखबार मे तो कुछ नही छपा है !"

राजू पंडित कुछ बोलने जा रहे थे कि सूरज ने अपने भावावेश में उन्हें चुप कर दिया, "अगर शारदा माँ को तुम अब भी बुला लेते हो, तो शारदा माँ मरी कहाँ ? और वह जब आई थी तो तुमने जाने क्यों दिया ? मुझसे और बुआ से तो मिलाते ! सतोष से मिलाते !" राजू पंडित चुप रह गए। बुआ ने सूरज का दाहिना हाथ पकड रखा था। सूरज ने बडे विश्वास और आग्रह से कहा, "सन्तोष को झट यहाँ बुला लो। काशीपुर बडी बुरी जगह है। उसे वहाँ से बुला लो, नही तो कौन जाने वहाँ वह भी न मर जाय !"

बुआ ने उसका मुँह भींच लिया, "नालायक, मुँह से ऐसा अशुभ निकालते है ?"

बुआ की मुख-मुद्रा देखकर सूरज डर गया। भयाकुल हो उसने बुआ का हाथ छोड़ दिया। उसे स्वय लग गया कि उसके मुँह से जो संतोष के प्रति वाणी निकली है, वह बहुत बुरी है—गाली से भी बहुत बुरी।

"मुझे ऐसा नहीं चाहिए था भगवान् ! मुझे क्षमा करो," सूरज ठाकुरद्वारे में जा घुसा, और भगवान के सामने नतशिर हो कहने लगा। "क्षमा करो भगवान् ! सन्तोष को भी क्षमा करो ! अब मै कभी ऐसा

नहीं कहूँगा, देख लेना, कभी नही कहूँगा !"

और वह वहीं बैठा रोता रहा, रोता रहा। मधू बुआ ने देखा, उसे बहुत मनाया, घर चलने का आग्रह किया, पर वह मूर्तिवत वही बैठा रोता रहा—जैसे वही उसका अपने से पाया हुआ न्याय हो, अपने को दिया हुआ सात्विक प्रतिशोध हो !

सन्ध्या समय सूरज ने सरजू सुनार के लडके हीरालाल को घण्टा-घर के नीचे पकडा और उसे धमकाते हुए बोला, "सच-सच बता हीरा, आज राजू पंडित की पूजा मे सचमुच तूने सन्तोष की माँ को देखा है ? वह सच आई थी वहाँ ? सच-सच बता ! राजू पंडित ने तुझे चार आने दिये हैं, मै तुझे एक रुपया दूँगा ! यह लो !"

सूरज ने रुपया पेशगी दे दिया। हीरा ने बताया, "सब झूठ है ! कोई कही से नहीं आया था। उसने जैसे-जैसे कहा, मैंने वैसे-वैसे कर दिया !"

सूरज आवेश में बोला, "चल, तुझे यह राजू पंडित के सामने कहना होगा। मधू बुआ और फूफा के सामने कहना होगा, मुहल्ले के सब लडको से कहना होगा ! जहाँ-जहाँ मै ले चलूँ, वहाँ-वहाँ तुझे अब चलना पड़ेगा।"

"मै कही नहीं जाऊँगा। यह लो तुम अपना रुपया !"

हीरा ने रुपया वापस दे दिया; पर सूरज ने क्रोध से रुपये को तुरन्त फेक दिया, और हीरा को पूरी शक्ति से खीचने लगा। हीरा ने विरोध किया। फिर सूरज लड गया उससे। पक्की सडक पर दे मारा और पागलो की तरह उसे पीटने लगा।

हीरा अस्पताल ले जाया गया और सूरज पुलिस थाने। थाने के बाहरी फाटक पर गोपालन मुहल्ले के सब ख़ास-खास लडके मौजूद थे—रम्मन, जगनू, लाले, रजुआ, चन्दर, विपिन और पहलाद वगैरा। सब सूरज के लौटने की राह ताक रहे थे, और वे सब योजना भी तैयार कर रहे थे कि अगर सूरज नहीं छोडा गया तो हम सब थाने में घुस

चलेंगे और पुलिस को खूब ज़ोर-ज़ोर से गालियाँ देंगे।

शाम के पाँच बजे जब हीरालाल अस्पताल से सिर मे पट्टी बँधवाकर लौट रहा था, थाने के फाटक पर वह भी लडकों के बीच खडा हो गया। सूरज थाने मे लाया गया है, हीरा को बिलकुल नहीं पता था।

सूरज को छुडाने के लिए चेतराम थानेदार को पचास रुपये दे रहा था। वह सौ माँग रहे थे। तभी हीरालाल को सामने किये हुए फाटक के सब लडके थाने मे घुस आये। हीरालाल को थानेदार के सामने ले जाकर रम्मन ने कहा, "यह और हम सब चाहते है कि सूरज तुरन्त छोड दिया जाय।"

और सूरज न जाने क्यो, कैसे उसी दम छुट गया। सूरज को लेकर जब सब लडके थाने के फाटक को पार कर रहे थे, जगनू ने थानेदार को एक भद्दी-सी गाली दी, और सब लडके हँस पडे।

रात को सरजू सुनार की पत्नी कुलवंती राजू पडित के घर आ धमकी, और राजू की उसने वह गति की, इतनी लडी कि राजू पडित चुपके से घर के पिछवाडे से बाहर निकल गए—महाजन टीले की ओर। फिर पक्के एक घण्टे तक कुलवंती के मोरचे पर राजू पडित की बुढिया माँ अपनी रक्षा मे लडती रही।

अगले दिन राजू पंडित ने ढूँढते-ढूँढते सूरज को चौक की एक गली मे जगनू और रम्मन के सग चाट खाते हुए पाया।

बडी प्रसन्नता और साध से राजू पडित ने चाटवाले का पैसा चुकाया। जगनू को एक बंडल बीडी, और रम्मन को बारह आने पैसे इतना सब देने के बाद वह उनके बीच से सूरज को अपने संग ले जा सके।

जाड़े के दिन थे। सुबह कसकर कुहरा पड रहा था। कुत्तों का एक झुण्ड

कभी से लड़ रहा था। सूरज घर में से निकलकर जैसे ही सड़क पर आया, चौराहे की ओर गया, उसने देखा—चौधरी छेदामल खड़ा कुत्तों को रोटियाँ खिला रहा था। झुण्ड के बाहर, तीन कुत्ते ऐसे खड़े थे, जो बीमार थे, मरने को थे। किसी की टाँग टूटी थी और शरीर में घाव थे, किसी के सिर में कीड़े थे और शरीर पर एक भी रोआँ नहीं था, देह का सारा चमड़ा भयानक खुजली के कारण फूलकर कथरी-जैसा हो गया था। जब छेदामल कोई रोटी का टुकड़ा उन दूर खड़े कुत्तों के पास फेंकता तो कुत्तों का पूरा झुण्ड उस टुकड़े पर न दौड़कर पहले उस गरीब कुत्ते पर झपटता, जिसके सामने वह टुकड़ा गिरता। फिर वह घायल बीमार कुत्ता बड़ी देर तक दर्द से चीखता रहता और एक अजीब करुण और टूटी दृष्टि से रोटी वाले को देखता। तब छेदामल अपनी घनी-सफेद मूँछों में पान चबाता हुआ मुस्कराता, और हँसकर दूसरा टुकड़ा फेंक देता। और जब उसे झुण्ड के कुत्तों में लड़ाई करानी होती तब वह एक समूची रोटी शून्य में उछाल देता और झुण्ड के कुत्ते आपस में एक-दूसरे पर इतनी बेदर्दी से टूटते कि लगता, एक कुत्ता दूसरे को खा जायगा।

सूरज खड़ा देखता रहा। सारे कुत्ते उसी मुहल्ले के थे। वह करीब-करीब सब कुत्तों को पहचान रहा था। उनमें वे कुत्ते भी थे, जिन्हें उसने कई बार अपने हाथों से मिठाइयाँ, परावठे और खीर खिलाई थी। वे दूर खड़े दीन कुत्ते छेदामल के उस अहाते में रहते थे, जहाँ सूरज लड़कों के संग 'किरिया काँटा', 'आँती पाती' और 'गुप्प डाल', 'खन खन' के खेल खेलता था। उसने कई बार नज़दीक से सुना है, देखा है, जब वे बीमार कुत्ते जाड़े की धूप में वहाँ सो जाते तो उनके पेट से चो-चो की बड़ी तीखी आवाज़ आती थी। मधू बुआ ने बतलाया था—वह आवाज़ भूख की है। फिर सूरज या तो पिताजी से माँगकर या उनसे नज़र बचाकर स्वयं गद्दी के बक्स से रुपया लेकर बाज़ार जाता, ताज़ी पूरियाँ ख़रीदता और उन्हें तब तक खिलाता, जब

तक भूखी अंतड़ियों की वह आवाज़ बन्द न हो जाती।

आज छेदामल को उस रूप में रोटियाँ खिलाते हुए देखकर सूरज ने मन-ही-मन मे उसे अनेक गालियाँ दी। कई जोर से भी दी और घने कुहरे में छिपकर उसने अन्त में एक ऐसा सधा हुआ पत्थर छेदामल के हाथ मे मारा कि उसकी सारी शेष रोटियाँ जमीन पर गिर गई।

जबसे जाडा कम हुआ था, सुबह बहुत तडके अंधियारे ही मे ईशरी-मधू बुआ दोनो बस्ती के बाहर तक टहलने जाते थे, और सुबह के झुट-पुटे तक लौट आते थे, क्योंकि इस बस्ती मे कोई पुरुष अपनी पत्नी के सग इस तरह कही टहलने नहीं निकल सकता था। परम्परा ही नहीं थी।

कभी-कभी जैसे अपनी साध बनाने रूपाबहू भी ईशरी के सग घूमने जाती थी। पर जिस दिन जाती, उस दिन बस्ती के बाहर तक नही, अपने चौराहे से अगले चौराहे तक ही, बस।

कमल-जैसी खिली हुई बुआ के सग जब रूपाबहू ईशरी को देखती तब उसकी आँखे अनायास डबडबा आती। पता नही क्यो उसका मन भर आता। कुछ कण्ठ में, कुछ तालू मे बरस पडता, फिर मन-ही-मन वह अपने एक बीते हुए स्वप्न को स्मृति में बाँधती—उसके मन का एक ऐसा जीवन्त स्वप्न, जिसकी सुधि में वह अब भी झूम उठती थी, पर वह स्वप्न बिना जागे ही बीत गया था। उस स्वप्न को रूपाबहू कभी स्पर्श भी न कर सकी थी, बाँध भी न सकी थी, कि एकाएक वह स्वयं बीत गई, और स्वप्न स्मृति के पंख से अतीत मे उड गया—कही छिपकर खो जाने के लिए।

ईशरी और मधू बुआ को देखकर रूपाबहू को एक ऐसा अद्भुत आनन्द मिलता था कि वह चाहती थी, वह पवित्र जोड़ी सदा उसकी आँखो के सामने रहे, वह उनकी सेवा करे, और अपने स्नेहांचल से

उन्हे कहीं कभी दूर न जाने दे। फिर वह अपने में स्वप्नजाल बुनती कि 'मैं अपनी सीता बेटी की शादी किसी ऐसे पुरुष के संग करूँगी जिसके पास और कुछ न हो, केवल प्यार हो, शक्ति और श्रद्धा हो, बस वह सच्चा पुरुष हो, जैसे प्रकृति का वर होता है।

एक सुबह ईशरी मधू बुआ, रूपाबहू, सूरज और सीता को अपने संग लिये टहलने गया था। तब तक जाडे का रूप गुलाबी हो चला था। तब तक चेतराम के घर मे सुबह इस तरह टहलने-घूमने की जैसे परम्परा बन चुकी थी। पूरी बस्ती मे जगह-जगह के लोग फबतियाँ कसकर थक चुके थे, मन-भर बातें कर जी बुझा चुके थे।

सबको संग लिये ईशरी चौराहे से घर की ओर आ रहा था। सब हँसी और स्नेह-भरी बातो मे लगे थे, एकाएक ईशरी ने देखा कि आगे पीछे पुलिस है और सामने पुलिस-जीप खडी है। घर के सामने आया, दुकान पर देखा, कोतवाल साहब बैठे है। और जैसे ही सबके संग ईशरी तेजी से घर मे दरवाजे की ओर मुडा, वह देखते-ही-देखते पुलिस द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया।

ईशरी ने ज़रा भी विरोध न किया। उसे न आश्चर्य हुआ, न दुःख। वह निर्विकार रहा। पुलिस से उसने कोई प्रश्न तक नहीं किया। वारंट तक नही देखा।

पुलिस-हिरासत मे वह वही देहलीज मे खडा-खडा, अपनी मधू रानी, रूपाभाभी, मगूदादी, सीता गौरी तथा उसका दायाँ हाथ पकडे खडे हुए सूरज और सामने चेतराम—इन सबको अपलक देखता हुआ चुप था। सब इतने ठगे-से आश्चर्य में खडे थे कि जो वे देख रहे थे, उस पर उन्हे जैसे विश्वास नही हो रहा था। शायद तभी वे रो नहीं पा रहे थे।

सहसा ईशरी ने कहा, "तुम सब मुझे क्षमा करना, मैने तुम सबसे अपना यह सत्य छिपा लिया था कि पिछले दो वर्षों से सरकार मुझे अपना दुश्मन समझती है। मैं इस घर के प्रेम और श्रद्धा के प्रति कृतज्ञ

हूँ, परिपूर्ण हूँ।" फिर वहाँ सब-के-सब रो पडे—केवल मधूरानी को छोडकर, जो एक अजीब तपी हुई, विश्वस्त दृष्टि से, भरी-भरी, किवाड पकडे सामने बढ़ी पति की ओर ताक रही थी, जैसे आशीष दे रही हो।

ईशरी ने बढ़कर एकाएक अपनी मधूरानी के चरण छू लिए—मधू भागकर किवाड की ओट मे चली गई। आँचल मे तुलसी के फूल भरे वह तब निकली जब ईशरी रूपाभाभी, चेतराम और दादी के चरण छूकर दहलीज से बाहर जा रहा था। पीछे से उसने सारे फूलो को पति के सिर और कधो पर बरसा दिया।

सूरज इस सारे दृश्य मे हतप्रभ-सा रहा। उसे कुछ सूझता ही न था। वह कुछ सोच ही न सका। यन्त्रवत वह उस जीप के पीछे दौडा, जो ईशरी फूफा को लिये थाने की ओर भागी।

थाने के दरवाजे पर खडा-खडा दूर से पुलिस से आक्रान्त ईशरी फूफा को देख वह मानो सत्य को पकडने लगा। और जब वही पुलिस-जीप ईशरी फूफा को लिये स्टेशन की ओर चली, तब सूरज को सम्पूर्ण सत्य मिल गया। ईशरी फूफा के प्रति उसकी सारी दीनता शौर्य मे बदल गई। मन का सारा अनुताप उत्साह बन गया। मारे प्रसन्नता के वह उछलता हुआ अपने मुहल्ले मे आया, रम्मन, जगनू, हीरा, रजुआ और चन्दा को लिये वह दौडता हुआ चौक भागा; फूल के गजरे, माले लिये और वह सब को लिये स्टेशन भागा। प्लेटफार्म पर वह गाडी खडी थी, जिसके एक सीकचेदार डिब्बे मे पुलिस से रक्षित ईशरी फूफा बैठे थे।

सूरज और उसके पाँचों साथी अपने-अपने हाथ में फूल की मालाएँ और गजरे लिये चुपचाप उस डिब्बे के सामने खडे थे और कभी वे पुलिस की आँखो मे देखते और कभी ईशरी फूफा को। पुलिस बराबर डाँट रही थी, धमका रही थी कि वे सब वहाँ से हट जायँ, पर ईशरी फूफा बडी शक्ति से पुलिस से बाहर आ बच्चों की पुष्पाञ्जलि लेने के लिए सघर्ष कर रहे थे।

जब गाडी उनकी आँखो से ओझल होने लगी, तब एकाएक सूरज ने देखा सामने 'क्रासिग' के पास तार के खम्भे से लगी हुई मधू बुआ खडी है—चुप, नि स्पन्द, जैसे वह स्वय विदा बनकर वहाँ जम गई हो, और तार के खम्भे से कान लगाकर वह भागती हुई गाडी के स्वरो के बीच जैसे किसी की आवाज सुन रही हो—अब तुम घर जाओ ! मै फिर मिलूँगा ! तुम्हारी तपस्या मुझसे बडी है—बल्कि यूँ समझो मधूरानी, तुम्हारा ही तप मेरा बल है, मेरी प्रेरणा है ! मै हूँ, क्योकि तुम हो ! जाओ विदा, फिर मिलने के लिए विदा, बिछुडने के लिए नही ।

तीसरे दिन सुबह गद्दी पर आये हुए अग्रेजी-हिन्दी दोनो अखबारो मे प्रकाशित हुआ था—'बम्बई क्रान्तिकारी दल का वह प्रमुख कार्य-कर्त्ता गिरफ्तार किया गया, जिसकी पार्टी ने अनुमानत पिछले वर्ष 'फ्रन्टियर मेल' से सरकारी खजाना लूटा था ।'

१२

ईशरी जैसे पारस पत्थर था। रूपाबहू को स्पर्श कर गया। उसमे न जाने कैसी आँच थी, जो सबको प्रकाश दे गई ।

कई महीने बीत गए ।

एक दिन रूपाबहू ने अपना सारा घर-आँगन धो डाला। अपने कमरे को गोबर से लीपा, फिर मिट्टी से पोता और दोपहर होते-होते फिर पानी से धोकर कमरे मे गंगाजल छिडक लिया ।

खिडकी के पास अपने हाथों ईंटे सजाकर छोटी-सी चौकी बना ली। कीमती आसन बिछाकर उसने शिव-पार्वती, राम-सीता और विष्णु-लक्ष्मी की उन तीनो मूर्तियो को स्थापित किया, जो पिछले दिनों मुनीम जी द्वारा वृन्दावन से मँगाई थी ।

अनवरत चौबीस घण्टों तक घी का दीप जलता रहा। धूप और अगरबत्तियाँ सुलगती रहीं। विधि से आरती हुई, भोग लगे और मधू बुआ, सूरज, सीता और गौरी को लिये अखण्ड रामायण का पाठ हुआ।

एक रात वह मधू और सूरज को संग लिये चौक बाजार गई और शीशे के चौखटे मे जडी हुई कई धार्मिक तस्वीरें खरीद लाई और सबको पूजा की चौकी के आसपास, ऊपर-सामने टाँग दिया।

जिस नियम से सूरज ठाकुरद्वारे को आरती मे शामिल होता था, उसी नियम से वह माँ के भगवान् की पूजा में भी भाग लेने लगा था। लगता था, उसमे सहज धार्मिक श्रद्धा थी, प्रीति थी और सबसे ज़्यादा उसमे इस भाव का सत्य था कि ठाकुरद्वारा उसके घर के पिछ-वाडे है, सन्तोष के पिताजी उसके पुजारी हैं—जो उसे बेहद मानते हैं। सन्तोष का वहाँ घर है—सन्तोष जो काशीपुर मे अब पाँचवी कक्षा मे पढ़ती है, जो उसे बराबर ख़त भेजती है। और उधर दूसरा मन्दिर उसके ही घर मे है, जहाँ उसकी माँ पूजा करती है।

चेतराम धीरे-धीरे बस्ती की कई संस्थाओं और संगठनों का सदस्य हो चुका था। नगर कांग्रेस-कमेटी का सदस्य, और आर्य समाज का सहायक मन्त्री था। पिछले दिनो वह भारतीय वैश्य परिषद की भी सदस्यता मे आ गया था।

उन दिनो बस्ती में एक ओर आर्यसमाज और दूसरी ओर सनातन-धर्म के व्याख्यानों का बडा जोर था। नित्य नये-नये उत्सवो और समा-रोहों से बस्ती गूँजा करती थी। बाहर से बड़े-बडे विद्वान् वक्ता और प्रचार-मण्डलियाँ आया करती थीं। चेतराम सब मे चन्दा देता, सबका सदस्य बनता और जहाँ कहीं भी उसे ज़रा भी अवसर मिलता, वह बिना भाषण दिये न रहता। सभापति का आसन ग्रहण करने में तो वह

जैसे जी जाता, कोई चिन्ता नहीं, अगर कुछ खर्च भी करना पडे तो क्या ? बस्ती मे कोई किसी तरह का राजनीतिक भाषण, सास्कृतिक समारोह हो और किसी भी पार्टी का कोई लीडर आये, चेतराम बिना उसमें सम्मिलित हुए चैन नही लेता था। कहता था, वह भारत माता की सन्तति है और उसकी सम्पत्ति राष्ट्र का धन है।

लेकिन चेतराम के व्यवहार, भाषण अथवा अन्य कार्यों से कभी कोई पुलिस का एक सिपाही भी असन्तुष्ट नही होता था। वह पता नहीं कैसे सबसे कुछ-न-कुछ विश्वास पाता था।

पर बस्ती मे स्पष्टत उसके केवल तीन प्रतिद्वन्द्वी थे—चेयरमैन साहब चौधरी रामनाथ, और बडी कोठी वाले सैयामल तथा छिपे-छिपे चन्दनगुरु।

बीते हुए इलेक्शन का सबसे बडा घाव गुलज़ारीलाल के सीने मे हुआ था। और वह अब तक बढता जा रहा था। रुपये-पैसे से तो वह टूटा ही, उसकी मानसिक स्थिति मे एक ऐसी भयानक गाँठ पड गई, जिसने उसे शून्य और निष्क्रिय बना दिया। न वह अपनी गद्दी पर ही बैठता, न अपने व्यापार मे ही दिलचस्पी लेता। बस, इधर-उधर बैठकर दम-पर-दम बीडी पीता और खाँसता रहता। घर-गृहस्थी और व्यापार का सारा भार उसके बडे लडके नारायणदास, जिसकी उमर चौदह वर्ष से ज्यादा न थी, पर पड गया था।

चेतराम गुलजारीलाल को बेहद प्यार करने लगा था, नारायणदास को सारी सहायता देता था, और इस तरह इन दोनों घरों में परस्पर प्रीति बढ़ गई थी। नारायण दास और सूरज मे बहुत स्नेह था, और नारायणदास की बडी बहन नारायणी मधू बुआ और रूपाबहू की प्रीति में बँध गई थी।

चेतराम गुलज़ारीलाल के अन्तस् के दर्द को खूब समझता था। वह चाहता था कि गुलज़ारीलाल का घाव किसी तरह भर जाय। उसका धोखा खाया हुआ, टूटा हुआ व्यक्ति उसे नये सिरे से वापस मिल जाय।

छेदामल का अहाता अब बिलकुल सूना पड गया था। लडाई की खबरें आने लगी थीं, जिसका फल बस्ती के व्यापार पर इतना पड रहा था कि सारा व्यापार रुक-सा गया था। सारे भाव, सारी व्यवस्था जैसे किसी अपूर्व सत्य की प्रतीक्षा मे थम गई थी। गाँव के किसान अपने को बाँधकर जैसे बाट जोहने लगे थे। अब छेदामल के अहाते में बहुत ही कम गाडियाँ आती थी।

और वह बालकों की जो मडली थी उसका सरदार रम्मन भी था, और उससे भी बढकर जगनू।

रम्मन अब आठवीं क्लास मे था। पिछले दो वर्षों से वह लगातार फेल हो रहा था, और इस तरह अब सूरज उसकी कक्षा मे पहुँच गया था।

सूरज रम्मन को स्कूल में ढूँढता, कक्षा मे पूछता, पर पिछले कई हफ्तों से वह उसे मिला नही। छेदामल और बसता से पूछने पर तो पता लगता कि रम्मन स्कूल गया है—तब सूरज चुप रह जाता, लेकिन बाद में रम्मन का पता नहीं मिलता।

और जगनू अब स्टेशन पर जला हुआ कोयला बीनने लगा था। सुबह बहुत ही तडके सोने से जागकर उठ भागता—कंधे पर झोली लिये रामलखन पनवाडी की बन्द दूकान पर आता। जली-बुझी और पीकर फेंकी हुई बीडियो के टुकड़े उठा लेता और चोथमल हलवाई की भट्टी से एक बीडी सुलगाकर और उसी तरह एक बीडी की आग से दूसरी को सुलगाता और क्रम से पीता हुआ वह सीधे स्टेशन पहुँच जाता।

सयोग से जिस दिन उसकी झोली का पूरा बोझ दोपहर तक पूरा हो जाता, उस दिन उसके बडे भाग्य होते। लेकिन ऐसा बहुत कम होता, प्राय होता तो यह था कि कहीं तीसरे पहर उसकी झोली भर पाती थी।

स्टेशन पर कोयला बीनने और बेचने का काम कम-से-कम बस्ती

के पचास-साठ मजदूर घराने करते थे। इनमे तीन भाग औरतों का था—ढली हुई तीन-चार बच्चो की माताएँ। और एक भाग मे पाँच छ. वर्ष से लेकर दस-बारह वर्ष तक के लडके और लडकियाँ रहते थे। इनमे सबसे उत्तम कारोबार औरतों का था। दिन भर मे कम-से-कम दो बार कोयले बेच लेती थी। प्वाइंट मैन, चौकीदार, वाच एण्ड वार्ड वाला और क्रासिंग का जमादार, इन सब तक औरतो की पहुँच होती थी। उन्हे पता नही क्यो, बडी रियायत और छूट मिलती थी। तीन चार औरतें तो उनमे ऐसी भी होती, जो इंजिन के खलासियों और 'फायरमैन' तक से विशेष सुविधाएँ पाती थीं। उन्हे कोयला भी उम्दा मिलता था और खूब मिलता था—ढेर-के-ढेर, और ऊपर से उन्हे बीडियों के बडल भी मिलते थे।

इसलिए लडके और लडकियों का कारोबार बहुत मन्दा रहता था। और लडकियों से भी खराब लडको का काम था। वे चारो ओर से भगाए जाते थे, सबकी निगाहों मे वे चोर समझे जाते थे। लडकियो को तो केवल स्टेशन वालों की गालियाँ सहनी पडती थीं, पर लडकों पर गालियो के अलावा कभी-कभी मार भी पडती थी, कोयले समेत झोलियाँ छिन जाती थी।

लड़कों मे अव्वल दर्जे की बदमाशी भी चलती थी। हमेशा आपस मे लडते रहते थे, गालियों से तो उनकी जबान कभी खाली नही रहती थी।

और जगनू तो वहाँ लडकों का सरदार था। रोज़ नई-से-नई गालियाँ लाता, खेल-तमाशे करता और आपस मे नई-से-नई शरारते करता।

एक दिन तीसरे पहर, चौक मे हलवाई की एक दूकान पर सूरज की भेंट जगनू से हुई।

सूरज ने पूछा, "रम्मन कहाँ रहवा है जगनू! दीख नहीं पडता!"

जगनू ने छूटते ही उत्तर दिया, "साला हरम्मा हो गया है। चौक

की सराय मे घूमता है।"

"चौक की सराय ?"

"हाँ बे, वहीं जहाँ रंडियाँ रहती हैं।" जगनू ने बीडी के एक टुकडे से दूसरे टुकडे को दागते हुए कहा, "क्यों, अब तक तूने सराय नही देखी ? आय-हाय ! 'छल्ला दे दे निशानी, तेरी मेहरबानी'।" यह कहते-कहते जगनू बीच बाजार मे नाच पडा। सूरज के कन्धे पर हाथ रखकर बडे अन्दाज़ से बोला, "वह तो ऐसी गली है राजा, कि मार कटारी मर जाना।"

सूरज चुपचाप हँसता हुआ जगनू की सारी अदाएँ खडा देखता रहा।

एकाएक जगनू उसके कान मे मुँह गडाकर बडे रहस्य से बोला, "राजा ! आज शाम को वहाँ चलेगे ! क्यों मालिक, पक्की रही न ?"

"क्या वह कोई बुरी जगह है ?" सूरज को जिज्ञासा हुई।

"अबे ! अंगूर की दूकानें है वहाँ, बडे-बडे लोग पहुँचते है," जगनू ने स्वर दबाकर कहा, "बडे-बडे पेट वाले। साला चन्दनगुरू भी वहाँ जाता है !"

और शाम को, रोशनी जलने के बाद जगनू बडे ठाट से मुँह मे दो बीडे पान डाले, और ऊपर से एक सिगरेट सुलगाए सराय के एक कोने से दूसरे कोने तक सूरज का दायाँ हाथ पकडे उसे टहलाता-घुमाता रहा। और नीचे-ऊपर, अगल-बगल चारों ओर उसे दिखाता हुआ अजीब-अजीब तरह से मुँह बनाता रहा।

सब घूमने-घुमाने के बाद जब जगनू सूरज को लिये गली से चौक की ओर मुडने लगा, तब धीरे-से बोला, "राजा, किसीसे कहियो मत, नहीं तो सिर पै जूते भी पडेगे और बदनाम भी हो जाओगे।"

सूरज के पैकेट से नया सिगरेट जलाकर वह बोला, "जगनू बादशाह का कोई क्या कर लेगा ! ख़ुद कोयले का रोज़गार करता हूँ, किसीके बाप की कमाई थोडे खाता हूँ, चाहे जो करूँ, कोई परवाह

नही। जब मेरा बाबू मुझे मारता है, तो बेटे को मै इतनी गालियाँ सुनाता हू कि मुहल्ले वाले भी चूँ बोल जाते हैं।"

सूरज चुप उदास था। उसके मुख से लग रहा था जैसे वह कही से बुरी तरह पिटकर आया है और वह रो देगा।

जब वह इतनी बुरी जगह थी, तब तू मुझे क्यो वहाँ ले गया?" सूरज के स्वर मे जैसे डर समा गया था।

"जगह बुरी नही होती, अपनी-अपनी नीयत होती है।" जगनू ने यह कहकर मुँह में उँगली डालकर एक जोर की सीटी दी। सामने से रम्मन मुडा चला आ रहा था।

फिर सूरज वहाँ से भाग खडा हुआ।

ठाकुरद्वारे मे आरती हो चुकी थी। माँ ने भी अपने भगवान् की पूजा समाप्त कर ली थी।

उसका मन फूल रहा था। वह बेहद चाहता था कि वह किसीसे बात करे। किसी ऐसे व्यक्ति से वह अपने अनेक उठते हुए प्रश्नों को पूछे जो उसे सही-सही उत्तर दे सके और सारी बात अपने मन मे ही रखकर पचा ले—किसी अन्य से न बताए कि ये प्रश्न, ये बाते सूरज की हैं।

लेकिन जगनू की चमकती हुई आँख उसे बार-बार डरा जाती थी कि 'किसी से कहियो मत! नहीं तो सिर पै जूते भी पड़ेंगे और बदनाम भी हो जाओगे!'

ऐसी भी क्या बात? क्या क़सूर किया है सूरज ने? बदनामी किसे कहते हैं? क्यो कोई उसे मारेगा?

तो शायद वह जगह बहुत बुरी है!

रात को सूरज के मन मे रह-रहकर आता कि वह अकेला उस गली में जाकर घूमे। जो जगनू बताता है, उसे जाकर स्वयं देखे।

एक बार उसके जी मे आया कि वह सन्तोष को खत लिखे। उससे सारी बातें कह दे, उसे सब प्रश्न लिख भेजे।

अगले दिन वह सन्तोष को पत्र लिखने बैठा, पर उससे कुछ लिखते ही न बनता था। वह जो चाहता था, सोचता था और जो उसके मन मे उमड-घुमड रहा था, वह जैसे लिखा ही नही जा सकता था, किसी-से बताया तक नही जा सकता था। उसकी अभिव्यक्ति के लिए कोई साधन नही है।

और अगले दिन रम्मन स्वय उसे ढूँढता ढूँढता स्कूल मे जा मिला। उसे स्कूल से भगाकर कम्पनी बाग मे ले गया, और तरह-तरह की बाते बताता रहा। ऐसी-ऐसी बाते करता रहा, जिस पर कोई विश्वास नही कर सकता।

पर सूरज विश्वास करता था। और रम्मन की बातो मे उसे प्रच्छन्न रूप से रस भी मिल रहा था।

रम्मन किस तरह से छेदामल की गाँठ से रुपये ले लेता है, किस तरह गल्ले मे से झाड देता है, किस तरह अनाज बेच लेता है, किस तरह रूठकर बसन्ता से रुपये लेता है, और किस तरह वह एक दिन बसन्ता की माँ की दो सोने की चूडियाँ चुराकर उसी गली मे भेट कर आया था—इस पूरे ब्यौरे को वह सूरज से बताता रहा।

कम्पनी बाग से चलते समय रम्मन ने सूरज का हाथ पकडकर धीरे से कहा, "बस, केवल दस रुपयो का ख़र्चा है प्यारे! आज चलो मेरे संग, मजा आ जायगा। पतली कमर बल खाय गई हाय दइया ऊई!"

सूरज चुप था। रम्मन की बाहे फडक रही थीं। बार-बार वह दस रुपये की बात अनेक आकर्षक ढंग से दुहराता रहा, जैसे यही वह बात मूल बात थी, जिसे कहने के लिए वह सूरज को क्लास से भगाकर कम्पनी बाग में ले आया था, और उसकी अन्य बाते केवल एक मजबूत भूमिका-मात्र थीं।

स्कूल के फाटक पर पहुँचकर सूरज ने उत्तर दिया, "मै ऐसी गदी जगह नहीं जाऊँगा। वह बुरी जगह है, और मै अच्छा लडका हूँ। मेरी

बुआ है माँ है, फूफा है और सन्तोष है !'

यह कहता हुआ वह भागकर क्लास मे चला गया, लिखने लगा, पढने लगा, पर जी उसका जैसे वही फाटक पर था। वह बार-बार क्लास से निकलकर बहुत चुपके-से बाहर फाटक पर देखता—रम्मन कहाँ है ? कहाँ चला गया ? हाय वह कहाँ चला गया ? रूठ तो नहीं गया !

उसी रात सूरज राजू पण्डित से दस रुपये का नोट लेकर रम्मन के घर आया। रम्मन था ही नही। फिर वह चौक मे आया। वहाँ मिला रम्मन उसे।

"चलते हो ?" रम्मन ने एक तीव्र आवेग से सूरज के दोनों हाथों को बाँध लिया, और ललचाई हुई दृष्टि मे उसे देखने लगा।

सूरज ने रम्मन के हाथ मे वह दस रुपये का नोट देते हुए कहा, "लो ! तुम जाओ ! मै नही जाऊँगा ऐसी जगह ! तुम जाओ, मै नहीं जाऊँगा ! मै नही जाऊँगा !"

रम्मन मुस्कराता हुआ चला गया, सूरज खडा देखता रहा, पहले वह धीरे-धीरे गया है, फिर कितनी तेज़ी से वह उस गली मे मुडा है।

सूरज को जैसे पता नहीं, पर वह भी छिपे छिपे रम्मन के पीछे चलता गया—बढता गया।

गली जहाँ मुडती थी, जहाँ तीन-चार बीमार कुत्ते शरीर मे मुँह छिपाकर बैठे थे, जहाँ म्युनिसिपेलिटी का एक बहुत धीमा-धीमा लालटेन जल रहा था, वहाँ से जरा हटकर दीवार के सहारे गन्दी नाली मे खडा हो गया और वही से देखने लगा। रम्मन सामने के एक कोठे पर चढ़ रहा था। बारजे पर पहुँचकर उसने कोई आवाज दी। दरवाजा खुला, और वह तेजी से भीतर चला गया।

सूरज का पूरा शरीर काँपने लगा। फिर भी वह तेजी से आगे बढा। जीने के पास पहुँचकर उसका दायाँ पैर उस गदे कूडे मे चला गया, जिसमे हड्डियाँ थी, शीशे के टुकड़े थे, टूटी हुई बोतलें थी, कुल्हड

थे, दोने और चीथडे थे।

वह काँपता हुआ, बहुत सँभल-सँभलकर, बहुत धीरे-धीरे ऊपर गया। बारजे मे लकड़ी का एक पाया पकडे वह खडा हो गया। और उसका जी हो आया कि वह चीख़कर रोये।

फिर दम बाँधकर वह बन्द दरवाज़े से चिपककर खडा हो गया। एक जगह किवाड की दरार से वह भीतर देखने लगा—बेहद गन्दा, अस्त-व्यस्त-सा कमरा है। एक किनारे लालटेन की पीली-पीली रोशनी हो रही है। फर्श पर शायद फटी-सी दरी बिछी है, या केवल एक मट-मैली, अनेक दागों वाली कोई साडी बिछी है। दीवारे कच्ची है, और जगह-जगह उन पर पान की पीकें फैली है, खटमल मारे गए हैं।

सूरज की तीव्र इच्छा हो रही थी कि वह उस बन्द कमरे को भर-पूर देखे। दरवाज़े से ऊपर दाईं ओर एक छोटी-सी लकडी की खिडकी थी। सूरज बारजे पर पाँव टिकाकर खिडकी को पकडकर खडा हो गया—फिर पूरा सत्य उसके सामने था। ऐसा सत्य, जो उसे आरपार बेध गया। उसके सामने क्षण-भर के लिए अँधेरा फैल गया और उसमे चिनगारियाँ उठने लगी। उसका सारा अस्तित्व ही जैसे काँप गया, और वह वहीं बारजे में बेहोश-सा गिर पडा। गिरते ही उसे लगा, जैसे वह चोर है, उसे पुलिस पकडने आ रही है, उसकी दाईं गाँठ फूट गई थी, फिर भी वह तेजी से लडखडाता हुआ ज़ीने से नीचे उतर गया। गली से बेतहाशा भागा। मुड-मुडकर पीछे देखता हुआ भागता जा रहा था—भागता जा रहा था, जैसे पुलिस के साथ वे सारे बीमार और घिनौने कुत्ते उसका पीछा कर रहे हैं।

एकाएक गली के अन्त पर वह किसी आदमी से टकरा गया, और मुँह के बल वही गिर पडा।

जिससे टकराकर वह गिरा था, वह आदमी एक क्षण वहाँ रुककर फिर आगे बढ गया, जैसे सूरज को देखा तक नही।

सूरज मे कुछ दीप्त हो आया। वह घायल सिह-शावक की भाँति

झपटकर पीछे से उस आदमी पर टूट पड़ा। वह आदमी राजू पण्डित था, जिसे देखकर सूरज एक अजीब भयावह डर से चीख़ पड़ा—"मैं नहीं! मैं नहीं! मैं नहीं! मैं कभी नहीं!"

अपने घर आकर सूरज एकान्त कमरे में छिप गया। चूर-चूर होकर वहीं फर्श पर लेट गया। गाँठ का ख़ून पता नहीं कब कैसे जमकर रुक गया था।

अधिक रात बीते, नींद की बेहोशी में जब उसके मुँह से फिर वही चीख़ निकली 'मैं नहीं! मैं नहीं!' तब पूरे घर को सूरज के अस्तित्व का पता लगा।

मधू बुआ उसे गोद में भरकर अपने कमरे में उठा ले आई। उसकी दशा देखकर उसे रोना आ गया।

चेतराम आज सुबह से गद्दी पर जमा बैठा था। क्षण-क्षण पर इधर-उधर से न जाने क्यों लगातार फोन आ रहे थे। कई तार भी आये थे। दिल्ली से गोरेमल ने अकेले चार बार 'ट्रङ्क कॉल' किया था। तीन तार आ चुके थे। उसने दिल्ली से आज्ञा दे रखी थी कि चेतराम फ़ोन के पास से हट नहीं सकता।

घर से चेतराम को बुलाने के लिए रूपाबहू ने कई बार सीता को भेजा। मंगूदादी पर यद्यपि दमा का दौरा पड़ रहा था, फिर भी वह चेतराम के पास यह कहने आई थी कि सूरज की तबियत ख़राब है। रूपाबहू स्वयं उसे बुलाने के लिए गद्दी तक आई थी, पर चेतराम पर जैसे कोई और ही बेहोशी थी।

सूरज के साथ पलंग पर जैसे ही मधू बुआ सोई, वह एकाएक उठ गया, "मैं किसी के संग नहीं सोऊँगा! नहीं, कभी नहीं!"

सुबह हुई, रात बीतने पर जो सुबह होती है।

पर सुबह तो हुई, लेकिन वह सुबह अपने संग एक अजीब काली

रात ले आई। उस दिन के अखबारो मे, रात के टेलीफोनों मे, तार के लिफाफो मे भरकर वह रात आई— लडाई छिडने की रात।

जो जहाँ जितना ही फैला था, जितना ही ढीला पडा था, वह वहाँ उतना ही सिकुडकर बँध गया, उतना ही वह कस गया।

हर चीज, हर वस्तु, प्रत्येक जड-चेतन—यहाँ तक कि बस्ती का एक-एक कण किसी अपूर्व सत्य से छू गया और छूकर एकदम बदलने लगा, बेहद तेज दौडा—सीधा नीचे से ऊपर, नली मे ताप पाकर ऊपर भागते हुए पारे की तरह।

जो बाहर था, वह भीतर चला जाने लगा और जो भीतर था, उसे अन्धकार मे छोड दिया गया। सारा मूल्य बदला। बदलने लगा—यूँ ही अपने-आप। क्योंकि मूल्य का किसी ने भाव ही नही पूछा, और सारा माल, समस्त सत्य अपने-आप ही बिकने लगा।

दूसरा भाग

छोटा रुपया

१

जिस नुक्कड पर पहले लडके छेदामल के अहाते से गोबर बीन-बीनकर उसकी बडी-बडी ढेरियाँ लगाते थे, अब वहाँ गिमतीनुमा एक दुकान चालू हुई थी—पान बीडी सिगरेट, दूध और चाय की, और उसका नाम था 'आजाद रेस्टॉरेन्ट'।

जो गली चौक के तिराहे से दाई ओर घूमकर सर्राफे की ओर गई थी, उसमे पचास-एक क़दम आगे चलकर जहाँ से लोहे वाली गली मुडती थी, उस पर जो हरिकीर्तन वाला घर था, अब उसमे एक भोजनालय खुल गया था, नाम पडा था 'वृन्दावनलाल व श्रीकृष्ण भोजनालय'।

और चौक में पनवाडियो से आगे जहाँ खोचेवाले बैठते थे, मशहूर गजकवाली दुकान के सामने, वहाँ जो पाटनवाले मारवाडी के दो पौसले चलते थे अब उस जगह एक दोमज़िला मकान खडा हो गया था और उसमे एक होटल खुला था—नीचे भोजन, ऊपर विश्राम, नाम था उसका 'राष्ट्रीय होटल'।

बडे दरवाज़े से आगे चलकर हनुमान वाटिका के पास रामलीला का जो छोटा-सा मैदान था, वहाँ अब 'राबर्ट्स कम्पनी' की एक फैक्टरी खुल गई थी। उसमे तीन चीज़ो का व्यापार होने लगा था—कपास की तैयारी, अलसी-तेलहन की पिराई और बर्फ का काम।

स्टेशन की ओर, राईसत्ती के दाएँ जो पूरब-पश्चिम फैला हुआ मैदान था वह पूरी जगह अब एक पक्की चहारदीवारी से घिर गई थी।

अब उसमे एक कारखाना खुल गया था, जिसे बस्ती के लोग 'साहब का पेच' कहते थे। उसमे खाँड और शीरे का काम होता था।

स्टेशन के मालगोदाम और मार्टिन कम्पनी के बिजलीघर के बीच जहाँ धीवरो के चार-छ फूस के घर थे, वहाँ अब टिन का एक लम्बा-चौडा गोदाम बन गया था, जिसका मालिक था 'रैली ब्रदर्स' मिलिटरी राशन कान्ट्रैक्टर, जो वहाँ से पूर्वी मोरचे पर राशन सप्लाई करता था।

म्युनिसिपल बोर्ड के पीछे जो सनातन धर्म की बिल्डिग बनी थी, जिसमे एक ओर लाइब्रेरी, और दूसरी ओर जहाँ अनेक महात्माओ और विद्वानों के भाषण हुआ करते थे—उस समूचे भाग मे अब राशनिग दफ्तर खुल गया था।

बस्ती के अन्दर दो पुलिस चौकियाँ भी कायम हो गई थी। एक चौकी थी सैयामल और चन्दनगुरु के घरों के बीच, और दूसरी थी ठीक घण्टाघर के पीछे जहाँ सब महातान्त्रिक पंडित बमशंकरजी ज्योतिषी लाहौर से आ बसे थे।

लेकिन ये विकास और परिवर्तन बस्ती के व्यक्तित्व को जैसे कहीं से भी नही छू सके थे, क्योंकि वे सब बाह्य थे, महज़ विकास थे।

पर जिस भयानक सत्य ने बस्ती के मूल व्यक्तित्व को छूकर, इस तरह छूकर कि उसकी दसों उँगलियो से बस्ती के शरीर पर अनेक काले-काले दाग, धब्बे और निशान पडे, बस्ती के मन का हर रेशा जिससे उलझ गया, जिसने बस्ती की समूची शाश्वत गति को ही मोड दे दिया, जो सबके मूल मे घुन की तरह पैठ गया, जो कही छिपे-छिपे बस्ती के प्राणों मे उन पर्तों को उभारता चला, जो अशुभ थे, निन्द्य थे, बेहद घिनौने और अपावन थे, जिन्हे अब तक किसी ने न देखा था, किसी ने न सुना था, न जिनकी कभी किसी ने कल्पना ही की थी, न किसी ने जिन्हे चाहा ही था, वह सत्य था महायुद्ध से प्राप्त राशनिग और कंट्रोल। हालाँकि उस बस्ती मे खाद्य सामग्री की राशनिग नही लागू हो सकती थी फिर भी राशनिग की व्यापक आत्मा वहाँ कुँडली मार-

कर बैठी थी ।

तभी बस्ती बदल गई ।

ऐसी बदली कि जैसे उससे उसका मूल ही छूट गया ।

अब बस्ती की सडको पर किसानो की वे बैलगाडियाँ नहीं दीख पडतीं जो गुड, गेहूँ, जौ, चना, खाँड, अरहर, तेलहन, मटर से भरी-लदी आती थी । इनका दिन-रात जैसे ताँता ही नही टूटता था, लगता था अन्नपूर्णा माँ की बाँहे है जो आजानु है, असीम हैं, अथक और गरिमामयी है ।

अपेक्षाकृत अब बस्ती की पक्की चौरस सडके बैलगाडियों और ठेलो से सुनसान थीं, जैसे किसी मोड पर किसी निरंकुश शक्ति ने सारी यातायात ही रोक दी हो । छेदामल का अहाता, चेतराम का अगवारा, सैयामल का द्वार, गुलजारीलाल की बारादरी, छीतरमल, गिरधारीलाल और दयाराम जैसे कच्चे आढतियों के बरामदे और गोदाम अपने पुराने रूप मे वीरान हो गए थे, लेकिन नये अर्थ में बेहद आबाद थे, किसी को दम मारने की भी फुरसत न थी ।

जिन गली-पिछवाडो, सडकों और दूकान-दूकान के बरामदो और बैठकों मे दलालो का व्यस्त ताँता लगा चलता था अब वह पहले अर्थ में थम गया था, लेकिन नये अर्थ मे दलालो की तेजी, जीवन की व्यस्तता बेहद बढ गई थी, रामजुहारी करने की फुरसत नही थी ।

इस तरह बाँध तोडकर जीवन फूटा था, कही सीमा छोडकर बह भी रहा था, क्योकि व्यापार कही बँधता नही, उसकी धुरी में गोल-गोल पहियेदार रुपये जो बँधे है । लोग दिन-रात जागने लगे । पर जागकर भी लोग कभी शोर नहीं करते थे, आपस मे बोलते नही थे । ऐसा लगता था कि लोग थकी नीद मे सोये हुए हैं, और जैसे उसी अवस्था में बस्ती का व्यापार चलता था—संकेतो की भाषा में, गूँगो की बोली में, आँखों और उंगलियों के इशारों के बीच व्यापार की कठपुतली नाचती थी और इस तरह नाचती थी कि न रुपयो के घुँघरू बजते थे

न साजिन्दो की गत सुनाई पडती थी।

एक के पाँच!

एक के दस!

एक के बीस, और बीस के असख्य असीम!

मिट्टी-सोना एक भाव! गधे-घोडे एक भाव! एक लगाओ बीस पाओ! तरकीब लगाओ राज पाओ!

खूब बोल थे उस सगीत के। बस्ती के व्यापारी, आढतिये और महाजन बेहद प्रसन्न थे। सदा उनके मुँह मे पानी भरा रहता था। कहते थे क्या शानदार जमाना आया है! क्या बाप-दादों ने कमाई की होगी, एक-एक पैसे के लिए मरते थे, कजूसी करते थे, पेट काटते थे, तब कही चार पैसे देखते थे। अजी, अब तो एक ही रात मे लखपती हो जाओ! धन्य है जमाना, वाह रे अग्रेज बहादुर! तुम सदा बसो इस देश मे! अजी, का पूछे हो! व्यापार के लिए महायुद्ध चाहिए, अकाल चाहिए, कट्रोल चाहिए और रात चाहिए! न पूँजी की जरूरत, न कोई मूलधन पूछने वाला, न भाव की जरूरत, न कोई मूल्य पूछने वाला, अब भी जो अपना घर रुपयों से न भर ले वह क्या आदमी!

हनुमानगढी, ठाकुरद्वारे, भैरो बाबा, जोगियानाथ और सती अखाडे के बाघम्बरी बाबा के शिवाले अब रात को भी बन्द नही होते थे। लगातार लोग एक-दूसरे से अपने को छिपाकर पूजने आते थे, देवताओं से लेने आते थे, उनसे स्तुतियाँ करते थे—'परमिट' की 'लाइसेस' की, उन्हे कोई देख न सके, कोई पकड न सके इसकी प्रार्थना। उनकी घूस स्टेशन मास्टर स्वीकार कर ले, माल बाबू माल ले, एस० एम० आई, एस० ओ, डी० एम० और इनसे भी ऊपर के लोग उनकी डालियो को कबूल कर ले, उन देवालयों और गढ़ी-अखाडो मे इन्ही बातो की पूजा होने लगी।

फरवरी के प्रारम्भिक दिन थे, तीसरे पहर का समय। छेदामल के अहाते मे खडा चन्दनगुरु अपने कबूतरों के झुंड को दाना चुगा रहा था, और आसमान मे उसके चार सफेद कबूतर सूरज के चार काले कबूतरों के सग गिरहबाजी कर रहे थे।

सूरज अपने घर की छत पर खडा था और उसके शेष कबूतर छत की बरसाती मे बने कबूतरख़ाने मे बन्द हो चुके थे। पिछले दो दिनों से चन्दनगुरु के कबूतर सूरज के कबूतरो की गिरहबाज़ी की होड मे हार रहे थे। आज की होड को बहुत से लोग अपने-अपने दरवाज़े, चबूतरे और छतों-कोठों से देख रहे थे।

सरजू सुनार के पिछवाडे कच्ची नाली की मोरी पर रखे हुए पत्थर पर, तहमद बाँधे और कसी बनियाइन पहने जगनू बैठा था। उसके संग ताले, रजुआ, बिपिन और पहलाद भी थे। सबके हाथ मे सिगरेटें थीं। वे कभी आसमान मे कबूतरो को देखते, कभी आपस मे बातें करने लगते, और कभी अपनी हँसी में इस तरह मस्त हो जाते कि लोट-लोट हो जाते।

जगनू ने कहा, "अबे रजुआ, तूने नही सुना! सैयामल मुझसे कहता था अगर तू जगनू मेरा एक काम कर दे तो मैं तुझे एक जोडा धोती इनाम दूँ।"

"एक जोडा धोती!" सब आश्चर्य में रह गए। रजुआ ने पूछा, "अबे सैयामल से कह दे, वह काम मै कर दूँगा। एक जोडा धोती के लिए दुनिया का कोई काम किया जा सकता है बे।"

ताले, बिपिन और पहलाद तीनों ने कहना शुरू किया, "और क्या, देखते नही, सरकारी दुकान पर दो-दो गज़ कपडे के लिए कितनी भीड जमा रहती है। और पुराने चेयरमैन चौधरी रामनाथ की दुकान पर एक-एक जनानी धोती के लिए।" तीनों ने अपनी-अपनी जबान दाँत तले दबा ली। जगनू ने बडे जोर से थूका, फिर बोला, "और वह रम्मनवाँ, जो अब लाला हो गया है, छेदामल को उल्लू बनाने के

लिए जो गद्दी पर बैठने लगा है, वह एक-एक बोतल मिट्टी के तेल के लिए क्या करता है ? सब सालो के कीडे पडेंगे ।"

"छोड बे इन बातो को !" रजुआ ने कहा, "कबूतरो की गिरह-बाजी तो देख ! मुझे ऐसा लगता है कि आज चन्दनगुरु जीत जायगा ! सुना है, पोस्ता, दालचीनी और घी मे तलकर लहसुन खिलाता है अपने उन सफेद कबूतरो को !"

"हट बे !" जगनू ने कहा, "अपना राजा सूरज जीतेगा । देख लेना, उसके कबूतरो के डैनों मे अफीम का पानी चढाया है मैने । गलो में तावीजें बँधी है माल्रिक !"

उसी बीच रजुआ ने पूछा, "तो सैयामल किस काम के लिए कह रहा था, बताता क्यो नही ?"

"वा हरम्मा जे कह रहा था कि तुम मुझे यह पता लगाकर दो कि चेतराम के किस गोदाम मे अब भी गेहूँ भरा है ।"

"तो जे कउन बडी बात है बे ?" रजुआ ने कहा । "बता दे कही उत्तर-दक्खिन अबे, एक जोड़ा धोती के मतलब हैं तीस रुपये ! कौन पहनता है आजकल धोती । बडे-बडे लाला के शहज्जादे घुटन्ना पहनने लगे । लाला लोग भी पैजामा पहनने लगे !"

जगनू ने बीच ही मे कहा, "अबे, अपुन को देख न, अठारह साल का मोछ-मुडक जवान हूँ और मेहरिया की फटी धोती दुहरकर तहबन्द बाँधे बैठा हूँ । लेकिन सैयामल की धोती पर धार मारने नही जाऊँगा । बडा भारी घाघ है । लाला चेतराम की बढती देखकर बौखला गया है, किसी तरह लाला को पकडवाने का दाँव ढूँढ रहा है ।"

उसी समय सरजू सुनार के पिछवाडे की खिडकी खुली और हीरालाल दिखाई पडा । उसने नये सिरे से सबको सिगरेट पिलाई ।

जगनू ने शरारत से पूछा, "क्यों भाई मीडियम लाल, सुना है आजकल राजू पण्डित के यहाँ बडा आना-जाना है ।"

"अरे कस्तूरी जो वहाँ है !" ताले ने कहा ।

"क्या बात कही है !" विपिन ने आँख मार दी।

जगनू ने पूछा, "क्यों हीरालाल, राजू पण्डित तुम्हे अब भी आत्मा बुलाने के खेल का मीडियम बनाता है न !"

"बनाता तो है, पर बहुत कम, जब कोई नही मिलता, क्योंकि अब मुझपै आत्माएँ नही आतीं। मेरी उमर ज्यादा हो गई है, मीडियम के लिए बारह साल से नीचे का ही बालक होना चाहिए !" हीरालाल बताने लगा, "और जब से काशीपुर से सन्तोष आई है, तब से राजू पण्डित अपने घर मे यह आत्मा बुलाने का काम नही करता। बडा रोब है बेटी का बाप पर !"

"अरे लायक बेटी जो निकली," ताले कहने लगा। "धमूं पण्डित के खानदान मे अब तक किसी ने हिन्दी मिडिल तो पास नही किया था, चलो बेटा न सही बेटी ने ही कुल उजागर किया।"

"हिन्दी मिडिल ही नहीं," हीरालाल ने तपाक से कहा, "सुना है एक दर्जा सस्कृत और एक दर्जा अँग्रेज़ी भी। मैने किताबें देखी है, आठवी क्लास की अँग्रेज़ी-किताबे हैं उसके पास। और कैसी निखरी है वह, जैसे चन्द्रमा की फाँक !"

विपिन और पहलाद दोनो एकाएक बिगड उठे, "अबे, क्या बात उठा ली सिर पै खामखाह ! देखो न, कबूतर कहाँ चले गए, कही आसमान में तो दिखाई नहीं पड रहे हैं !"

सब उठकर चौकन्ने से इधर-उधर देखने लगे, गली से सड़क पर चले आये, घण्टाघर के नीचे खडे होकर देखने लगे, आसमान में कबूतर लापता थे। फिर वे गोपालन गेट से चेतराम की छत पर सूरज को देखने लगे, सूरज भी वहाँ से लापता था। फिर वे सब-के-सब छेदामल के अहाते मे आये। वहाँ देखा, लोगो की भीड लगी है।

अहाते के एक किनारे चन्दनगुरु के सारे कबूतर अब भी सरसों के दाने चुग रहे थे। चन्दनगुरु बडे आवेश मे सूरज से बोल रहा था। सूरज विजय की मुस्कान मे आकाश की ओर देख रहा था। उसके

कबूतर अब भी बहुत गहरे आसमान में उड रहे थे। चन्दनगुरु के चारो हारे हुए कबूतर सामने के छज्जे पर थके बैठे थे। चन्दनगुरु उन्हे फुँझला-फुँझलाकर अपने पास बुला रहा था, लेकिन पता नही क्यो, वे कबूतर मालिक के पास नहीं आ रहे थे, जैसे वे अपनी पराजय से डर रहे थे।

जगनू, रजुआ, ताले आदि को देखते ही सूरज खिलखिलाकर हँस पडा। उसी समय सामने के छज्जे से उडकर चन्दनगुरु के चारों कबूतर अहाते मे उतरे और कबूतरो मे मिल गए। चन्दनगुरु ने बढ़कर उनमे से एक कबूतर को पकड लिया और न जाने किसे बडी भद्दी-भद्दी गालियाँ देता हुआ अपनी मुट्ठी मे उस कबूतर को इस तरह भींचने लगा कि चीं-चीं के आर्त स्वर से वहाँ का वातावरण करुण हो गया और एकाएक लोगो ने देखा चन्दनगुरु ने उस कबूतर को इतनी शक्ति से ज़मीन पर दे मारा कि उसके सफेद-सफेद दूध से धुले जैसे पंख उसी क्षण हवा मे बिखर गए। चन्दनगुरु उसी आवेश मे दूसरे कबूतर की ओर झपटा। सूरज दौडकर सामने तन गया और उसका विरोध करने लगा। चन्दनगुरु उबल गया था, विवेकशून्य उसने अपने क्रोध को सूरज ही पर उतार दिया। ऐसा चपेटा उसने सूरज को दिया कि वह लडखडाकर चारों शाने चित्त जमीन पर गिर पडा। अहाते के सारे कबूतर उड गए और अहाते की सारी भीड हतप्रभ रह गई।

ज़मीन से उठते-उठते सूरज ने ऐसी दृष्टि से चन्दनगुरु को देखा कि उसका अर्थ सब समझ गए। सूरज के सारे साथी जगनू, रजुआ, ताले, पहलाद, विपिन और हीरा चन्दनगुरु पर पिल पडे और जमकर मार होने लगी। पर वहाँ के उपस्थित लोगों ने बीच मे पडकर उसको पूरा होने से रोक लिया जो वहाँ एकाएक विकास पा गया था।

लेकिन करीब-करीब चोट सबको लग गई, चन्दनगुरु की खूब मरम्मत हुई और उसके मुँह पर कई जगह नाखूनों के घाव हो गए। मुख्यत: सूरज, जगनू और रजुआ पर चन्दनगुरु के कई तमाचे और

घूँसे लग गए।

लेकिन सूरज का सीना फिर भी तना रहा, उसके सारे मित्र तब भी खिलखिलाकर हँस रहे थे, क्योंकि मूलत विजयी वे थे। चन्दनगुरु भद्दी-भद्दी गालियाँ बकता हुआ अहाते से बाहर चला गया।

शाम होते-होते एक अजीब गुल खिला, चन्दनगुरु को जीते जलाने के लिए एक समा बाँधा गया। हरे बाँस की एक छोटी-सी अर्थी सजाई गई। चन्दनगुरु के मरे हुए कबूतर को कफन देकर उसे अर्थी पर रखा गया और रजुआ, जगनू, ताले और पहलाद के चार कन्धो पर वह अर्थी श्मशान की ओर बढी। पीछे-पीछे सूरज, हीरा, रम्मन, किशन, विपिन, चन्दर और पचीसों अन्य हम-उमर एक सग चले। अर्थी छेदामल के अहाते से उठाई गई थी और पीछे-पीछे ये नारे बुलन्द किये जाने लगे, "चन्दनगुरु हाय-हाय! चन्दनगुरु मुरदाबाद!

सूरज इण्टर प्रथम वर्ष में था। स्वभावत वह इस वर्ष इण्टर फाइनल की परीक्षा में पहुँचा होता, लेकिन पिछले वर्ष राष्ट्रीय क्रान्ति की लहर मे वह अपने कालेज की ओर से एक विशेष आन्दोलन में अग्रणी होने के कारण गिरफ्तार कर लिया गया था और मुरादाबाद जेल मे वह चार महीने की कडी सज़ा भी भुगत आया था। उसी सिलसिले मे एक दूसरी सज़ा का गहरा चिह्न उसकी दाईं बाँह में अब भी तरो-ताजा था।

पिछले वर्ष ईशरी और सूरज के कारण चेतराम ने बस्ती के पुलिस आफ़िसर को एक लम्बी रक़म घूस मे दी थी और अपने नाम तथा फ़र्म को सरकार की नज़रों में बहुत ऊँचा रखने के लिए उसने एकमुश्त ढाई हज़ार की थैली कलेक्टर को 'वारफण्ड' मे दी थी। इसके फल-स्वरूप चेतराम को एक निश्चित कोटे में सीमेंट बेचने का परमिट मिला था, और उसी की सिफ़ारिश से लाला गुलज़ारीलाल के लड़के नारा-

यणदास को लोहा और नमक बेचने का परमिट मिल गया था।

चन्दनगुरु के कबूतर को विधिवत दफनाकर जब सूरज का गोल बस्ती मे वापस आया, उस समय सूरज को सूचना मिली कि चन्दनगुरु ने अपने यहाँ से सब कबूतरो को निकाल दिया है। इस ख़बर ने सूरज को कहीं इस तरह छू दिया कि उसका मन भर आया।

अकेला गली-मुहल्लों मे घूमता-घूमता, सबसे अपने को छिपाकर वह चन्दनगुरु के घर के ठीक सामने एक माल गोदाम मे बैठकर देखने लगा—चन्दनगुरु के हाथ मे एक गुलेल है, वह घायल भेडिये की तरह नीचे-ऊपर, छत-दरवाज़ा, मुँडेर और ज़ीना सब पर चक्कर काटता हुआ बड़ी बेरहमी से अपने कबूतरो को भगा रहा है। उसने कबूतरो के निवास-स्थान को उजाड दिया है, मिट्टी के सारे लटके हुए सूराख वाले घडे, लकडी के लटके हुए सब बक्से तोडकर नीचे फेंक दिये है। वह लम्बा बाँस, जिस पर कबूतरो के बैठने के लिए ख़ूबसूरत छतरी बनी थी टूटने से केवल वही शेष थी, सम्भवत चन्दनगुरु अपने आवेश मे उसे भूल गया था। जितना ही वह कबूतरो को मार-मारकर उडाता, कबूतर उतने ही बिखर-बिखरकर उसके घर के सब हिस्सो में फडफडा-फड़फडाकर, आपस मे न जाने कैसी-कैसी गुटुरूँगूँ-गुटुरूँगूँ की बोलियाँ बोल-बोलकर सारे वातावरण को करुण बना रहे थे। वर्षों के प्यार और लाड से पले हुए वे कबूतर उतनी रात को अपने मालिक के घर से कैसे और क्यों जायँ? उनका अपराध क्या था? क्या भूल-चूक हो गई थी उनसे? जैसे वे सारे बिखर-बिखरकर उडते-लौटते, गिरते-बैठते और जहाँ कही भी उन्हे दुबककर छिपने की जगह मिल जाती, वहाँ अँड़सकर वे कबूतर अपनी अजीब डरी-डरी, त्रस्त आँखो से, फिर भी तूफ़ान में झूमती असंख्य बल खाती हुई कोमल डालियो की तरह अपनी गर्दनें घुमा-घुमाकर, अपनी शिशु-निगाहों से न जाने क्या देख रहे थे, पता नहीं क्या ढूँढ़ रहे थे!

एकाएक चन्दनगुरु ने एक हाथ मे टार्च ली और पूरे घर में वह

उन स्थलों को न जाने क्यों देखने लगा, जहाँ दुबके, धँसे, छिपे और अँडसकर वे सारे कबूतर बैठे थे। फिर उसने गुलेल पर गोली साधी और उसे खींचकर जैसे ही वह संधान करने चला, उसी क्षण सूरज दौडकर चन्दनगुरु से लिपट गया, और गिडगिडाकर क्षमा माँगने लगा, जैसे वही कबूतरो का गिरोह हो, जिसे चन्दनगुरु बनवास दे रहा था।

"ऐसा न करो गुरु चाचा।"

"अब तो कर चुका, अब क्या होगा, अब कुछ नहीं हो सकता!"

बहुत देर चुप रहने के बाद सूरज फिर बोला, "कबूतरो को आज इस रात को तो न निकालो!"

चन्दनगुरु कुछ बोला नहीं, निर्विकार-सा बैठा रहा। सूरज को लगा कि चन्दनगुरु उसकी बात मान गया है, अब वह इस तरह कबूतरों को नहीं त्यागेगा।

और आश्वस्त हो सूरज घर चला गया।

वह घर!

जिसकी मगूदादी का स्वर्गवास पिछले वर्ष हो गया, सीता बेटी की शादी के दो महीने बाद। सारी अनिच्छाओं, सारे मानसिक विरोधों के बावजूद भी अन्त मे सीता बेटी की शादी गोरेमल के मुनीम भूरादास के लडके रामदास से ही हुई।

ब्याह के दिन मगूदादी अपने कमरे से एक क्षण के लिए भी बाहर नही निकली थी, सिर थामकर रोती रह गई थी। रूपाबहू ब्याह के दस दिन पहले ही अपने पिता गोरेमल से लड चुकी थी, और लडकर हार चुकी थी, और उस हार का दण्ड उसने अपने-आपको इस रूप मे दिया था कि पूरे ब्याह मे उसने एक बार भी अपने दामाद का मुँह नहीं देखा, और तीन दिन तक उसने एक दाना अन्न भी अपने मुँह मे नही डाला। वह कहीं अपने आपमें चीख़-चीख़कर कह रही थी कि कौन होता है गोरेमल मेरी सीता बेटी का ब्याह रचाने वाला। यह गोरेमल दुकान का मालिक होगा, लेकिन मेरे घर का मालिक यह क्यों बनता है!

सूरज जब अपने घर मे पहुँचा, उस समय मधू बुआ चौके मे बैठी सूरज की प्रतीक्षा कर रही थी।

सूरज को पाते ही बुआ ने गम्भीरता से कहा, "क्यों रे सूरज, इधर तो आ! तेरी उमर अब कबूतर लडाने की रह गई है? क्यों चन्दनगुरु से लडाई की थी तूने? सुना है, उसने मारा है तुझे!" यह कहती-कहती बुआ सूरज के पास चली आई और उसका निरीक्षण करने लगी कि कही चोट तो नही लगी, "बताता क्यो नही रे? कहाँ मारा है उस दाढीजार ने? उस आवारा के सग तू खेल-तमाशे करने चलता है!"

ऐसे अवसरो पर सूरज बुआ के सामने बस चुप्पी साध लेता था, एक चुप, हजार चुप!

सूरज के उत्तर के लिए जब बुआ बहुत हैरान होने लगी, तब सूरज ने केवल इतना ही कहा, "चन्दनगुरु तो पैंतालीस साल का है बुआ! जब वह इस तरह कबूतर उडाता है, तो मै तो केवल अठारह साल का ही हूँ!"

बुआ और चिढ़ गई, "उस नीच से तू अपनी बराबरी करेगा? जानता है, वह पुलिस की निगरानी मे है, कितनी बार वह जेल काट आया है!"

"जेल तो एक बार मै भी काट आया हूँ, बुआ!"

बरबस बुआ को हँसी आ गई। सूरज के मुँह पर स्नेह से एक चपत मारकर वह चौके मे जा थाली लगाने लगी।

सूरज और बुआ दोनों एक संग भोजन करने लगे।

सूरज ने पूछा, "रूपाबहू कहाँ है?"

"फिर रूपाबहू कहा?" बुआ बिगड खडी हुई। "सीधे माताजी क्यों नहीं कहते, या अम्माँ ही कहो, कोई बेटा नाम लेकर पुकारता है, अपनी माँ को?"

"अच्छा-अच्छा! माताजी कहाँ गई!" और यह कहते-कहते सूरज के मुख पर हँसी बिखर गई।

"माताजी ठाकुरद्वारे की ओर गई हैं," बुआ ने बताया। "सन्तोष आई थी, कम-से-कम दो घंटे तक वह यहाँ बैठी थी। घुमा-फिराकर तेरी ही बात कर रही थी, उसी ने यह सारा किस्सा बताया कि चन्दनगुरु के संग तुमसे क्या-क्या हुआ है, और कैसे-कैसे तुम लोग उस मरे हुए कबूतर को अर्थी पर सजाकर श्मशान मे दफनाने ले गए।"

बुआ चुप हो गई, सूरज कुछ सोचने मे डूब गया।

बुआ फिर कहने लगी, "रूपाभाभी सन्तोष के संग उसके घर को गई है।"

बीच ही मे बल देकर सूरज ने बात काट दी, "बुआ, मुझे पता चला है कि ईशरी फूफा मेरठ जेल से अम्बाला जेल मे भेज दिये गए है।"

बुआ का सारा मुख उस एक क्षण के लिए सुर्ख हो आया, फिर सफेद पड़ने लगा, और धीरे-धीरे उसकी आँखे बरसने लगीं, जैसे मुख-मण्डल में सारा उमड़ा हुआ रक्त आँसू के रूप मे बहने लगा हो!

दोनों ने भोजन करना बन्द कर दिया और चुप-उदास अलग-अलग शून्य मे न जाने क्या देखने लगे।

बुआ ने भरे कण्ठ से पूछा, "भइया, तुझे कैसे पता लगा कि वे अम्बाला जेल मे भेज दिये गए?"

"उस दिन अलीगढ मे पता लगा," सूरज कहने लगा। "मेरठ जेल से कुछ कांग्रेसी क़ैदी छूटकर आये है। उन्होंने बताया कि जितने क़ैदी टेररिस्ट दल के थे, उन सबको वहाँ से अम्बाला भेज दिया गया। मेरठ जेल में केवल नर्मदल और गाधीवादी दल के ही राजनीतिक क़ैदी रखे गए हैं।"

"तो उन लोगों ने उन्हे देखा था?" बुआ ने सिसकियों के बीच पूछा।

"देखा नहीं, सुना था, लेकिन यह पक्की बात है बुआ!"

"सूरज! वे कब आयेंगे, छूटेंगे तो आयेंगे न! वे छूट जाय न सूरज.... !"

अपने गीले स्वरो मे बुआ ने इस तरह, इतनी उदास आँखों से सूरज को देखा कि वह उस वेदनापूर्ण दृष्टि के सामने टिक न सका। वह उठकर भागा वहाँ से, ऐसे भागा जैसे वह डर गया हो।

लेकिन भागकर वह घर से बाहर भी न जा सका। बाहर ही से थककर, चूर होकर वह घर मे आया था। वह दहलीज मे चुपचाप, जडवत् खडा रहा।

बरामदे की छोटी गद्दी पर चेतराम लेटा हुआ था। भीतर के कमरे मे दोनो मुनीम रोकडबहियों और अन्य खातो से न जाने क्या मिला-घटाकर कई दिनों से कोई हिसाब तैयार कर रहे थे।

चेतराम के दायें-बायें कुरसियो पर उसके खास दलाल बिहारी, नैनू और कुंसामल बैठे थे। कुंसामल कुछ पढ़ा-लिखा था। पहले वह स्वयं कुछ आढत का काम-धन्धा करता था, लेकिन सट्टे ने जब से उसकी कमर तोडी, तब से वह गंगा नहाकर दलाली करने लगा था।

बातों-बातो में कुंसामल कहने लगा, "भाई, ये बात नहीं। व्यापार तो आज पहले से चौगुना है! हाँ, लडाई के पहले और आज मे अन्तर यह हुआ कि व्यापार की प्रकृति बदल गई और क्षेत्र भी बदल गया। अभी तो जमा चार ही वर्ष बीते हैं। पहले यहीं बैठे-बैठे इसी फोन के जरिये सारे हिन्दुस्तान से व्यापार होता था—कहाँ है हैदराबाद, कहाँ है मद्रास और आसाम, कहाँ है लायलपुर, कराची, अमृतसर, लुधियाना और कहाँ है कलकत्ता, बम्बई। रेलवे से धडाधड गाड़ी-के-गाडी अनाज! हिन्दुस्तान भर की बात छोडो ही, अरे, अपने पास-पडोस हापुड, खुरजा, हाथरस, कालपी, उरई, कानपुर और अलीगढ की मंडियाँ तो देखो, जैसे आग लग रही हो! न किसी को भाव पूछने की फुरसत, न किसी को बताने की फुरसत! मिट्टी-मिट्टी एक भाव, औ सारी मिट्टी सोना!

एकाएक उसी बीच चेतराम हडबडाकर उठा। गद्दी पर लेटते ही शायद वह कुछ सो गया था। इस बीच चेतराम बहुत मोटा हो गया

"लेकिन ससुरा आज कहीं-न-कहीं बहुत बुरा है—बेहद बुरा। इससे लाख दर्जा वही अच्छा था—खुले बाजार मे बेचना और कमीशन लेना। ससुरा कितनी तेज़ी आ गई ज़िन्दगी मे। एक मिनट की चैन नहीं। एक ओर रुपये की चमक दूसरी ओर यह सरकार, अन्धाधुन्ध कमाई, पता नहीं इसका नतीजा क्या होगा।"

सूरज दहलीज मे चुपचाप खडा था, और उसी निर्विकार-जैसी स्थिति मे वह चेतराम की बातें सुन रहा था—दोनों तरह की बातें, पहली तरह की वह बात जिसके भीतर से गोरेमल के स्वरो की साँस उभर रही थी, और दूसरी तरह की वह बात, जिसके भीतर चेतराम का अन्तस् बोल रहा था।

और घर के भीतर से मथू बुआ का धीमा-धीमा रुदन भी दहलीज तक आ रहा था।

सूरज जैसे जागकर भीतर लौट गया। बुआ के ठीक सामने जा खडा हुआ, सकल्प के स्वर मे बोला, "क्या चाहती हो बुआ! आज्ञा दो मुझे।"

बुआ ने सिर उठाया और सूरज की आँखो को किसी अनिर्वचनीय तत्त्व से भरी देखकर वह काँप गई और एक क्षण के लिए बुआ ने स्पष्ट देखा कि सूरज की आँखोमे ईशरी खडा है। फिर बुआ जैसे सूरज को स्वयं समझाने लगी, "वे स्वतन्त्रता-सग्राम के सैनिक हैं—राष्ट्र के वीर सेनानी, इसलिए हम भी तो उन्हीं के दल के हैं! हम कहीं निर्बल थोडे हैं कि अपने स्वार्थों के लिए किसी को बाँध बैठें, रोने लगे! जो हमारा है वही देश का भी है, फिर क्या रोना! और वे तो बहुत जल्द आयेंगे न! देखो न सूरज भइया, वे तो अब यहाँ हर साल दो-तीन बार दर्शन दे जाते हैं। रात को आते है, और रात ही को चले जाते हैं। तुम लोग उन्हें इतनी उदार-प्रीति से विदाई भी देते हो। कितने महान् हो तुम लोग! नि स्वार्थ प्रेम देना, और उसके साथ-ही-साथ इतना अतुल विश्वास देना, साधारण बात नहीं है सूरज!"

सूरज को फिर कुछ असह्य होने लगा। वह इस बार खिड़की के रास्ते घर से बाहर आया। ठाकुरद्वारे की गली में उतरकर वह अपने से बेसुध, चुपचाप सरजू सुनार की गली के तिराहे की ओर चला जा रहा था। एकाएक असमय उसे ठाकुरद्वारे से राजू पण्डित की आवाज सुनाई दी। वह बढ़कर नीम के पेड़ के पास से ठाकुरद्वारे में देखने लगा—नीचे से ऊपर तक रेशमी वस्त्र का अँचला मारे राजू पण्डित बैठा है, सामने मन्त्रमुग्ध-सी रूपाबहू बैठी है। सूरज इधर-उधर बढ़कर झाँककर यह देखने लगा कि वहाँ कहीं सन्तोष भी बैठी होगी। लेकिन वहाँ कहीं सन्तोष न थी, केवल थे राजू पण्डित, रूपाबहू और उनके बीच में श्रीमद्भागवत की खुली हुई पोथी, दाईं ओर ठाकुर जी की खुली हुई झाँकी, और दरवाजे पर बिजली का केवल एक तेज़ बल्ब।

सूरज खड़ा देखता रहा, और सुनता रहा। राजू पण्डित जो रूपा-बहू को उस पोथी से सुना रहे थे काफी मीठा और आकर्षक था। उसका जी हो आया कि वह भी ठाकुरद्वारे में जा बैठे और रूपाबहू की तरह मन्त्र-मुग्ध होकर सुने।

उसी क्षण एकाएक उसे लगा कि उसके पीछे कोई बड़ी तेज हँसी उठी हो। वह इधर-उधर देखने लगा और अपने-आप में न जाने क्यों भय और ग्लानि के मिश्रित भाव से सिहर उठा।

वह बड़ी तेजी से मुड़ा और गली के पार जाने लगा। फिर भी उसके पीछे-पीछे वह भाव जैसे किसी साक्षात् व्यक्ति की तरह बड़ी तेजी से पीछा करने लगा—ऐसा पीछा जैसे किसी व्यक्ति पर किसी फरार मुलज़िम की पहचान पाकर कपट वेष में पुलिस पीछा करती है।

गली को पार करते-करते, जैसे ही वह तिराहे पर पहुँचने को हुआ, कुण्डली मारकर बैठे हुए किसी रोगी कुत्ते पर एकाएक उसके पाँव पड़ गए, और वह बचते-बचते गिर पड़ा।

गिरकर जब वह उठने लगा, तब अनायास उसकी आँखें भर आईं

और उन आँसुओं मे उसे एक घटना याद आई—जब वह एक बार सराय गया था और मारे भय के उस गली से बेतहाशा भागा था और गली के अन्तिम मोड पर वह इसी तरह एक आदमी से टकराकर गिर पडा था।

उस आदमी का चित्र एकाएक उसके सामने उभर आया और उभरता गया। और एक विचित्र कडुआहट से उसका जी भर आया।

अगले दिन कालेज जाने से पहले सूरज छत पर गया। चीड के बक्से में केवल सात कबूतर थे, एक-एक करके वह कबूतरो को उडाने लगा। जब सारे कबूतरो को उसने अपने घर से निकाल दिया, और वे अनजान कबूतर रोज की तरह निरभ्र आकाश मे गिरहबाजी करने लगे, तब सूरज वही बैठकर कबूतर वाला घर तोडने लगा—बडे सयम और तटस्थ भाव से, जैसे उस क्रिया के पीछे कोई अनोखा संकल्प हो।

उसी समय न जाने कैसे, कहाँ से वहाँ छिपी-छिपी सन्तोष आई। छत की अन्तिम सीढी पर वह खडी रह गई। सूरज को सन्तोष की उस उपस्थिति का कोई भास न हो सका।

सन्तोष कितनी बडी हो गई थी, सोलह-सत्रह साल की अवस्था मे वह उतनी बढ गई थी कि उसके सामने मधू बुआ का भी क़द जैसे छोटा लगने लगा था। उसकी आँखे गम्भीर बडी-बडी थीं और जैसे सदा गहरे काजल में डूबी-डूबी। ओठ भी पतले और गम्भीर थे, जैसे सदा बन्द, लेकिन उसके मुख के विकास पर पता नही क्या था और कहाँ छिपा था कि उसकी मुख-मुद्रा से सदा निश्छल मुस्कान बरसती थी—ऐसी स्निग्ध और पावन मुस्कान जैसे करुणा के बीच से सौन्दर्य का हास। और उसका रंग ऐसा खुला था, जिस पर कोई भी स्पर्श जैसे धब्बा डाल सकता था। सीधे पल्ले का आँचल और आँचल से ढका हुआ सिर उसके माथे पर शुचिता की ऐसी छाँव डालता था जैसे

तृतीया की चाँदनी के बीच क्वार का कोई छोटा-सा भूरा बादल तैर रहा हो। और चाल झुकी-झुकी, धीमी, नपी-तुली, जैसे उसकी दिवगत शारदा माँ की मधुर राग की कोई लोरी, जो सन्तोष बेटी की गति के चारो ओर गरिमा मण्डित करती चल रही हो !

सूरज जब कबूतरो के घर को पूरी तरह उजाड चुका, तब वह वही छत से आकाश मे उडते हुए कबूतरो को देखने लगा, जैसे अन्तिम बार देखकर वह उन्हे अपने मन से अब त्यागने चला हो, त्याग रहा हो।

उसी क्षण सन्तोष सामने आई और अपनी सहज स्थिति मे लजाकर बोली, "यह क्या हो रहा है ?"

सूरज कहने लगा, "घर मे कबूतर रखने से साँप बहुत आते हैं। बेकार की हिसा होती है, अच्छा नहीं लगता। माथे पर पाप आता है।"

कुछ देर चुप रहकर वह फिर बोला, "और जब आदमी इस देश के सारे कबूतरो को नहीं पाल सकता, तो केवल सात-आठ कबूतरो को वह क्यों पाले ? वह कबूतर-वर्ग के प्रति क्या अन्याय-अत्याचार नही करता ? जरूर करता है।"

कहते-कहते वह फिर एकाएक चुप हो गया। तब जैसे सोचकर उसने कहा, "और कबूतर पालना, कबूतरबाजी करना कोई अच्छा काम थोडे है ! बडा बेकार चस्का है—मुफ्त मे झगडा-लडाई, समय की बरबादी और बिलकुल बेकार चीज़ !"

फिर कुछ रुककर सन्तोष के नगे स्वच्छ पैरों पर जैसे दृष्टि गडाकर बोला, "जिसे दुनिया में कोई काम न हो, जिसे कोई चिन्ता न हो, जो पत्थर जैसा निर्द्वन्द्व नि.शेष हो, वह कबूतर पाले !"

सन्तोष को एकाएक हँसी आ गई, "बाते न बनाओ सूरज, असल बात यह है कि तुम चन्दनगुरु से डर गए ! लेकिन डर किस बात का ? क्या कर लेगा वह ? वह तो स्वय बहुत डरने लगा है तुम

लोगों से।"

"अरे डरेगा न तो जायगा कहाँ ?"

सन्तोष धीरे-धीरे सीढियों की ओर खिसकती जा रही थी, आखिरी सीढ़ी पर पहले की भाँति खडी होकर बोली, "बेचारे उन कबूतरों ने तुम्हारा क्या बिगाडा था ? इस तरह अपने घर से उन्हे नहीं उडाना चाहिए ! ऐसा था तब उन्हे पाला ही क्यों ? वे तुमसे आश्रय माँगने तो आये नहीं थे। और इतने स्नेह का उदार आश्रय देकर !"

शेष बात अपने मन मे लिये वह सीढियों से नीचे उतरने लगी। कहीं बीच मे रुककर फिर बोली, "आओ, नीचे उतर आओ सूरज !"

लेकिन सूरज छत से नीचे नहीं उतरा, कुछ क्षण सन्तोष वहीं सीढियों पर खडी रहकर बुआ के पास चली आई। वहाँ बैठी भी वह जैसे सूरज के उतरने की राह ताक रही थी। फिर निराश हो वह घर चली गई।

दिन डूबने के पहले एक बार वह फिर सूरज के लिए आई। पर सूरज घर मे न था। शाम को, ठाकुरजी की आरती के समय वह दूसरी बार आई, तब भी उसे सूरज न मिला। अपने पेट के दर्द का बहाना बनाकर वह एक बार रात को भी आई, सूरज से तब भी उसकी भेंट न हो सकी। इस बार वह चुपचाप अकेली छत पर गई। और देखकर दग रह गई—नगी छत पर, सिरहाने तौलिया लपेटे सूरज पडा इस तरह सो रहा था, जैसे वह बीमार हो—दीन-असहाय !

द्वादशी की चाँदनी पूरी छत पर बिछी थी, पर सन्तोष को लग रहा था। जैसे उतनी परिधि मे घुप अँधेरा बरस रहा है, जहाँ सूरज पडा था और सन्तोष की आँखे एकाएक भर आई। सारा कण्ठ उसका भीग आया। उसने देखा सूरज के चारों ओर उसके वही सात कबूतर पखों मे मुँह छिपाए अचल योगियों की तरह जैसे समाधि लगाए बैठे थे—तीन सिरहाने, एक दायें, एक बाये और दो उसके पैरों के पास—वही दो गिरहबाज़ विजयी कबूतर ! जैसे वे अपने ईश्वर की रक्षा में अविचल

खडे थे, जैसे केवल वे ही सब-कुछ थे।

सन्तोष को कुछ न सूझा, वह भागी गई मबू बुआ के पास। बुआ को संग लिये वह छत पर आई।

उस दृश्य को खडी बुआ भी देखती रह गई—ठगी-सी, करुण नयनों से।

"पता नही क्या हो गया है सूरज को कल से?" बुआ जैसे सन्तोष के सामने रुँआसी हो गई, "कल रात कुछ नहीं खा सका, आज दोपहर थोडा-सा चावल दही खाकर उठ गया। कहने लगा, 'पेट मे जलन है बुआ'। मै रोकने लगी कि कोई दवा दूँ, जरा पेट देखूँ, अनार-सन्तरे का रस दूँ, लेकिन वह यह कहता हुआ चला गया कि 'जरा टहल लूँ बुआ, अभी ठीक हुआ जाता है।' और इस समय मै इसका अब तक रास्ता ही देख रही हूँ। हाय! वह क्यों इस तरह यहाँ पडा है? क्या हो गया मेरे सूरज को?"

सन्तोष वही खडी-की-खडी रह गई। बुआ झपटकर सूरज के पास आई। कबूतर धीरे-धीरे खिसककर कुछ दूरी पर सावधानी से खडे हो गए।

बुआ ने सूरज को उठाया। जगाने की कोई आवश्यकता न थी, क्योंकि सूरज सोया नही था, केवल आँख मूँदे पडा था।

उठते ही वह हँसने लगा, जैसे वह सब-कुछ देखते-देखते छिपा लेना चाहता हो। कहने लगा, "मै तो यूँ ही पडा था, चाँदनी बहुत अच्छी लग रही थी!"

"लेकिन पता भी है, तुमसे सटकर ये कबूतर कैसे सो रहे थे?" सन्तोष ने पूछा।

"कितना भी इन्हे तुम त्यागो भइया, ये कबूतर तुम्हे छोडकर कहीं जायँगे नहीं।"

"गुस्सा लगेगा तो एक दिन इन्हें मार भी डालूँगा।"

"क्यों नही, अब तक अपने देश से अंग्रेजों को ही भगाने में उन्हें

मारने चले थे, उन्हे न मार सके तो कबूतर ही सही !"

सन्तोष यह कहती हुई उन बिखरे हुए कबूतरों के बीच में चली गई। और उन्हे एक-एक कर अपने पास बुलाने लगी।

सूरज भोजन करने के लिए तैयार नहीं हो रहा था, अनेक तर्क दे रहा था।

बुआ ने क्रोध के अभिनय मे कहा, "जवान हो गया तो क्या, चलेगा तू क्यो नहीं ? मै पीठ पर न लाद लूँगी तुझे ? क्या समझ रखा है तूने मुझे !"

सूरज ने देखा, बुआ शिशुवत् हँस रही थी। कही से भी किसी पछतावे की लीक उसके मुखमडल पर न थी। एक अजीब सन्तोष का भाव था वहाँ, जिस पर अदम्य आस्था का आलोक उभर रहा था।

रात के दस बजे मे ऊपर का समय हो रहा था। रूपाबहू अब तक ठाकुरद्वारे से लौटी न थी।

२

हर शाम को ठीक दिन डूबते-डूबते, पता नहीं कहाँ मे, कौन, किस तरह, 'धुआँधार' नामक एक चारपेजी दैनिक पत्र सारी बस्ती मे जैसे बिखेर देता था। फिर एक घण्टे के लिए, जहाँ देखो, जिसके भी हाथ में देखो वही 'धुआँधार' छोटा-सा न्यूज पेपर—मटमैला कागज़, बेहद जल्दी-जल्दी मे तैयार किया हुआ, कभी पूरा छपा हुआ, कभी एकाध पेज खाली। कभी पूरा छपा हुआ कभी पूरा-का-पूरा साइक्लोस्टाइल, जिसका सम्पादक लापता, प्रेस लापता और सब-कुछ लापता, लेकिन फिर भी जिसके व्यक्तित्व से वह बस्ती पिछले वर्ष से कही-न-कहीं बँधी चली आ रही थी—उसके प्रभाव में आकर, कोई सत्य पाकर, अँधेरे में किसी क्षण उजाले की निष्ठा पाकर, और एक परोक्ष नेतृत्व

पाकर ।

'धुआँधार' के मुखपृष्ठ पर छपा था—लाल-लाल अक्षरों में 'सर बाँधे कफनियाँ हो शहीदों की टोली निकली' यह शीर्षक था और उसके नीचे छपा था—

'जब रोज जल रही हो होली ।
फिर कैसे मनावैं हम होली ॥
तुम करो हमारी बरबादी ।
बंदी रखो बीर जवाहर औ गाधी ॥
इधर तुम्हारा महायुद्ध औ वारफंड
इधर तुम्हारा कंट्रोल औ परमिटखंड
उधर तुम्हारी भरी जेल औ दमन काड
इधर हर रही सीता उधर लंकाकाड
इधर सत्य अहिसा
उधर तुम्हारी गोली—फिर कैसे मनावैं हम होली ।'

इसके नीचे छपा था, 'बस्ती होली मनाये, निम्नलिखित कार्यक्रम दिखाये ।'

आर्यसमाज की ओर से, प्रभातफेरी, दोपहर को बजाजा टोले में बाबा हरिनाथ के फाटक मे यज्ञ समारोह, सन्ध्या समय स्वामी वेदाचार्यजी का भाषण ।

सनातनधर्म की ओर से, सनातनधर्म मन्दिर मे अखण्ड हरिकीर्तन, सूर्योदय से सूर्यास्त तक, उसके अनन्तर हनुमान वाटिका मे जलपान।

हिन्दू महासभा की ओर से, राई सत्ती के मैदान मे प्रात.काल आठ बजे मंगलतिलक और प्रीति-मिलन समारोह । प्रोफेसर दयाराम शास्त्री का जबरदस्त भाषण ।

सतसंगी समाज की ओर से सन्ध्या पाँच बजे से कॉलेज मन्दिर के घिरे चबूतरे पर सत्सग और स्वामी त्रियानाथ का प्रवचन और प्रोफेसर सतसंगी का स्वस्तिवाचन ।

अग्रवाल मण्डल की ओर से छेदामल के अहाते मे सुबह चार बजे होलिका दहन, दोपहर को चेतराम के फाटक पर भाई-बिरादरी से मिलन और जलपान तथा सन्ध्या को गोपालन मुहल्ले की ओर से ठाकुरद्वारे मे राजू पण्डित का कीर्तन।

साहू समाज की ओर से ऊँची हवेली मे, साहू रायबहादुर साहब का दरबार।

सन्ध्या समय, चौधरी सभा की ओर से, चौधरी रामनाथ की बैठक में गीता और रामायण पाठ, तदुपरान्त एक कवि-गोष्ठी, जिसमे नगर के कवियों के अतिरिक्त बाहर से भी कुछ कवि पधार रहे है।

वार्ष्णेय सभा मण्डल की ओर से, बडा दरवाजा के अहाते मे ठीक आधी रात की बेला होलिका दहन (इधर-उधर किसी हालत मे नहीं), दोपहर तक रगरेली, और वार्ष्णेय युवक सभा मे अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता, तथा रायबहादुर तुलाराम द्वादश श्रेणी, एम० ए० द्वारा पुरस्कार वितरण। सन्ध्या समय बस्ती के समस्त वार्ष्णेय बन्धुओं का बोराम रोड पर कंठ-मिलन।

मारवाडी व्यापार मण्डल की ओर से जैन मन्दिर के अहाते मे सुबह आठ बजे से दस बजे तक लड्डू का प्रसाद-वितरण।

भार्गव लोग तथा खत्री भाई ये दोनों वर्ग इस वर्ष की होली पर गरीबों को एक-एक गज़ कपडा दान करेंगे। इनके घरो मे रंग नहीं चलेगा। वृन्दावन बिहारी लाल भार्गव के दोनों लडके सियाराम तथा राधेश्याम अब तक आगरे की जेल मे नजरबन्द हैं। मोहनदास, कांग्रेस सोशलिस्ट लीडर, मुरादाबाद जेल मे यातना सह रहे है। इसलिए महाजन टोला मे विदेशी वस्त्रो की होली मनाई जायगी और पूरे दिन विट्ठलराम भार्गव के बाग मे चर्खा चलाया जायगा।

'धुआँधार' के सम्पादकीय स्तम्भ से यह अपील की गई थी कि हर मुहल्ले की होलिका दहन मे विदेशी वस्त्रों की होली प्रत्येक का धर्म है।

और होलिका दहन की रात, पूरी बस्ती के चौराहों, मोड़ों, तिराहों तथा हर मुहल्ले, नाकों तथा अहातों मे सशस्त्र पुलिस, सिविक गार्ड्स, खुफ़िया पुलिस। और इस शक्ति के ऊपर एस० डी० ओ० तथा स्पेशल मजिस्ट्रेट की जीपे बस्ती में आ घुसी।

रात के ठीक चार बजे, होलिका दहन के उपरान्त म्युनिसिपल हॉल मे जिस समय अंग्रेज मजिस्ट्रेट मिस्टर टामसन, पुलिस अफसरों तथा सिविकगार्ड्स के बीच दमन का भाषण दे रहा था, उस समय आर्य समाज की प्रभात फेरी बज़ाजा टोले से निकलकर गोपालन मुहल्ले से गुजर रही थी और उनकी स्वर-लहरी से बस्ती की नीरवता में एक अलौकिक सगीत उभरता चल रहा था—

उठ जाग मुसाफिर भोर भई अब रैन कहाँ जो सोवत है।
जो जागत है सो पावत है, जो सोवत है सो खोवत है॥

दिन निकलते-निकलते राजू पण्डित ने ठाकुरजी का शृङ्गार कर लिया। शृङ्गार का सारा सामान रूपाबहू ने दिया था। सन्तोष ने उसे सजाया-बजाया था।

शृङ्गार कर चुकने के बाद राजू पण्डित ने चेतराम की खिडकी तक जाकर रूपाबहू को आवाज़ दी। आने की आहट पाकर वह चट से ठाकुरद्वारे मे पहुँचे और सुसज्जित ठाकुरजी को चँवर डुलाने लगे।

कुछ ही क्षण बाद रूपाबहू आई—सद्यस्नाता, पीठ पर बिखरकर खुली हुई लटे, सफेद जार्जेट की साडी मे रूपाबहू का भरा-भरा शरीर, दमकता हुआ, गिन्नी सोना जैसा स्निग्ध। वह ऐसी लगती थी कि उसके गठे हुई शरीर के अंग जैसे बोलते थे कि मुझे छुओगे तो मुझ पर चिह्न पड जायगा।

रूपाबहू ने ठाकुरजी की अर्चना की। होली के रंग, गुलाल, अबीर रोरी और इत्र से उन्हे पूजा। आरती-पूजन के बाद जब वह प्रतिमा के सम्मुख आँचल पसारकर नतशिर हुई, उसी समय राजू पण्डित ने रग से भरे लोटे को रूपाबहू पर उँडेल दिया, और उस आह्लाद मे वे मजीरा

बजा-बजाकर नाचने लगे—

विरज माँ फाग रच्यो जदुराई
इधर सो निकरी सुघर राधिका
उधर सो कुँवर कन्हाई
विरज माँ फाग रच्यो जदुराई ।

रूपाबहू महज हँसके रह गई और उसके चेहरे से एक अजीब खिसियाहट का भाव उभरने लगा, और भीगी हुई साडी को जहाँ-तहाँ से निचोडती रही। 'बाजूबंद खुल-खुल जाय,' 'मेरी चुनरी मे परि गयो दाग पिया,' 'छोडो लँगर मोरी बँहियाँ गहो न,' 'दास कबीरा जतन से ओढ्यो ज्यो कीं त्यो धरि दीन्ही चुनरिया,'—जैसे रूपाबहू के कानों मे हँसता हुआ कोई गाता रहा ।

रूपाबहू से रुका न गया। वह भागकर घर चली गई । राजू पंडित वही यन्त्रवत् खडा रहा । मुहल्ले के लोग—स्त्री-पुरुष—ठाकुरद्वारे मे पूजन-हेतु आने लगे । राजू पडित निष्प्रयोजन ठाकुरद्वारे मे इधर-से-उधर घूमने लगे, कभी फूलों के बहाने, कभी तुलसीदल के बहाने, कभी आरती-चढावा के बहाने और बडे वेग से अनाप-शनाप गाते रहे—

थके नयन रघुपति-छवि देखे, पलकन्हिहू परिहरीं निमेखे ।
अधिक सनेह देह भई भोरी, सरद ससिहि जनु चितव चकोरी ।
रघुवंसिन्ह कर सहज सुभाऊ, मन कुपंथ पगु धरैं न काऊ ।
मोहि अतिसय प्रतीति जिय केरी, जेहि सपनेहु पर नारि न हेरी ।

"जे सब का गा रहो है पुजारी बाबा, अरे आज कुछ होली फाग उचै ।"

"क्या कहा सरजू सुनार ?"

"अरे यही पुजारी बाबा कि ••"

"सो तो ठीक है, पर कैसी अद्‌भुत माया मोह मे हम आ फँसे हैं सरजू भाई कि तीनों पना ही व्यर्थ गयो, संग सेली लगी न नवेली

लगी !"

ठाकुरद्वारे मे अनेक लोग आ चुके थे। सब हँस पडे। एक ने कहा, "पुजारी बाबा, जे तुम्हारा जनम काहे कूँ व्यर्थ गओ ?" दूसरे ने उठाया, "व्यर्थ तो हमारे जा रहो है पुजारी बाबा, यह राशन औ कंट्रोल का जमाना, मन औ शरीर, यह लोक औ वह लोक, सबकूँ मरना पड रहा है !"

तीसरा कहने लगा, "यह सब तो लगा ही रहेगा यारो, अरे पुजारी बाबा, कुछ हो जाय ठाकुरजी के सामने, होरी फाग !"

एकाएक गली से चन्दनगुरु निकल रहा था। कह बैठा, "अजी आज क्या, यहाँ तो रोज ही होली फाग है ठाकुरजी का दरबार है कि कोई मजाक है, राधाकृष्न ! राधाकृष्न !! देखो न पुजारीजी की उँगली मे, ताँबे की सर्पिनी पहने है ! हाथ मे रामराजा, कंठ मे बीन बाजा' राधाकृष्न' राधाकृष्न !"

पुजारीजी जब तक कुछ उत्तर दे, चन्दनगुरु सामने से ओझल हो गया। कुछ देर बाद राजू पण्डित अपने-आप गा उठे—

'अब लौं नसानी अब न नसैहों।'

राई सत्ती के मैदान मे प्रोफेसर दयाराम शास्त्री के भाषण के लिए अच्छी खासी जनता इकट्ठी थी। भाषण के पूर्व तुमुल स्वर में जैनाद—महाराणा प्रताप की जै !

वीर केशरी शिवाजी की जय !

'परमवीर ! धर्मवीर ! हिन्दू भाइयो ! आज होली का पर्व है, हिन्दू सस्कृति का परम जीवनपूर्ण पर्व। यह आर्य-पर्व अनादिकाल से, बल्कि यूँ कहे कि यह भारतीय आर्य पर्व सतयुग, त्रेता, द्वापर से होता हुआ आज कलियुग मे भी अपने उसी रूप में विद्यमान है। अनेक बार हिन्दुओं पर संकट पडे, असंख्य बार यवन, हूण, मंगोल, सीथियन

वगैरह, आदि-आदि भारतवर्ष पर भयानक-से-भयानक आक्रमण कर गए। पर क्या हुआ, हम आज भी ज़िन्दा है। (ताली बजती है) यह है हिन्दुत्व का पवित्र और महान् गौरव। गीता में भगवान् ने अपने मुँह से कहा है, क्या कहा है (सस्वर) 'जब जब होहि धर्म की हानी' नही-नहीं यह तो रामायण मे महात्मा तुलसीदास ने कहा है। गीता मे कहा है, (सस्वर)

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

अर्थात्—हे अर्जुन! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब ही मै अपने रूप को रचता हूँ, अर्थात् अवतार लेता हूँ। आज (आवेश बढने लगता है) जब कांग्रेस-महात्मा गांधी, समाजवादी लोग, अम्बेडकर और सबसे भयानक मुस्लिम लीग—मिस्टर जिन्ना जैसे दुश्मन हिन्दुत्व की जड को खोदने और उसमे मट्ठा डालने मे लगे हैं, तब इन्हे नहीं मालूम कि हिन्दुत्व की रक्षा के लिए भगवान् का अवतार महाराष्ट्र मे हो चुका है। (करतल ध्वनि)। हमने माना कि १९३७ के इलेक्शन मे हमारी हार हुई, लेकिन हम कही बीस से उन्नीस नही हुए हैं। जिस स्वतन्त्रता-सग्राम मे कांग्रेसी लोग लगे हुए हैं, हम उनसे पीछे नही है। (एक गिलास पानी पीते हैं, रूमाल से मुँह पोंछने के बाद) आज राष्ट्र की क्या दशा है? जिस वर्ष में आज की होली पडी है, यह दिन भारतीय इतिहास मे अभूतपूर्व है। राष्ट्र की नैया आज भँवर मे फँसी है। इसके सारे कर्णधार जेल में हैं, सींकचों के पीछे बन्द हैं, असंख्य शहीद हो चुके है और अब राष्ट्र की किस्मत, भाग्य, तक़दीर, 'फेट' आपके हाथ में है। आपको मालूम है, पूरब में जापान फेनी और चिटगाँव तक पहुँच गया है, पश्चिम मे हिटलर काले समुद्र तक दौड लगा चुका है और अँग्रेज़ी हुकूमत, शासन, इस देश को इस महायुद्ध मे अपने साधन बना रही है—सारे राष्ट्र में भूख, तबाही, दमन और ग़रीबी फैल रही है। यह राशनिंग और कण्ट्रोल

हमे इन्सान से हैवान बनाती चल रही है। जानवर हो रहा है आज का आदमी। न पेट का भोजन, न तन ढकने का कपड़ा!"

उसी क्षण बस्ती के मुसलमानी मुहल्ले से जैसे किसी जबरदस्त भीड़ की आवाज आई, 'नारये इस्लाम, अल्लाहो अकबर!'

और एक अजीब-सा शोर बढ़ने लगा। उसी क्षण बस्ती-भर मे पुलिस की जीपें दौड़ीं। कलेक्टर ने दफा एक सौ चवालीस लागू कर दी। प्रोफेसर दयाराम शास्त्री का भाषण बन्द हो गया और राईमत्ती का मैदान देखते-ही-देखते सूना हो गया।

स्थानीय कालेज के एक अध्यापक, श्री राजाराम चौरसिया राईमत्ती के मैदान से होस्टल की तरफ जाते समय अपने संग के कुछ लड़कों को बता रहे थे, "कितनी नीच भावना है इस अंग्रेजी हुकूमत की! देखा कि बस्ती मे इधर-उधर के आयोजनों के माध्यम से लोग भाषण दे-देकर कुछ-न-कुछ काम कर लेंगे, अतएव मुसलमानो से झूट मिलकर मुफ्त का हल्ला मचवा दिया और बहाना निकालकर ऐन होली के दिन बस्ती मे दफ़ा एक सौ चवालीस लगवा दी। यह है इनका कमीनापन!"

घण्टाघर तक जाते-जाते प्रोफेसर दयाराम शास्त्रीजी गिरफ्तार कर लिये गए।

लेकिन दूसरे दिन सुबह पुलिस को सूचना मिली कि डेढ सौ मोम-बत्ती जलाकर बस्ती के कुछ नौजवानो ने बस्ती से डेढ़ मील दूर ईद-गाह वाले बाग मे रात को कवि सम्मेलन किया। मुख़बिरो ने यह भी बताया कि कोई मास्टर था, आँखों पर चश्मा लगाए, वही सभा-पति बना था। इन्तजामकार था कोई हट्टा-कट्टा, गोरा-गोरा-सा नौजवान, बाल कुछ-कुछ घुँघराले थे, पाजामा-कुर्ता पहने था। पुलिस ने सभापति के नाम पर मास्टर चन्दूलाल पर शक किया और इतजाम-कार के नाम पर सूरज पर।

'आज़ाद रेस्टोरेण्ट' मे शाम के वक्त जब रेस्ट्राँवाला जियालाल खौलते पानी मे चाय की पत्तियो की धूल डालने लगा और ज्यो-ज्यो पानी का रग सुर्ख-से-सुर्ख होता गया वह बेहद भद्दे स्वर से गाने लगा, 'चल-चल रे नौजवान, चल-चल रे नौजवान, रुकना तेरा काम नहीं बढना तेरा काम, चल चल रे नौजवान !'

'हिन्दू प्याले मे आध पाव चाय, चार पैसे प्याले मे आध पाव चाय। चाय पीये मेरे भाय, चाय पीये मेरे भाय।'

सामने से चेतराम, नारायणदास, मास्टर चन्दूलाल, और छीतरमल को आते देखकर रेस्ट्राँवाला जियालाल उनके स्वागत मे बोला, "आवो सेठ सरकार लोग !"

और उन्हे भीतर लोहे की अलीगढी कुरसियो पर बिठाते हुए जियालाल कहने लगा, "सेठ! दिल्ली मे बराबर तीन दिनो तक सनीमा देखकर आया हूँ। क्या गाना था, 'चल-चल रे नौजवान !' एक सनीमा यहाँ भी खुलना चाहिए !"

मास्टर चन्दूलाल के अलावा चेतराम, नारायणदास और छीतरमल इन तीनों ने कुर्ते की थैलियों से अपने-अपने चाय पीने के लिए मुरादाबादी गिलास निकाले।

मास्टर चन्दूलाल ने अपने प्याले से पहला घूँट लिया और खँखारकर बोले, "वारफण्ड के लिए परसों मुरादाबाद मे गवर्नर साहब आ रहे हैं। दो दिन वहाँ रहेगे, और सुना यह है कि गवर्नर साहब यहाँ भी आने वाले हैं। तीस हजार पर 'रायसाहब', और पचास हज़ार पर 'रायबहादुर' की उपाधि धडाधड मिल रही है।"

"और राजा की पदवी कितने मे मिल रही है ?" चेतराम ने पूछा। और उसकी आँखों में कुछ ऐसा चमका, जैसे वह कोई-न-कोई पदवी अवश्य ख़रीदेगा। उसके पास तो बहुत रुपया है, क्या कर लेगा गोरेमल !

"यही लाख-डेढ लाख वारफण्ड मे देने से !"

"क्यों मास्टर चन्दूलाल," नारायणदास ने पूछा, "जब हमारे देश मे न कोई लडाई हो रही है, न यहाँ जर्मन और जापान के हमले का कोई खतरा ही है, तब फिर क्यों चारो ओर, हर जिला, तहसील, कालेज-स्कूल, शहर और कस्बे मे लडाई का नाटक खेला जा रहा है—फर्जी बम्ब, फर्जी तोप, हवाई जहाज, टैंक और गोलाबारी। यह क्या है एटम बम्ब, यह क्या है एण्टी एयर क्रैफ्ट गन!"

बीच ही मे छीतरमल उफन पडा, "और यह ब्लैक आउट, जहाँ देखो, तहाँ वी (V) का निशान और यह क्या है ससुरा 'सेल्टर' चारों ओर गहरी-गहरी खाइयाँ कि हवाई हमले के समय, जब साइरन बजेगा तब लोग इन्ही खाइयो मे छिपेगे। हद हो गई! इन्सान, ब्लैक, खाई और गड्ढा!"

"अरे पहले ब्लैक आउट, फिर ब्लैक मार्रकिटिंग, ये अंग्रेज़ जो-जो न हमे सिखा दे!" नारायणदास ने कहा, "ब्लैक, ब्लैक, सारी ज़िन्दगी में ब्लैक!"

"कांग्रेस ने कहा कि तुम्हारे महायुद्ध से हमारे देशवासियो का कोई सम्बन्ध नहीं! महायुद्ध से हमारा कोई सहयोग नही, उसीका बदला चुका रहे है ये अंग्रेज। असली लडाई न सही तो नकली ही सही। अगर वे चैन से नहीं, तो हमीं चैन से क्यों रहने पाये?"

चन्दूलाल की बात काटकर चेतराम ने कहा, "क्यों मास्टर साहब! सुना है हिटलर आर्य समाजी है! और यह भी अफवाह है कि वह अंग्रेज़ो को हिन्दुस्तान से भगाकर हमे आज़ादी देगा!"

"नहीं जी लाला! वह नाज़ी है नाज़ी।"

"नाज़ी, यानी पाजी, क्यो?" चेतराम ने पूछा।

"अजी, सुना है उसे वेद ज़बानी याद हैं। बरहमचारी है वह, बारह बरस हुआ, वह सोया नही है," छीतरमल ने कहा।

'बिल' देने के बहाने से जियालाल ने मास्टर चन्दूलाल के सामने एक पुर्जी पेश कर दी। उस पर लिखा था, 'बाहर बेंच पर पाँच ग्राहक

बैठ गए है, उनमे से गाँव वाले के रूप मे सर से पाँव तक खद्दरधारी एक सी० आई० डी० आया है। ख़बरदार, होशियार !"

अपने-अपने गिलास पाकेट मे रखकर वे चारो दुकान से बाहर चले गए।

तब उस सी० आई० डी० ने अंग्रेज़ो के खिलाफ़ इधर-उधर की बातो के बीच मे पूछा, "अजी भाई रेस्टूराँवाले ! मुझे भी रोजाना 'धुआँधार' की एक कापी चाहिए। कहाँ मिलती है यह ? किससे बात करूँ ? छपती तो यही है न, क्यो, कहाँ से निकलती है ? बडी उम्दा चीज है ! कितनी बडी सेवा की है यह ! मै तो सच दो-ढाई सौ रुपये दान देना चाहता हूँ उसके सम्पादक को।"

"चाहता तो मै भी हूँ कि उसे दो-चार कप चाय पिलाऊँ, लेकिन उसका तो पता ही नही है," जियालाल कहने लगा। "सुना है वह कही कब्रिस्तान मे रहता है। जिन्नात है कोई उसके क़ाबू मे, उसी से वह कराता-धराता है। मै तो सोचता हूँ कि वह सम्पादक कभी अपने जिन्नात को मेरी दुकान से चाय लेने के लिए भेजता, तो मै उसके बाल काटकर रख लेता और बादशाह बन जाता। या कम-से-कम जयप्रकाश नारायण को ही पकडवा देता। पाँच हज़ार इनाम रखा है सरकार ने ! सुना है सरदार भगतसिह और चन्द्रशेखर आजाद के बाद जयप्रकाश ही का नम्बर है हाय-हाय·· क्या झूम के गाया है—'सर बाँधे कफ़-नियाँ हो शहीदों की टोली निकली !"

चाय पीकर सी० आई० डी० चला गया। फिर जियालाल दुकान के पिछवाडे जाकर ठहाका मारकर हँसा, और चाय की दूसरी क़िस्त तैयार करता हुआ गाने लगा—

'मोरे देशी चुनरिया हो राम,
सजन मोरे रंग विदेशी न डारियो !
जा को गाधी बाबा बुन दयी

रँग दयी है जवाहरलाल,
सजन मोरे रंग विदेशी न डारियो !

थोडी देर के बाद चार साथियों के सग चन्दनगुरु आया और बाहर बेंच पर ही जम गया ।

जमते ही वह बोला, 'इस 'वार' और 'कण्ट्रोल' के जमाने मे ससुरी ये रडियाँ कितनी बढ रही है । पहले कुल बीस-पचीस ही थी और अब तो पचास-साठ से कम न होगी, जो रजिस्टर्ड हैं, और बे रजिस्टर्ड तो अनगिनत हैं !"

"अजी वे रडियाँ तो लाख दर्जे ठीक है, दुनिया को उन्होने बता तो दिया कि वे रडी हैं, लेकिन वे पर्दानशीन औरतें, बडी-बडी भक्तिन, बडे-बडे दरवज्जो वाली, जो छिपके मार करती हैं, उनका लेखा-जोखा कौन करेगा ?"

"अबे वही ठाकुरजी करेगे !" चन्दनगुरु ने तपाक से कहा, "और राजू पण्डित चिराग दिखायेगा ठाकुरजी को ! साला किस अदा से नाच-नाचकर कीर्तन करता है ! और कथा कैसे सुनाता है, 'रासलीला मे जिस गोपी का हाथ मुरली मनोहर पकडे थे उसका अग मोहन प्यारे से रगड खाता था । पर उनकी माया से सब गोपियाँ अनेक रूप धारण करने का हाल न जानकर यह समझती थी कि केशव हमारे साथ नाचते है और इस आनन्द-रूपी नाच मे पैर की ठोकर देकर अग से अग रगड़ना व आँख मटकाय व कटाक्ष कर कुण्डल हिलावना ।"

"गुरु ! लगता है तुम भी छिप-छिपाकर कभी-कभी सत्संग कर आते हो," जियालाल ने चाय देते हुए कहा ।

"यार मै छिप-छिपाकर काम करने मे विश्वास नहीं करता । बद-नाम होकर भी क्या चोरी करूँ ? सरकार जानती है, म्युनिसिपेल्टी जानती है, बस्ती के सारे लोग जानते हैं, सी० आई० डी०, दरोगा पुलिस सबको पता है कि रोजमर्रा मैं पाव-आध-पाव शराब पीता हूँ—चाहे ठर्रा हो चाहे विलायती । कोई नौकरी नही, कोई खास बिज़निस

नही, लेकिन चाहिए रोज वही उमरख़ैय्याम वाली चीजे ! लेकिन ईश्वर की बदख्याली देखो—किस्मत मिली चेतराम को और दिल मिला मुझे। वह जो दिल्ली वाला गोरेमल है बिना आँख का साँप, लेकिन दोनो ओर मुँह है जिसके, वह तो कारूँ का खजाना साबित हुआ चेतराम के लिए।"

"साले को जैसे पता था कि यह जमाना आयेगा, तीन-तीन गोदाम, चेतराम का सारा घर, सरजू सुनार वाले घर का सारा गोदाम, सारा-का-सारा ठुँसा था गेहूँ और चावल से। किस भाव से खरीदा और किस भाव बेचा ! सच, रातो-रात घर भर लिया सोने-चाँदी से।"

"सुना है सोने की ईंटे और चाँदी की सिलें खरीदी गई है, जिससे घर या बैंक मे कही रुपये का पता न चले। तिस पर चेतराम रोता फिरता है कि उस पर दिनों-दिन इन्कम टैक्स बढता चल रहा है।"

"चार आने और बारह आने के रेशो से सोने की ईंटें और चाँदी की सिलें बाँटी गई हैं चेतराम और गोरेमल मे। ससुर बारह आने वाला, और दामाद चार आने वाला !"

"अजी गोरेमल ने जो कामधेनु बाँध दिया है चेतराम के घर ·· वह रूपाबहू जो है ! हाय हाय, क्या औरत है ! पता नहीं किस काठी की है। लगता ही नही कि ससुरी की इतनी उमर है। कैसी ठाकुरद्वारे में परिक्रमा करती है !"

"सुरजा के बाद पता नहीं क्यो, कोई और बाल-बच्चा नही हुआ उसे !"

"अजी कोई भभूत-प्रसाद खा लिया होगा ठाकुरजी के चरनो मे !"

"लेकिन खूब रुपये देता है 'वारफंड' मे चेतराम। ऊपर से पुलिस को घूस, कांग्रेसियो को गुप्तदान और पता नहीं किस-किसको क्या-क्या !"

"हाँ हाँ, रुपये-पैसे का मोह उसे नहीं है, यह तो बात ज़रूर है।"

"अजी सब ब्लैकमार्किटिंग है यह 'वारफंड', 'कांग्रेस फंड' और दुनिया का फंड !"

"कौन है बस्ती-भर मे जो ब्लैक मे नही फँसा है। बडे-बडे लोगो की कण्ठी टूट गई। जरा सोचो तो, इतनी दौडधूप, इतनी सरगर्मी और जिन्दगी की तेज़ी और भी कभी थी ?"

"तभी कोई भी जो कुछ भी न कर डाले थोडा ही समझो! सोचने-विचारने की किसे फुरसत है भइया!"

३

बाज़ार एकतरफा चल रहा था और बस्ती मे हर एक को फ़ायदा-ही-फायदा था। कोई बेकार नहीं बैठता था, एक क्षण के लिए भी बेकार नहीं। बडे-से-बडे सट्टेबाज अपनी आदत को छोडकर परमिट और लाइसेन्स के पीछे पड गए थे। जो अपनी आरामतलबी की आदत से मजबूर कभी बस्ती से बाहर कही आना-जाना नही पसन्द करते थे, उनके भी पैरो मे शनिश्चर बैठ गए। कहाँ है दिल्ली, और कहाँ है उस डाइरेक्टर का बँगला, और कौन है साहब का ड्राइवर, क्या है साहब की कमजोरी? कहाँ है लखनऊ, कौन है कन्ट्रोलर, कौन है उसका पी० ए०, और उस पी० ए० की प्रेमिका कौन है? कहाँ है शिमला, कहाँ है वह अगरेज आफीसर? वह कहाँ कब पीता है? कहाँ कब नाचता है? एक अर्ज़ी, अनेक डालियाँ हर किस्म का तोहफा, हर तरह की भेंट, चाहे जान लो, चाहे माल लो, लेकिन लो कुछ और दो कुछ! फिर एक लाइसेन्स, एक परमिट और एक दस्तखत, एक सरकारी मुहर, फिर राज्य अपना!

गद्दी अपनी!

एक घडी की बादशाहत!

चमडे के सिक्के!

सोने-जवाहरात के सिक्के!

फिर इन्क़लाब जिन्दाबाद। चाहे जो 'वारफंड' मे लो, चाहे जो काग्रेसदान मे दो। कमाना बे-पूँजी की कमाई, बिना मूलधन के लखपती ! यह है आर्य-समाज का चन्दा, यह है गोशाला की रकम, यह है हनुमानजी को, और यह पुजारियों को, जो लाला लोगो के नाम पर मन्दिरों में माला फेरते हैं कि लालाजी कहीं पकडे न जायँ, कि सेठ जी कही धर न लिये जायँ, कि सेठ को परमिट मिले, लालाजी खुशी-मंगल से घर लौटे ! तन्दुरुस्त रखे भगवान्, बहुत दिया है, दो पुश्त बैठ के खाएँ !

कमाना और खर्च करना !

कमाना और फूँक देना !

कमाना और गाड के रख लेना—न कुत्ता भूँके न पहरू माँगे !

कमाना और बाँटके खाना—यह पुलिस है, यह चुंगीवाला है, यह स्टेशन मास्टर, यह माल बाबू, यह चौकीदार, ये कुली, ये ठेलेवाले। ये हैं इसपेक्टर साहब, इनकी खातिर करो। बडे राजा आदमी है, एक पैसा भी घूस नही, ब्लैक मे आग लगा देते है। सख्त नफ़रत है इन्हे ब्लैक से, रिश्वत से। सोशलिस्ट विचार के है, रात को खद्दर पहनते हैं। गाधी टोपी अटैची मे है। बहुत पढ़ते है, तभी पीना पड जाता है। बडे दुखी है अँग्रेजो के अत्याचार और उनकी भयानक नीति से। तभी जी बहलाने, और गम गलत करने के लिए नाच-गाना पसन्द करते है ! बेचारे हर रात सिनेमा देखते है ! हरदम तो सिगरेट पीते है, कितना काम है सर पर ! 'काश, अपना राज्य होता' ! बडे राजा है इसपेक्टर साहब ! कौन देखता है 'डेली स्टाक रिपोर्ट' अरे मारो गोली ! अपना-अपना रास्ता देखो, और ज़िन्दगी जियो ! कौन सदा नौकरी करेगा !

लेकिन जीने की फ़ुरसत है कहाँ ? अभी तो महज़ तैयारी है ! एक मकान और, एक फैक्ट्री और, एक परमिट और, एक लाइसेन्स और, एक सौदा और। और ज़िन्दगी ?

दिल्ली से गोरेमल के दो पत्र आ चुके कि सूरज की पढाई बन्द कर दी जाय, उसे दुकान पर बिठाओ और धीरे-धीरे उसे जिम्मेदार बनाओ। चेतराम सूरज को बिना यह बताए कि गोरेमल की क्या मशा है, उसे कभी-कभी दुकान पर बैठाता, कभी गद्दी सौंपकर यूँही इधर-उधर घूम आता और जो भी उसे मिलता उससे वह कहता फिरता कि 'मुझे तो फुरसत है, गद्दी का सारा काम सूरज निपटा लेता है। बड़ा ही लायक़ और जिम्मेदार है। सपूत है सपूत, सच का दायाँ हाथ है। और सूरज जब कॉलेज जाने लगता, तब चेतराम उसे देखकर एक क्षण के लिए अनायास ही उदास हो जाता। गोरेमल की चिट्ठी निकालता और उस पर धीरे-धीरे कलम चलाने लगता, जैसे वह उस पत्र को अपनी अस्पष्ट लिखावट से मिटा देना चाहता हो, पर उसे डर लग रहा हो, उसकी हिम्मत पस्त हो रही हो।

पत्र पर वह तब तक अपनी क़लम फेरता रहता, जब तक उसकी आँखों के सामने से सूरज ओझल नहीं हो जाता।

विपिन हाईस्कूल में लगातार दो वर्ष फेल होकर मन से आवारा है, पर तन से दूकान पर पिताजी के सग बैठता है।

पहलाद एफ० ए० फाइनल की परीक्षा देगा, और अभी से इम्तहान पास करने के लिए अनेक तरीके तैयार कर रहा है—पर्चा आऊट हो जाय, इम्तहान हाल मे कॉपी बदलवा दी जाय, नकल मारी जाय, अथवा इग्ज़ामिनर का पता लगे।

हीरालाल इस वर्ष इन्ट्रेन्स की परीक्षा देगा। बड़ा तेज़ है पढ़ने में। आर्य समाज का जो वेद है न, उसके अनेक मन्त्र उसे याद है।

रजुआ 'राबर्ट्स कम्पनी की फैक्ट्री' मे कपास-कारख़ाने में काम करता है, साठ रुपये महीने उसकी तनखाह है। वह सात महीने के एक बच्चे का बाप भी हो चुका है।

ताले अर्थात् तलतमुहम्मद 'साहब के पेंच' मे गेटमैन है। अभी चालीस रुपये पाता है।

और जगनू, चेतराम की कोशिश से तथा पैंसठ रुपये रिश्वत देकर म्युनिस्पेलिटी में लैम्पचौकीदार है। किराना मुहल्ला और महाजन टोले की गलियों के मोड़ों पर लगे म्युनिसिपल लैम्पपोस्टों में लालटेन जलाता है।

रम्मन पूरा घर-गृहस्थ हो गया है। डेढ़ वर्ष से ऊपर हो रहे हैं उसकी पत्नी आ गई है। रम्मन का अर्थ हो गया है रुपया। 'किरोमिन आयल' का लैसंस मिला है उसे। हफ्ते में तीस दिन का 'कोटा' मिलता है। 'परमिट' और 'म्युनिसिपल कार्ड' के आधार से ही जनता तेल खरीद सकती है, वैसे नहीं। 'कफन' के कपड़ों का भी कोटा अभी पिछले महीने रम्मन ने कलक्टर साहब से मजूर कराया है। लोग कहते हैं कि कलक्टर के पेशकार को रम्मन ने सात सौ रुपये दिये हैं। और टी० आर० ओ० दफ्तर के बडे बाबू को रम्मन ने एक 'रेडियो सेट' भेंट किया है। छेदामल और बसता ने रम्मन बेटा से कह रखा है, "भगवान् जो हैं न! वे जिस वस्तु से प्रसन्न रहे, उससे पीछे नहीं हटना चाहिए, वे खुश हैं तो असंख्य हाथ है उनके!"

बसंता ने एक पहाडी सुग्गा पाला है, साढे तेरह रुपये मे मिला है—पढा-पढाया हुआ। दिन-भर उसका पिजरा दूकान में टँगा रहता है, और रात को बसन्ता के पलग के पास।

हर शाम को, जब रम्मन बिलकुल लापता हो जाता है, तब छेदामल अपने सुग्गे से कहता है, "पट्टू! राम-राम कहो!"

तब पट्टू उत्तर मे कहता है, "मिट्टू! बटन्टा! दूड मेवा डाओ!"

बसता मेवे लाती है। तब बारी-बारी से पति-पत्नी दोनों पूछते हैं, "पट्टू! रम्मन का हालचाल बताओ!"

पट्टू कई बार सीटी बजाता है, फिर कहता है, "बटन्टा! आट टो ठीट ठा, कड बुडा था (बसता, आज तो ठीक था, कल बुरा था)।

दूसरे दिन से बाहर से छेदामल, भीतर से बसंता रम्मन पर, छिपे-छिपे कडी निगरानी रखने लगे। वे अपने दोनों मुनीमों से कह रखते

थे कि, 'देखो, तिजोरी मे रुपये मत रखा करो, किसी भी हालत मे ढो-ढाई सौ रुपये से ज्यादा नहीं !'

उसी समय पिंजडे से पट्टू बोल उठता, "नाय नाय·· ना· ना बैंक नै · बैंक नैं मिट्टी···मिट्टी मै मिट्टी · "

छेदामल पिंजडे को लिये घर में भागता, क्योंकि पट्टू तो अपनी बोली से लोगों को सूचना देने लगता कि छेदामल का रुपया बैंक मे नहीं, जमीन मे गाडा जा रहा है !

वैसे छेदामल रम्मन की लायकी, उसकी कमाई से इतना प्रसन्न है कि रम्मन के 'पाकेट ख़र्च' के लिए सौ रुपये प्रति सप्ताह वह बुरा नहीं मानता। हाँ, उसे बुरा केवल तब लगता है जब रम्मन छेदामल को बुत्ता पढाकर कभी-कभी जमा का खर्च कर देता है और खर्च का जमा तथा जब वह हिसाब ही पी जाता है।

लेकिन छेदामल की कभी हिम्मत नहीं पडती कि वह रम्मन का खुलकर विरोध करे या उसे अपने मन की प्रतिक्रिया जान लेने दे, क्योंकि कई बार रम्मन छेदामल को धमकी दे चुका है कि वह सब छोडकर जा सकता है, गोद लिया है तो क्या ख़रीद रखा है ? फिर वह पिस्तौल दिखाता है।

एक पिस्तौल उसने सूरज को भी भेंट की है, लेकिन पता नहीं सूरज ने क्या किया उस पिस्तौल का !

कई दिनो से कॉलेज मे 'वारफड' का चन्दा वसूला जा रहा था। अगले दिन रामपुर के नवाब के सग कमिश्नर साहब का आगमन था। 'वारफड' के सिलसिले में तहक़ीकात के साथ-ही-साथ पूरे दिन फर्जी लडाई का प्रोग्राम होने वाला था। इस प्रोग्राम के पूरे ख़र्चे का ज़िम्मा चेयरमैन साहू गुरुचरनलाल ने ले रखा था।

आधी रात के समय हनुमान वाटिका मे 'स्टूडेण्ट काग्रेस' की ओर

से एक गुप्त मीटिंग हुई, अलीगढ़, बरेली और मुरादाबाद से भी कुछ विद्यार्थी कार्यकर्ता आये थे। सूरज के तीनों प्रस्ताव पास किये गए, कि कालेज बिल्डिंग पर फ्लैग लगाया जाय, कमिश्नर साहब और नवाब साहब को काले झण्डे दिखाये जायँ, 'वारफण्ड' का 'बायकाट' हो और स्थिति आने पर व्यक्तिगत सत्याग्रह किये जायँ।

उस मीटिंग मे कुछ ऐसे भी नवयुवक तथा बुजुर्ग लोग थे, जो विद्यार्थी न थे। बुजुर्गों मे मास्टर चन्दूलाल थे, तथा नवयुवको मे एक जगनू भी था। मीटिंग समाप्त होते-होते जगनू उठकर बोलने लगा, "मै आप सबको आगाह कर देना चाहता हूँ कि आप लोग बड़ा दरवाज़ा, ऊँची हवेली और बज़ाजा टोले पर बहुत विश्वास न कीजियेगा। इन मुहल्लो के नौजवान हमे धोखा दे सकते हैं, और उनके माँ-बाप महज़ व्यापारी है, दुनिया की हर चीज़ को वे नफा-नुकसान की नजर से देखते है। छल-प्रपच, धोखा-धडी, यही उनके व्यापार के तरीके है।"

बडा दरवाज़ा का एक नवयुवक विद्यार्थी मिठाईलाल वार्ष्णेय विरोध-स्वर में बोला, "कृपया अपनी बात का प्रमाण दीजिए, वरना आप पर, नही-नहीं, तुम पर डिसिप्लिन का एक्शन लिया जा सकता है।"

सूरज ने दोनों को शान्त करना चाहा, पर मास्टर चन्दूलाल ने सूरज के कान मे धीरे से कह दिया, "बोलने दो जगनुआ को उसके पास कुछ फैक्ट्स फ़िगर्स है।"

जगनू कहने लगा, "कितना सबूत चाहिए आपको? सबूत है— 'वारफण्ड', लखनऊ-दिल्ली में जो यहाँ से डालियाँ चढ़ रही हैं, परमिट, लाइसेन्स, कोटा, और ब्लैक के लिए जो बडी-से-बडी रकमें इधर-से उधर हो रही हैं।"

"यह तो व्यापार है, हमसे इससे क्या मतलब?" मिठाईलाल इन्क़लाबी स्वर में कहा, "ये काम तो पूरी बस्ती मे हो रहे हैं। कौन दूध का धुला इस बस्ती मे जो ये काम नहीं कर रहा है? क्या गोपाल मुहल्ला और बीसिरा मुहल्ला इन कामों से दूर है? क़तई नहीं।"

"कह दूँ मिठाईलाल ?" जगनू का मुँह लाल हो आया। "भूल गये इस साल की होली ? विदेशी कपड़ो की होली जलाने की बात पास हुई थी न ! पर पूछिए रामलखन पनवाडी से। आप लोग पूछ लीजिए चोथराम हलवाई से, पूछिए जैहिन्द टेलरमास्टर से, पूछिए आजाद रेस्टोरेण्ट के जियालाल से—बडा दरवाज़ा, ऊँची हवेली और बजाजा टोले की होली मे विदेशी कपडों के बजाय खद्दर जलाये गए है, क्योंकि खद्दर के कपडो से सस्ते उनके घरो मे, उनके पास कोई विदेशी कपडे नहीं थे, पर बस्ती को उन्हे दिखाना जो था कि उन्होंने भी विदेशी कपडों की होलियाँ जलाई है !"

"भाई मुझे पता नहीं, मै सो गया था उस रात," मिठाईलाल वार्ष्णेय ने कहा।

जगनू कहता गया, "लोगों ने पैसों के ज़ोर में गरीबों के घरो से ओढने-बिछाने की कथरियाँ और उनके कपडे खरीदकर उनसे होलियाँ जलाई हैं।"

चारों ओर से 'शेम' 'शेम' के स्वर उठने लगे, पर उसी बीच मुस्कराता हुआ मिठाईलाल बोला, "मै लज्जित हूँ आप लोगो के सामने। और उन मुहल्लो की ओर से भी लज्जित हूँ। इस शर्म को दूर करने के लिए मै आप लोगो से वादा करता हूँ कि बिना किसी सीढ़ी के मै कॉलेज बिल्डिग पर 'नेशनल फ्लैग' लगाऊँगा।" "हियर-हियर ! इन्क़लाब ज़िन्दाबाद !"

हनुमान वाटिका से सीधे कॉलेज आकर मिठाईलाल ने साथियो के सामने अपने व्रत को पूरा कर दिखाया। सुबह होते-होते पुलिस, कॉलेज अधिकारियों तथा विशेषकर बाहर से आये हुए हाकिम-हुक्कामो मे जैसे तूफ़ान मच गया। आर्म्ड पुलिस, सिविक गार्ड्स, कुछ मिलिट्री सोल्जर्स कॉलेज के सामने कुछ ही क्षणों मे जमा हो गए। कलेक्टर साहब के संग कमिश्नर साहब और नवाब साहब मुरादाबाद से चल पडे थे और एकाध ही घण्टे में बस्ती पहुँच जाने वाले थे।

प्रिंसिपल मसुरियादीन साहब, एस० डी० ओ०, एस० पी० तथा चेयरमैन के सामने कच्ची मछली की तरह तडप रहे थे। वे अपने हाथ से झण्डा नहीं उतारना चाहते थे और वे सबसे हाथ जोड-जोडकर कह रहे थे, "मेरा हार्ट वीक है, मुझसे इतने ऊपर चढा नहीं जायगा, सीढ़ी देखते ही मेरा दम उखड जाता है, मेरा हार्ट फेल हो जायगा, मै क्या करूँ ?"

सूरज के स्वर के साथ विद्यार्थियो का एक जत्था कॉलेज के बन्द दरवाजे पर नारे लगा रहा था—

बद दरवाजे तोड दो!
अंगरेजो भारत छोड दो!
हमारे नेता जेल मे क्यों?
यह 'वर्ल्डवार' इस देश मे क्यो?

मिठाईलाल ने नारे लगाना शुरू किया—

अपने देश मे अपना राज!
यही तिरगा है सिरताज!

सूरज ने एकाएक चीखकर नारा दिया—

धड से शीश उतर जाये!

सारे विद्यार्थियो से एक ही स्वर गूँजा—

पर उतरेगा नहीं तिरंगा!
सुनो फिरगा!
सुनो फिरंगा!
इन्क़लाब ज़िन्दाबाद!

क्रोध से पागल अंग्रेज़ एस० पी० ने एस० डी० ओ० और दारोगा-कोतवाल को गाली दी और बेतरह उन्हें डाँटा। उन सब ने चेयरमैन और प्रिंसिपल साहब को गालियाँ दी। प्रिंसिपल साहब हाथ जोडे, आँखो में आँसू भरे तूफ़ान की तरह उमड़ते हुए विद्यार्थियों के सामने खडे हुए, पर कुछ बोल नहीं पाते थे। उनके दायें-बायें आगे-पीछे आर्म्ड पुलिस

और मिलिट्री के कुछ सैनिक खडे थे।

विद्यार्थियो ने देखा, झण्डे को उतारने के लिए चेयरमैन साहब छत पर चढाये गए हैं। एकाएक एक ही गति मे लोहे का वह अलीगढी फाटक चडमडा कर टूटा, और ज्योंही विद्यार्थियों का थमा हुआ तूफ़ान आगे बढ़ने को हुआ, उनके ऊपर बदूकों के कुन्दे बरसने लगे, और उसी बीच 'टियरगैस' फैला।

प्रिंसिपल मसुरियादीन के सग बारह विद्यार्थी सिविल हास्पिटल मे ले जाये गए। सूरज, मिठाईलाल तथा बाहर से आये हुए चार अन्य विद्यार्थी कोतवाली मे बन्द हुए।

मिठाईलाल रह-रहकर बेहोश हो रहा था। कुन्दे की मार तथा टियरगैस के बीच से निकलकर केवल वही कॉलेज छत पर पहुँचा था और जिस समय चेयरमैन साहब झण्डा उतार रहे थे, उसी समय मिठाईलाल ने चीख़कर कहा था—

चोर!

चोर!!

और उसने कसकर दोनो हाथों मे तिरंगे को साध लिया, कि वह कहीं झुकने न पाये, कोई उसे उतार न सके।

उसी क्षण किसी ने मिठाईलाल के कन्धे पर इतने ज़ोर से प्रहार किया कि वह झण्डे के संग छत से नीचे आ गया, और उस बेहोशी की दशा मे भी उसकी दोनों मुट्ठियों मे जैसे तिरंगा झण्डा बँधा ही हुआ था—सुरक्षित, समादृत।

कोतवाली मे नजरबन्द मिठाईलाल रह-रह के बेहोश हो जाता था। सूरज तथा चार अन्य नज़रबन्द विद्यार्थियों की चीख-पुकार से क़रीब दो घण्टे बाद मिठाईलाल सिविल हास्पिटल पहुँचाया गया। बस्ती में दफा एक सौ चवालीस लागू कर दी गई।

ए० आर० पी० प्रदर्शन, फ़र्ज़ी लड़ाइयों के नाटक, तथा कमिश्नर साहब, नवाब साहब के स्वागत के कार्यक्रम सफल न हो सके, पर 'वारफण्ड' मे अपूर्व सफलता रही, जैसे वह विद्यार्थी-काण्ड उसी की पक्की भूमिका थी। सारे विद्यार्थियो के घर वाले पकड़-पकड़कर बुलाये गए और 'वारफण्ड' के नाम पर उनसे अच्छी-से-अच्छी रकमे वसूली गईं।

और उसी दिन शाम तक कमिश्नर साहब के संग सब हाकिम-हुक्काम, अपने गाजे-बाजे सहित अपने-अपने धाम चले गए और बस्ती के वे सारे लाला-सेठ, साहु-महाजन, चौधरी लोग, जिन्हे विद्यार्थी-उपद्रव के दण्ड मे 'वारफण्ड' के नाम पर बड़ी-बड़ी रक़मे देनी पड़ी थीं, उन सबने उससे दूनी-तिगुनी यदि नही तो उतनी रकमे उसी रात पैदा कर लीं।

'धुआँधार' के सम्पादक ने सरकार की बड़ी घोर निंदा की थी, तथा अपने सम्पादकीय मे उसने लाल-लाल अक्षरों मे लिखा था .

"बस्ती वालो !
मनाते हो घर-घर खिलाफ़त का आलम
अभी दिल मे ताज़ा है पंजाब का गम।
तुम्हे देखता है ख़ुदा और आलम
यही ऐसे जख्मों का है एक मरहम।
असहयोग कर दो !
असहयोग कर दो !!
गज़ब क्रान्ति कर दो !
गज़ब क्रान्ति कर दो !!

बस्ती वालो !

तुम्हारी आँखों के तारे, देश के दुलारे, मेरे जान से प्यारे, ख़ून के फुहारे, जेल मे पड़े बेचारे, वे लगायें नारे, बस्ती वालो, इन्क़लाब कर दो !

तुम सब ने कमिश्नर साहब को 'वारफण्ड' के नाम पर बड़ी-से-बड़ी रकमें भेंट कीं, घूस की थैलियाँ दीं, फिर भी तुम्हारे लाडले, देश के प्राण मुरादाबाद जेल में ठूँस दिये गए। यह क्या है बस्ती वालो, क्या तुम अपने चौबीस घण्टे व्यापार के क्षणों में से चन्द घण्टे भी नहीं निकाल सकते? तुम्हारे जवान बेटे जेल में है। तुमसे सरकार इतनी रक़में भी चूस रही है कि तुम सब कम-से-कम बस्ती मे हड़ताल कर शोक प्रस्ताव ही करो, कोई जलूस ही निकालो! अरे यार! कुछ तो ज़िन्दादिली दिखाओ!"

लेकिन सेठ महाजन, साहु-चौधरी लोग करें भी तो क्या? बेचारों को दम मारने की भी तो छुट्टी नहीं देता था व्यापार—अद्‌भुत 'बूम' आई थी 'बिजनेस' पर! कोई कितना कमा लेगा, या कमा सकता है, इसकी कोई सीमा ही नही निश्चित हो रही थी। व्यापार के आगे सब नगण्य था—देश, आज़ादी, बेटा-पूत, सब।

बस्ती के छोटे-छोटे बच्चे जलूस के अभिनय मे जब एक ओर यह गाते थे कि

आज़ादी दीवाना है
जेल की रोटी खाना है!

तब उसी मे कभी-कभी यह भी जोडते चलते थे

जै ब्लैक महाराज की
हाथी-घोड़ा पालकी।
जै कन्हैया लाल की
जै ब्लैक महाराज की।

लेकिन 'राबर्ट्स कम्पनी' 'साहब के पेंच' और 'रैली ब्रादर्स' के कल-कारखाने तथा गोदाम में जमकर हड़ताल हुई। क़ब्रिस्तान वाले बाग से भी दक्षिण अमरूद, नीम, बेल-बेइलिया की झाड में मीटिंग हुई थी, जगनू ने भाषण दिया था।

ठीक पाँचवें दिन सूरज मुरादाबाद जेल से छूटा। पर वह बस्ती न लौटा। मिठाईलाल के दाये पैर के घुटने की हड्डी टूट गई थी, वह अब तक डिस्ट्रिक्ट हास्पिटल मे पड़ा है। उसके पिता महाजन चिरौंजी लाल वार्ष्णेय इतनी अमीर तबीयत के आदमी थे कि वे स्वयं अपने पूत को देखने एक दिन के लिए भी घर से न टले, मुनीम, नौकर-चाकर को भेज-भेजकर मिठाईलाल की सेवा और पूछताछ बराबर कराते रहे।

सूरज मिठाईलाल के सग रहा। मिठाईलाल के पूरे पैर मे प्लास्टर बँधा था, लेकिन पट्ठा सूरज को बहलाने के लिए गा उठता—

सोरठ ठाढी महल पै सुखवै लम्बे केश।
जैसे छौना नाग के चाटन निकले ओस॥

सूरज की उदासी जब इस पर भी कभी-कभी नहीं टूटती थी, तब वह हकलाकर कहता था, "सोरठ ठाढी महल पै, अर्थात् सतोष ठाढी महल पै चितवै तेरी राह।"

अगले दिन भोर मे ही मधू बुआ और सतोष के संग वहाँ राजू पण्डित आ पहुँचे। मिठाईलाल की माँ ने राजू के हाथ कुछ रुपये भेजे थे। रुपये मिठाईलाल को देकर वे शायद कही बाजार चले गए।

संतोष कुछ नाश्ता बनाकर ले आई थी। बुआ ने स्टेशन मे सतरे खरीदे थे। संतोष ने नाश्ते का छोटा-सा डिब्बा मिठाईलाल के सामने खोलते समय सूरज को बाँकी नज़र से देखकर भीगे-भीगे स्वर मे कहा, "लगता है रात को सोते नहीं, कैसे चढ़ी-चढी आँखे है!"

"मैं तो रात-भर सोता हूँ," मिठाईलाल ने नाश्ता फाँकते हुए कहा, "इसी सूरज को नीद नहीं आती। वहाँ सूने बरामदे मे घूमता है, जेल की दीवारों पर झूठे-झूठे न जाने क्या-क्या गोदता रहता था। जब से यहाँ मेरे पास आया है, बुआजी देखिए, मेरे सारे प्लास्टर पर इसने पेंसिल से क्या क्या गोद रखा है।"

बुआ ने प्लास्टर पर तनिक भी ध्यान न दिया। सतरा छील-छील-कर वह सूरज को खिलाती जा रही थी और अपने असख्य प्रश्नो के बीच से एकटक वह सूरज का मुँह निहार रही थी।

सन्तोष मिठाईलाल के प्लास्टर पर इधर-उधर से पढ रही थी—कही लिखा था—'इन्क़लाब ज़िन्दाबाद। भारत माता की जै।' कही-कही भारत के आगे 'माता' शब्द काट दिया गया था और वहाँ अंग्रेज़ी मे लिखा था 'मदर'। एक जगह 'मदर' शब्द को भी बडी बेरहमी से काटकर वहाँ बडे गहरे अक्षरो मे लिखा था, 'नो मदर, द वेरी आइडिया आफ मदर इज़ नान्सन्स—फूलिश।'

एक जगह इस तरह लिखा हुआ था—'गुलामी, भारतवर्ष, अंग्रेज, दमन-चक्र—गोरेमल, चेतराम, चोरबाजार, ब्लैक मार्केट! वट आई एम सूरज, डू यू नो!' कुछ काटकर, कुछ मिटाकर आगे बहुत ही बारीक अक्षरों मे लिखा था—

'सोरठ ठाढ़ी महल पै सुखवै लम्बे केश।
जैसे छौना नाग के चाटन निकले ओस॥'

सोरठ काटकर अंग्रेजी में लिखा था—'सन्तोष'। आगे लिखा था मधू बुआ और उसके ऊपर लिखा था—'ईशरी द गॉड' आई एम स्लेव, स्लेव दि वर्स्ट। मिठाईलाल ज़िन्दाबाद! हियर-हियर।'

यह देखते ही कि सन्तोष मिठाईलाल के प्लास्टर को पढ रही है, सूरज बडी तेजी से अपना रूमाल भिगोकर प्लास्टर की लिखावट मिटाने लगा।

अपने कॉलेज के, स्थानीय स्कूल-कॉलेजों के तथा दूर-दूर के विद्यार्थी कार्यकर्ता सूरज से मिलने आते थे। मिठाईलाल को देखने के लिए सदा कुछ-न-कुछ लोग वहाँ मौजूद रहते थे।

वहाँ के विद्यार्थियो ने एक कवि-सम्मेलन किया, उसमे सूरज को

सभापति बनाया गया। सम्मेलन के उपरान्त सूरज ने एक अत्यन्त जोशीला भाषण दिया। उसमे इतनी भावुकता उमडी थी कि बार-बार उसकी आँखे भर-भर आई थी।

समारोह के उपरान्त छोटे-छोटे विद्यार्थियो ने अपनी-अपनी 'आटोग्राफ बुक' मे सूरज के 'आटोग्राफ' लिये। हस्ताक्षर करते समय सूरज का हाथ इस तरह काँपता था जैसे वह अपने-आपसे भय खा रहा हो। पर उसकी आँखो मे अनवरत एक भावदृश्य उभर रहा था—काले समुद्र मे कोई शीशे का पहाड तैर रहा है, उस पहाड की चोटी पर कोई गोताख़ोर बैठा है, जिसके हाथ मे सोने की बाँसुरी है और उसके पैर उस चोटी मे कसकर बाँध दिये गए हैं और उनमे कीलें जड दी गई है। फिर भी वह बाँसुरी बजा-बजाकर उस काले समुद्र में कूदना चाह रहा है।

आठ-दस दिनो के बाद सूरज मिठाईलाल के सग किराये की मोटर से बस्ती लौटा। मिठाईलाल के पैर पर अब तक प्लास्टर बँधा था। जिस समय वह मोटर मिठाईलाल के घर के सामने रुकी, समूचा कॉलेज, जैसे वहाँ घिर आया, खूब कस-कसकर नारे लगाये गए। मिठाईलाल और सूरज फूलों के हार से पट गए। पर मिठाईलाल एक ही पैर से चल रहा था—बायाँ पैर और दाईं काँख में बैसाखी। प्रिंसिपल मसुरियादीन साहब उसे देखते ही रो पडे थे।

तीन दिन से गोरेमल आ टिका था। वह इस बार विशेषकर सूरज से मिलने आया था। बीच-बीच में जब-जब वह आया था, अपने 'बिज़नेस' मे इतना डूबा रहता था कि उसे सूरज से मिलकर कोई फ़ैसला देने तक की फ़ुरसत न रहती थी।

पुलिस के आक्रमणों से अपनी रक्षा के लिए गोरेमल ने चेतराम को अन्तिम फ़ैसला दे दिया था, 'सूरज को अपने घर से निकाल बाहर कर दो, वह कहीं और रहे और उसके खाने-पीने, ख़र्चा-ख़ुराक का प्रबन्ध छिपे तौर से कर दिया करो!'

और चेतराम की ओर से एक दरख्वास्त लिखवाकर पुलिस-अधिकारियो को दिलवा दी गई थी कि सूरज से चेतराम के घर का कोई सम्बन्ध नहीं है, वह उस घर से अलग रहता है।

दारोगा, दीवान और मुंशी को गोरेमल स्वय यह सूचना देने गया था। दरख्वास्त के संग चेतराम को भेजा था।

सूरज जब अपने मुहल्ले मे प्रवेश कर रहा था उसी समय उसे सूचना मिल गई थी कि गोरेमल आया है। इसलिए जब वह चौराहे से अपने घर की ओर मुडा, उसने अपने को बिलकुल अकेला कर लिया।

वह ज्योंही सडक से ऊपर आकर घर में प्रवेश करने जा रहा था, गोरेमल ने ठण्डे स्वर मे टोका, "रुको, यह घर नेतागिरी के लिए नहीं है। इस घर में लक्ष्मी बसती है, इसमें भाग्यवान रहते हैं।"

"क्या मतलब ?" सूरज रुक गया।

"चेतराम से पूछो—अपने बाप से," गोरेमल की त्योरी चढ गई। "मुझसे बात करने के लिए पहले जाओ कहीं तमीज सीखो।"

"आप ही से क्यों न सीख लूँ।"

"चेतराम ! सुनाओ इसे जल्दी अपना फैसला, वरना मुझे ही अपना फैसला देना होगा। ज़रा गौर करने की बात है।"

भीतर से दहलीज़ में मधू बुआ, रूपाबहू, गौरी आ खडी थीं। चेतराम ने जैसे रोते स्वर मे कहा, "हाथ जोडता हूँ, एक बार और क्षमा करो मेरे सूरज को, अब वह अगर फिर इस तरह राजनीति मे पडेगा तो ठाकुर भगवान् की कसम, मै उसे निश्चय ही घर से बाहर कर दूँगा।"

"नहीं, यह नहीं हो सकता।" कुछ क्षण चुप रहने के बाद गोरेमल ने कहा, "महज़ तीन रास्ते हैं—सूरज माफ़ी माँगे, वह मुझसे क़सम खाए कि आज से वह राजनीति मे नहीं पडेगा, और दूसरा रास्ता यह है चेतराम कि तुम सीधे-सीधे सूरज को अपना फ़ैसला दो और यदि

ये दोनों रास्ते नही तो तीसरा रास्ता मेरा होगा कि मैं स्वयं यहाँ से अपना सम्बन्ध तोड लूँगा। यह जरा गौर करने की बात है।"

चेतराम शून्य मे इस तरह देख रहा था जैसे वह विक्षिप्त हो रहा हो।

"मै समझ गया। पूरी बात समझ गया, आपका फ़ैसला भी समझ गया।"

"क्या समझोगे तुम? लाख जन्म भी नही समझ सकते तुम मुझे। अगर तुमने मुझे समझा ही होता तो आज क्या कहने थे!"

"मै आज एक-ही बात जानना चाहता हूँ, यह घर किसका है?" सूरज ने पूछा।

"बताओ इसे चेतराम!"

"हमारा है," चेतराम जैसे रो देगा।

"फिर यह फ़ैसला देने वाला कौन है?"

चेतराम ने दौडकर सूरज का मुँह थाम लिया और उसकी बाँह पकडे वह सडक की ओर भागा—ऐसे भागा जैसे विपद्काल में कोई अपनी पूँजी लेकर भागता हो। और गली-गलियारों से बढता हुआ चेतराम सूरज के सामने वस्तुस्थिति स्पष्ट करने लगा—"पुलिस बेहद तंग करती है, घूस देते-देते मैं तो नहीं थका, पर गोरेमल को सब मालूम हो गया। उसने पुलिस से तुम्हारे घर की रक्षा के लिए यह उपाय सोचा है।"

चेतराम ने इधर-उधर देखकर अपनी वह दरख्वास्त निकाली जिसे उसने पुलिस-दफ्तर में न देकर अपने ही पास छिपा लिया था।

दरख़्वास्त का मज़मून देखते ही सूरज के भीतर कुछ रो पडा। उसने चेतराम से रुँधे कण्ठ से कहा, "चलो, इस दरख़्वास्त को पुलिस-दफ्तर मे दो, वरना मै अभी गोरेमल के सिर से अपना सिर टकरा दूँगा और कभी लौटकर न आऊँगा तुम्हारे घर।"

चेतराम ने इस परिणाम को कभी सोचा ही न था। सूरज आगे-

आगे चला, चेतराम पीछे-पीछे। पुलिस-थाने के फाटक पर एक बार चेतराम ने फिर भरी आँखो से सूरज को देखा, पर सूरज अटल था अपने भावो मे।

चेतराम जब थाने के भीतर से बाहर आया वहाँ सूरज न था।

चेतराम उस बच्चे की तरह इधर-उधर भटकने लगा जिसकी माँ किसी दूर देश के रेलवे प्लेटफार्म से खो गई हो। चेतराम की धोती ढीली थी, पुछेटा खुलकर सडक पर घिसट रहा था, पर जैसे उसे सम्हालने का ज्ञान तक न था।

सहसा सरन नाई की दृष्टि चेतराम पर पडी। उसने बढकर बडे अदब से चेतराम की धोती सम्हलवा दी। चश्मा उतारते हुए बोला, "ऐसी भी क्या परेशानी, क्या मंजर, क्या गम है ?"

चेतराम ने सरन नाई का शेर पूरा न होने दिया, उसने ऐसी दृष्टि से देखा कि सरन अवाक् रह गया।

रिक्शे पर बैठकर चेतराम आगे बढ गया। पूरी बस्ती मे वह रिक्शा लिये घूमता रहा, सूरज के समस्त हितू दोस्तो से पूछता रहा, पर सूरज का कही पता न था।

चेतराम का जी हो रहा था कि वह भी घर न लौटे, पर उसे ऐसा लग रहा था जैसे उसके आगे-पीछे गोरेमल चल रहा है—सामने का गोरेमल अपनी दोनो हथेलियो पर धन से भरी हुई तिजोरियाँ लिये है और पीछे के गोरेमल के हाथों मे दो चाबुक है—बिजली मे बुझे हुए चाबुक—जैसे राईसत्ती के मैदान मे वह सरकस वाला आया था और उसके हाथ मे चाबुक थे।

सूरज उसी साँस मे चलकर स्टेशन गया और अलीगढ पहुँचा। वहाँ से अम्बाला गया। सारी यात्रा में वह केवल यही सोचता रहा कि वह ईशरी फूफा से मिलेगा। जब सूरज को घर से अलग ही रहना है तो वह अन्यत्र क्यो रहे ? जेल ही मे वह क्यों न रहे। वह भी क्रान्तिकारी दल मे मिल जायगा। बम्ब फेकेगा। पहला बम्ब गोरेमल

पर और दूसरा बम्ब ! और दूसरा बम्ब । सूरज कोई उत्तर ही नही पाता था। दूसरा बम्ब किस पर ? चेयरमैन साहूगुरचरन लाल ? कलक्टर ? कमिश्नर ? गवर्नर ? गवर्नर जनरल ? फिर किस पर ? सूरज मे इन निर्णयो पर गाधी की अहिंसा जाग उठती थी और उसे ये सब निर्दोष, विवश और दीन लगते थे। जिस क्षण वह अम्बाला पहुँचा, उस समय उसके मन मे एक उत्तर आया—दूसरा बम्ब सूरज अपने ऊपर फेक लेगा। लेकिन ऐसा वह क्यो करेगा ? वह कभी ऐसा नहीं कर सकता। दूसरा बम्ब सदा उसके पास सुरक्षित रहेगा।

अम्बाला जेल मे ईशरी का कोई पता न चल सका। सूरज वहाँ से बम्बई जाने का निश्चय कर रहा था, पर मधू बुआ उसे इस तरह याद आ रही थी कि लगता था चलती सडक पर वह रो देगा, लगता था जैसे उसके भीतर धुआँ उठ रहा हो।

पाँचवे दिन सूरज बस्ती लौटा। मिठाईलाल के घर गया और पहुँचते ही बोला, "प्यारे झडावीर (मिठाईलाल) ! किसी तरह तुरन्त मेरी बुआ को यह सूचना भेजो कि मै यहाँ हूँ।"

मिठाईलाल हँसा, "और उसको ?"

"और कौन ?"

"जो उसी दिन से, जबसे तुम यहाँ से लापता हुए हो, पागल हो गई है। तुम कहाँ हो, सब से पूछती फिर रही है।"

"सन्तोष ?"

"और कौन, मिठाईलाल ?"

रात के नौ बजे का समय था। सूरज को पाकर मिठाईलाल इतना प्रसन्न था कि वह प्लास्टर-बँधे पैर से एक बैसाखी के सहारे अपने घर से गोपालन मुहल्ले आया। चेतराम के दरवाज़े पर न गया, गोरेमल अब तक टिका बैठा था। वह ठाकुरद्वारे मे गया, राजू पण्डित को सूरज की सूचना दी। राजू पंडित से सन्तोष, सन्तोष से मधू बुआ और मधू-बुआ से चेतराम, चेतराम से रूपाबहू।

अब कालेज छोडकर कहीं और चला जा रहा है। पर मसुरियादीन ने उसे उस प्रीति और स्नेह से देखा कि सूरज के मुँह से निकला, "इस बार मैं निश्चय ही परीक्षा मे बैठना चाहता हूँ।"

बस्ती मे जितने भी लोग एक गज़ मिल के कपडे को सोने के भाव बेच रहे थे, वे सब-के-सब खद्दर पहनते थे, क्योंकि खद्दर से इन्स्पेक्टर लोग डरने लगे थे, गाधी टोपी से जैहिन्द की ढाल खडी मिलती थी।

सूरज गाधी आश्रम मे अपने लिये धोती खरीदने गया, उत्तर मिला धोती नही है। साथ मे पहलाद और विपिन थे।

पहलाद ने कहा, "तुम इस गली मे खडे-खडे देखते रहो, मै लाता हूँ उसी दुकान से धोती, एक नहीं चार।'

पहलाद गया और ब्लैक देकर एक जोडा धोती ले आया।

धोती देखते ही सूरज घायल सिह की भाँति आश्रम की दुकान की ओर झपटा। पर विपिन ने पकड लिया, "गाधीजी ने कहा है कि धीरज से काम लो, विनय और अहिसा से रहो। चलो एक चीज़ और दिखाता हूँ तुम्हे।"

थोडी-सी रात बीती थी। सूरज, विपिन और पहलाद तीनों चौक से होते हुए राष्ट्रीय भाजनालय के पीछे-पीछे घीसिए मुहल्ले मे चौधरी रामनाथ के पिछवाडे पहुँचे।

चौधरी साहब, प्रान्तीय कॉंग्रेस कमेटी के सदस्य हो चुके थे, दरवाज़े पर तिरंगा, आँगन में तिरगा, कच्ची-पक्की दोनों गद्दियो पर खद्दर के बिछावन।

थोडी देर के बाद सूरज ने देखा कि दो-दो, चार-चार, छ-छ. की संख्या मे दूर-देहात के लोग, निरे गाँव वाले, स्त्री-पुरुष, बच्चे —एक-एक तन पर दो-दो तीन-तीन ब्लैक मे खरीदी हुई कोरी धोतियाँ पहने चौधरी रामनाथ के घर में से निकल रहे हैं। पिछवाडे से निकलने वाले लोगों के हाथ मे उनके पुराने कपडे हैं, जिन्हे पहन-पहनकर वे आज सुबह आये थे और अब रात को अपने-अपने घर वापस जा रहे

हैं। लोग एक के आठ-आठ देकर जा रहे हैं, फिर भी इतने डरे-डरे से क्यों हैं? लोग तेजी से चलना चाह रहे हैं, पर उनसे खुलकर चला क्यों नही जा रहा है? लडके-बच्चे तो गिर-गिर पड रहे हैं, स्त्रियाँ हाँफ रही हैं। एक-एक फटी फतुही पहनकर आई थीं, किसी तरह लाज ढके, और जा रही हैं, एक तह, दो तह, तीन तहों मे पहनी हुई तीन साडियाँ लिये!

और रात बीती, थोडी-सी और, सब सो गए। बिजली वाले पंडित को दस-दस के पाँच नोट, नही-नही आज रात को सौ रुपये, कोई बात नहीं। बस्ती की बिजली एकाएक खराब हो गई—'मेन पोल' ही उड गया।

चौधरी रामनाथ के पिछवाडे तीन ठेले रुके। कपडा लदने लगा—राशन का कपडा, परमिट का कपडा, ये है शोलापुरी, फिनले, पिस्तौल छाप मारकीन, कानपुरी गबरून, लट्ठे, ये है अहमदाबाद, बम्बई, नागपुर के मलमल, छालटीन, आबेरवाँ, छींट, तजेब। ये धुली हुई बम्बई मिल्स की जनानी साडियाँ, ये है कोरी छ गज़ी, ये है पंचगजी अडतालीस इची, बावन इची। तीनों ठेले लद गए, फिर उन्हे खद्दर के थान के-थान कपडो से ढका गया। फिर चौधरी रामनाथ के सग सैयामल और उनके पीछे महातान्त्रिक पंडित बमशकर जी ज्योतिषी निकले। तीनों ठेलों के पास कुछ जलाया गया, कुछ पूजा गया, कुछ फूँका गया फिर ज्योतिषी ने कहा, "बमशकर"—और वे ठेले आगे बढने लगे, और वे तीनो पीछे-पीछे।

सैयामल के घर के अहाते में दो-तीन मिस्त्री, चार-छ पल्लेदार पहले से ही अपने काम पर लगे थे। बीच में मिल के कपडे, ऊपर से खद्दर के थान, फिर टाट के सहारे बडी-बडी गाँठे। दो गाँठे बँधकर तैयार थीं, तभी ये ठेले पहुँचे। उसी विधि से इनकी भी गाँठे बँधने लगी—एक गाँठ, दो गाँठ, तीन गाँठ, चार गाँठ—चौथी गाँठ के लिए खद्दर के कपडे चुक गए। अब क्या हो? चौधरी रामनाथ के घर से

पीठ पर लादकर तिरंगे झंडे आये और उनसे गाँठ बँधी। फिर ट्रक आई, पल्लेदारों ने गाँठों की छल्लियाँ जोड़ दीं। ट्रक के आगे तिरंगा झंडा लगा, और ट्रक जैसे हवा में उड़ गई।

चार बजे सुबह से कांग्रेस पार्टी की प्रभातफेरी निकली। चौधरी रामनाथ आगे आगे गा रहा था—

जगदीश यह विनय है जब प्राण तन से निकले,
प्रिय देश रटते-रटते, ये प्राण तन से निकले।

सूरज कटे वृक्ष की भाँति मिठाईलाल (झंडावीर) के सिरहाने बैठा था और उसके आसपास विपिन, पहलाद और जगनू इस तरह एकाग्र बैठे थे, जैसे सूरज को थामे हुए हों।

सब चुप थे, सब उदास थे। ऊपर प्रभातफेरी का स्वर गूँज रहा था। सूरज देख रहा था—तिरंगा झंडा और गोली, तिरंगा झंडा, अपना कालेज, मिठाईलाल की चोट, उसका प्लास्टर बँधा पैर। सूरज देख रहा था—बस्ती की होली, विदेशी कपड़ों के स्थान पर खद्दर के कपड़ों की होली।

अगले दिन शाम के 'धुआँधार' में चौधरी रामनाथ और सैयामल के फोटो छपे तथा आँखों-देखा कपड़े की भयानक चोरबाज़ारी का पूरा विवरण छपा। गांधी आश्रम की घटना भी छपी।

लेकिन 'धुआँधार' और चौधरी रामनाथ से ही इतना भयानक संघर्ष। चेयरमैन साहू साहब, सैयामल दोनों को लेकर चौधरी साहब कलक्टर से मिले। जो बात वर्षों से गुप्त थी, सी० आई० डी० का पूरा जत्था जिस 'धुआँधार' की शक्ति को पकड़ने में असफल था, वह सब-का-सब खोला गया। 'धुआँधार' के सम्पादक मास्टर चन्दूलाल गिरफ्तार किये गए और पूरी बस्ती में मुनादी की गई कि आज से जिस किसी आदमी के हाथ में, दुकान में या कहीं भी 'धुआँधार' देखा

गया उसे छः महीने की सजा और दो सौ रुपये जुरमाना।

गोरेमल अब तक राहु की तरह जमा बैठा था। मास्टर चन्दूलाल की जमानत किससे कराई जाय, सूरज की पूरी पार्टी हैरान थी।

छेदामल और बसन्ता से छिपकर रम्मन ज़मानत लेने को तैयार था। मिठाईलाल का पिता तैयार था, पर आज नहीं कल, आज व्यापार में विशेष 'बूम' आया था, आज उन्हें दम मारने की भी फुरसत न थी।

दुपहरी मे चौक की मर्रापा गली मे सूरज से चन्दनगुरु की भेट हुई। चन्दनगुरु ने कहा, "कुछ ब्लैक दो तो मै कर लूँ जमानत!"

"कितना?" सूरज ने बेहद गरीबी से पूछा।

"महज दो सौ रुपये, क्योंकि तुम एक नहीं दसियों जगह से रुपये पा सकते हो, पर जमानतदार नहीं।'

"तुम्हें शर्म नहीं आती, चन्दनगुरु?"

"जाकर पहले चेतराम और गोरेमल से पूछो कि उन्हें भी शर्म आती है, जो दो सौ के दो हजार बनाते हैं, बिना किसी मेहनत के, काम के और पूँजी के। यार मै तो जमानत दूँगा?"

"अर्थात् बेचोगे अपने को।"

"नहीं यार, महज ज़रा-सा भुनाऊँगा। एक औरत ख़रीद रहा हूँ, उसीमें दो सौ की कमी पड रही है।"

सूरज एकाग्र दृष्टि से चन्दनगुरु को महज देखता रह गया। जाते-जाते गुरु कह गया, "इसमें क्या बुराई, ब्लैक का जमाना है, आख़िर क्या हो इतने रुपयों का? रम्मन ने भी तो उस दिन डेढ़ हजार मे एक माल ब्लैक मे ख़रीदा है। बरेली मे किराये का घर लेकर वहीं रख छोड़ा है।"

गुलजारीलाल, जो चौधरी रामनाथ और चेतराम के सग म्युनिसिपेलिटी की चेयरमैनी के लिए चुनाव मे खड़ा हुआ था और चन्दनगुरु तथा रामनाथ द्वारा खेले गए विश्वासघाती नाटक से परास्त हुआ था, तभी से वह अक्सर बीमार रहने लगा था। दुकान, घर-गृहस्थी का

सारा काम-काज नारायणदास देखता था। बाह्य बीमारी से छुट्टी पाकर अब वही गुलजारीलाल अर्द्धविक्षिप्त-सा हो गया था। नीद बहुत कम आती थी उसे, भूख तो जैसे लगती ही न थी, गरमी-सरदी दोनो मे समान भाव से वह बस चुपचाप सडको पर घूमता ही रहता था।

सूरज जब सर्राफ़ा गली को पार करके बडा दरवाजा की ओर बढ रहा था, सहसा वही गुलजारीलाल ने उसका रास्ता रोक लिया और बडी ही गम्भीरता से बोला, "मुझे ले चलो मास्टर चन्दूलाल की जमानत के लिए, नारायणदास को भी मेरे संग ले लो।"

बडी रात को मास्टर चन्दूलाल मुरादाबाद से लौटे। बीसियों स्वरो मे इन्कलाब के नारे लगे। एक पाँव पर खडा हो मिठाईलाल ने बडा दरवाजा के अहाते मे भाषण दिया।

और दूसरे दिन, ठीक उसी संध्या-समय दूसरा 'चारपेजी' साइक्लो-स्टाइल अख़बार प्रकाशित हुआ। नाम था 'लंकादहन' और 'धुआँधार' की भाँति सब दुकानों, चौराहो और गली-सडकों मे वह बिखर गया।

४

मई की एक रात। शाम ही से बडे ही भद्दे प्रकार की आँधी चल रही थी। पूरी बस्ती की बिजली फेल। आधी रात होते-होते किसी ने चेतराम के पिछवाडे खिडकी की साँकल बजाई, बन्द किवाडो पर बडी आवाज़ें करने लगा।

मधू बुआ जाग रही थी। खिडकी पर आवाज़ सुनते ही उसे ऐसा लगा, जैसे सूरज आया है। बुआ दबे पाँव उठी, धीरे से बढकर किवाड खोलने लगी, "सूरज बेटा, समझ लो कि एक दिन यह बुआ मर जायगी और तुम इसका मुँह भी न देख सकोगे। पता नही कहाँ-कहाँ मारे-मारे फिरते हो। यह तुम्हारा घर, तुम्हीं मे प्राण फँसाकर मैं

यहाँ बँधी बैठी हूँ और तुम हो कि जैसे अपने घर ही को त्याग दिया, मुझे भी त्याग दिया।"

जब किवाड खुले, तब बुआ की आँखें आँसुओ मे इस तरह डूबी थी कि उसे कुछ भी न दीखा। पर दूसरे ही क्षण बुआ भय खाकर चीख़ पडी और बडे ही धडाके से किवाड जैसे अपने-आप बन्द हो गए।

आँगन मे आकर बुआ दम मारने लगी, तब उसे लगा जैसे बाहर बन्द किवाड से लगकर कोई रो रहा है। कौन है वह ? कौन हो सकता है ? सूरज तो नहीं है वह ! चोर ? राशनिग इन्स्पेक्टर कोई ! ख़ुफिया पुलिस, वेष धारण किये ? पर वह रो क्यों रहा होगा ?

बुआ पसीने से तर हो रही थी। घबराहट मे उसने रूपाबहू को जगाया। दोनो बडी हिम्मत से बन्द खिडकी के पास गई।

रूपाबहू ने पूछा, "कौन ? कौन हो तुम ?"

मधू बुआ ने ज़रा और हिम्मत से पूछा, "अजी, बोलते क्यो नहीं ?"

"क्या बोलूँ ! जब मुझे देखकर नही पहचान सकतीं तो क्या महज सुनकर पहचान सकोगी ?"

जिम धडाके से मधूँ बुआ के हाथ से किवाड बन्द हुए थे, ठीक उसी गति से वे खुल गए। बुआ दौडी तो, पर पिछड गई, ईशरी ने बुआ के चरण पहले ही छू लिये।

रूपाबहू को अब भी यकीन नहीं हो रहा था कि वह सामने खडा हुआ आगन्तुक ईशरी है। सिर पर जटा जैसे सूखे-बिखरे बाल, साधुओं जैसी दाढी, खाकी पैंट पर कुरता, पर पाँव नगे और कमर मे दोनों ओर दो पिस्तौलें और कुछ नहीं, महज़ एक पाकेट मे छोटी-सी नोटबुक और काली मिर्चें।

आँगन मे आते ही ईशरी ने पूछा, "सूरज कहाँ है ?"

बुआ और रूपाबहू दोनो चुप थीं, जैसे कटु सत्य ने उनकी वाणी दबोच ली हो।

"जल्दी बताओ, सुबह की गाडी से मुझे भाग जाना पडेगा।"

मधू बुआ ने ईशरी को देखा और जैसे शून्य मे कुछ देखती रह गई, जैसे मन के सारे डोलते पात-पात पर कोई हवा आकर रुक गई। आधी रात को ही कही से मुर्गा बोलने की आवाज़ आई। जैसे आज हर मुहल्ले से आर्यसमाज, काग्रेस की प्रभातफेरी के स्वर वातावरण मे गूँजकर फैल गए और उसमें से आज यह आवाज़ आई—'उठ जाग मुसाफ़िर भोर भई अब रैन कहाँ जो सोवत है!' जैसे सडको, चौराहों गली-गलियारों की बत्तियाँ एकाएक बुझ गई और सनातन धर्म मन्दिर के टावर क्लाक मे जैसे बारह से एक ही क्षण मे पाँच बज गए। मन्दिर के पुजारी, ठाकुरद्वारो के पडितो ने जैसे एक ही स्वर मे आज गाया हो—

'एक दिवस मेरे गृह आये मै रहि मथति दही,
देखि तिन्हे मैं मान कियो सखि सो हरि गुसा गही।'

ईशरी को संग लिये मधू बुआ अपने माथे पर रेशमी दुपट्टे का ज़रा-सा घूँघट डाले सोई हुई बस्ती के इस मुहल्ले से उस मुहल्ले तक सूरज के लिए घूमने लगी। और ईशरी से विशुद्ध दुलहिनों के स्वर में बताती रही कि 'सूरज तब से घर नहीं आता। चौक में एक राष्ट्रीय होटल खुला है, उसीमें भोजन करता है और अनिश्चित रूप से वह कभी इस मित्र के यहाँ कभी उस साथी के यहाँ सो जाता है। कई दिन मैं अपने हाथ से भोजन बनाकर उसे खिलाने गई, पर उसने स्वीकार नही किया, महज़ भरी आँखो से मुझे देखता रहा। पता नहीं कितनी दूर-दूर से, कैसे-कैसे लोग, कैसे-कैसे विद्यार्थी उससे मिलने-जुलने आते हैं और सूरज भी पता नही कहाँ-कहाँ दौड लगाया करता है और दुनिया के अलावा अगर वह हममे से किसी को याद करता है तो केवल आपको।'

मिठाईलाल से पता चला कि सूरज धीमर टोला में है, जगनू के घर। और उसे ढूँढने के लिए वह स्वयं अपनी एक बैसाखी के सहारे उनके सग चल पडा।

जगनू का घर मिट्टी का था—निरा मिट्टी का घर, दीवारे, छत सब। दरवाजे पर, नगी जमीन पर जगनू सोया था और वही एक दरी पर, सिरहाने लालटेन जलाये सूरज लेटा था, पर शायद वह पढ रहा था। आहट पाते ही पहले जगनू उठा, फिर सूरज।

ईशरी को देखते ही सूरज उसकी बाँहों मे समा गया और बडे ही गर्वीले स्वर मे बोला, "जगनू! यही है मेरे वह ईशरी फूफा, जिनके विषय मे मै तुमसे हर रोज बात करता था।"

"तुम मुझे ढूँढने अम्बाला तक गये थे?" ईशरी ने पूछा।

सूरज ने मधू बुआ की ओर निहारा और वह चुप रह गया। पर दूसरे ही क्षण वह अशान्त होकर बोला, "तुम कब आए फूफा? अभी-अभी आए हो न? कुछ खाया-पिया भी न होगा।"

यह कहते-कहते सूरज ने ईशरी को नीचे से ऊपर तक देखा—वह रूप, वह भेष, कही खद्दर का नाम नही।

और सूरज जैसे उसके माध्यम से देखने लगा—एम० एन० राय का गिरोह, आई० एन० ए० की सेना, भगतसिह की फाँसी और जेलखानो की दीवारे।

मधू बुआ ने पूछा, "तुम्हारे फूफा का क्या आतिथ्य हो! जानते भी हो, ये सुबह तडके यहाँ से चले भी जायँगे।"

"चले जायँगे!" सूरज ईशरी और बुआ के बीच से आगे बढता हुआ बार-बार यही दुहराता रहा, "चले जायँगे, अच्छा, चले जायँगे! तुमसे कहा है बुआ? अच्छा, कोई बात नही बुआ! बुआ, सच मै अम्बाला गया था, तुमसे मैने ये सारी बातें छिपा ली। मै भी अब 'टेररिस्ट' हो गया बुआ! मै अब कभी खद्दर नही पहनूँगा।"

"पर इस समय हम लोग चल कहाँ रहे है?" ईशरी ने पूछा।

"अपने घर चल रहे हो न!" बुआ ने कहा।

सूरज चुप था।

ठाकुरद्वारे को पार करके सूरज बडे अधिकार से राजू पडित के बन्द

दरवाज़े को खटखटाने लगा। राजू पंडित जागे, बुढ़िया दादी जागी, दरवाजा खुला, पर सन्तोष को अब तक ख़बर नहीं—वह आँगन मे जैसे बेहोश सो रही थी।

सूरज ने बिलकुल पास जाकर डॉटा, "बडी बेखबर हो तुम! ऐसे कोई सोता है? ओह ओ! अब तक आँख नहीं खुली!"

सन्तोष घबराकर उठी। वह अपने कपडे सँभालती थी और सूरज को इस तरह देखती जा रही थी जैसे वह अपने मन मे स्पष्ट कर रही हो कि वह कोई स्वप्न नहीं देख रही है, जो हो रहा है, या हुआ है, वह सब सत्य है, सस्कार सामने है।"

"तुमने तो कहा था मै तुम्हारे यहाँ कभी नहीं आऊँगा," सन्तोष बोली।

"वह तो मै अब भी कह रहा हूँ," सूरज ने कहा। "और सुनो जल्दी से, ईशरी फूफा आये है अभी, बाहर है पंडितजी के पास, बुआ भी है। तुम झटपट उन्हे कुछ खिला-पिला दो, हाँ!"

तब तक बाहर से सब आँगन मे आ गए और सन्तोष के हाथ-पैर मे जैसे जादू लग गया। वह तीर की तरह रसोईघर, आँगन, बाहर-भीतर इतनी तेजी से उत्साह-भरी दौडने-भागने लगी, जैसे उसके आँगन मे कोई अपनी बारात आ गई हो, जैसे किसी ने कमर मे ढोल बाँध दी हो, और जिह्वा मे गीत के बोल।

मधू बुआ एकटक निहारती रही—आँगन मे ईशरी, चौके मे सन्तोष—एक ओर मन, दूसरी ओर श्रद्धा और बीच मे वह जड-की-जड!

सन्तोष छूने नहीं दे रही है कुछ, "बुआ तुम बस देखती रहो, आज तो यह अवसर मिला है। सन्तोष को आज स्वार्थ जगा है बुआ, वह आज कृपण है, वह आज तुमसे नहीं बँटाएगी बुआ, तुम चाहे जो कर लो! तुम बात करो न उनसे, मेरे पीछे-पीछे क्या दौड रही हो?"

"तुम करो न बात!"

"किससे ?"

"सूरज से और किससे।" बुआ ने हँसकर इतने धीरे से कहा कि सन्तोष भी न सुन सके, पर सन्तोष ही नहीं जैसे सूरज ने भी सुन लिया। और एक क्षण के लिए उन दोनो ने एक-दूसरे को देखा। सन्तोष को जैसे बडा गुस्सा आया। वह आटा गूँथ रही थी, उन्ही हाथो से उसने बुआ के सारे मुँह को छाप दिया, "तुम जाओ न! अब क्यो नही बात करती ? इतवार, मगल के व्रत, सुबह-शाम गौर-पूजा, ज्योतिषी से प्रश्न, माली से जो लवँग फुँकाती फिरती थी।"

बुआ सहसा शान्त पड गई। आँखें भर आई, और वह न जाने कितने वजनी नजरो से शून्य मे देखने लगी।

"बुआ! ओ बुआ!" सन्तोष ने धीरे से बुलाया।

बुआ ने सन्तोष को देखा, और सन्तोष की नजर झुक गई, "बुआ आज ऐसे न देखो, नही तो अच्छा न होगा, भरी कडाही मे हाथ डाल दूँगी, हाँ!"

बुआ को हँसना पडा, और समीप चला जाना पडा, 'रानी बेटी, मै उनसे क्या बात करूँ, वे तो बस, चार ही घण्टो के लिए आये है। सुबह से पहले ही चले जाने को कहते है!'

"तो क्या हुआ, वे आये तो है बुआ!"

"तुम्हारे आशीष से बेटी, सूरज की कृपा से • "

राजू पडित के अतिरिक्त ईशरी के संग सबने कुछ-न-कुछ खाया, सूरज भी जैसे ईशरी से कम भूखा न था।

फिर सबको अपने सग लिये रूपाबहू के पास आना चाहता था, पर सूरज ठाकुरद्वारे से नीचे उतरकर वहीं खडा हो गया, "तुम मिल आओ मै यहीं खडा रहूँगा, नही घर मे न जाऊँगा अभी।"

ईशरी घर मे गया। रूपाबहू और चेतराम को संग लिये तुरन्त वह बाहर चला आया। सूरज के संग वहीं ठाकुरद्वारे मे सब लोग बैठ गए।

सूरज से मिलने की तलाश मे चेतराम के दरवाजे पर एक दिन प्रिंसिपल मसुरियादीन जी आये। पता चला कि कई दिन से सूरज कही बाहर गया हुआ है। मास्टर चन्दूलाल के मुकदमे की पैरवी बडे जोरो से चल रही थी। खिलाफत मे सरकार का साथ देने वालों मे चेयरमैन साहू गुरुचरनलाल और प्रकाड काग्रेसी चौधरी रामनाथ के नाम विशिष्ट थे।

साहू साहब ने बहुत पहले से ही मास्टर चन्दूलाल को उसकी स्कूल की नौकरी से अलग करा दिया था। जिस मकान मे उसके बाल-बच्चे थे, उसके मालिक-मकान चौधरी रामनाथ ही थे। अभी हाल ही मे पुलिस से साजिश कर अपना मकान भी उससे खाली करवा लिया, और अब उस मकान मे मटके की जुआबाजी होती है। ऊँची हवेली के साहू लोग और रामनाथ के सभी परिचित चौधरी लोग अब रात को उस घर मे इकट्ठा होते है। पहले खूब पिलाई होती है, फिर एक थान रेशमी कपडे से मढा हुआ मटका निकाला जाता है। उसमे एक से सौ तक नम्बर डाले जाते है। सब लोग एक-एक, चार-चार, छ -आठ नम्बर पर (एक नम्बर पर दस रुपये चिरागी) सौ-सौ के नोट रखते है। धीमर मुहल्ले से कोई नग धडग लौंडा पकडा जाता है, उसकी भी आँखो पर पट्टी बँधती है, और वही मटके के अन्दर से नम्बर निकालता है।

मास्टर चन्दूलाल तब से गुलजारीलाल के घर मे बिना किसी किराये-भाडे के रहता है।

प्रिंसिपल मसुरियादीन ने चेतराम से बताया कि सूरज इण्टर प्रथम वर्ष बहुत अच्छे नम्बरो से पास हो गया है।

उसी शाम सूरज मास्टर चन्दूलाल के सग मुरादाबाद से लौटा, मास्टर चन्दूलाल पर एक हज़ार रुपये का जुरमाना हुआ था, पर 'धुआँ-धार' को सदा के लिए ज़ब्त कर लिया गया।

घर के रास्ते पर आता हुआ चेतराम सूरज से बोला, "चलो आज से तुम घर मे रहो बेटा !.... वह जो गोरेमल ने पुलिस दफ्तर मे मुझसे काग़ज़ भिजवाया था न, उसको मैने नज़राना देकर वापस ले

लिया और उसमें दियासलाई लगा दी है।"

"तो क्या हुआ, गोरेमल तो है न !"

"और मै ?"

"तुम्हारी कोई सत्ता नही बाबू," सूरज ने कहा। "गोरेमल ने अपनी सत्ता से हमारे घर को छा लिया है, और उसकी साया हममे से एक-एक पर अपनी उँगली रखे हुए है। तुम तो उसके पाँव तले हो।"

"इन बातो से तुम्हे क्या मतलब !" चेतराम छेदामल के अहाते के पास रुक गया, "तुम नाहक इतना सोचते हो ! होगा ससुरा गोरेमल अपने घर का होगा, वह जियेगा ही कितने दिन ! ब्लड प्रेशर तो है उसको, जभी हारट फेल हो जाय तभी ! आख़िर सब तुम्ही को तो मिलेगा, और कौन पायेगा। बस, चार दिन चुप लगा जाओ, बस ! दुधारू गाय की चार लात भली है कि • ।"

सूरज कुछ बोला नहीं, चुपचाप जियालाल के आज़ाद रेस्टोरेण्ट मे चला गया। पर क्षण ही भर बाद चेतराम की आवाज आई, "सुनो जी जियालाल ! यह लो पचास रुपये, सूरज के नाम से जमा कर लो, पर खबरदार, बहुत चाय मत दीजो, दूध दीजो, दूध। चोथेलाल से कह दिया है, मिठाई, नमकीन, पूरी वही से मँगा लिया करना, हाँ !"

"अच्छा जी, लालाजी।"

चेतराम के मुडते ही जियालाल ने उस दिन के अंग्रेजी-हिन्दी दोनो अख़बारों को एक मे समेटा और बडे अभिनय से बोलना शुरू किया, "भइयो और बहनो तथा विमला की अम्मा ! आप लोग सब, पढ़े-लिखे लोग सब, आजकल अख़बारो मे महज ये समाचार पढ रहे होंगे कि जिना साहब पाकिस्तान बना रहे हैं और अगरेज उनकी मदद कर रहे है। जिना साहब इस 'वार' को 'सपोर्ट' कर रहे है। डिफेन्स ऑफ इण्डिया रूल्स जोरों पर हैं; वन्देमातरम् पर 'बैन' लगा। भारत के लीडरान जेल मे है, गाधीजी फिर आगाखाँ पैलेस मे 'फास्ट' करने की सोच रहे है। और उधर चर्चिल, एमरी, लिनलिथगो क्या

बयान दे रहे हैं ! अरे मारो गोली !" हँसते-हँसते जियालाल ने अख-बारों को सूरज के सामने फेंक दिया, और स्वयं दौड़ा गया चोथेलाल के यहाँ—ताजी-ताजी पूरियाँ, मिठाई-सब्जी लेकर आया। सूरज के सामने सजाकर बिलकुल पास बैठ गया, "अब सुनो मेरे अखबार की खबरें, उम्दा और सही न हों तो जियालाल का सिर चाक ! हनुमान वाटिका के पास वाले मैदान में जो घूमने वाला सनीमा टाकीज़ आया है न, वह सैयामल का व्यापार है और जनरल मैनेजर हैं चन्दनगुरु। वहाँ लड़कियाँ फँसाने का अड्डा तैयार हो रहा है। अब सुनो दूसरी खबर। छेदामल और वसंता ने जो सुग्गा पाल रखा था न, उसे रम्मन ने मरवा दिया। जानते हो क्यों ? वह रम्मन की चुगली करता था। रम्मन ने साहू चेयरमैन साहब की स्वर्णलता को बिलकुल फाँस लिया। तीन हजार खर्च कर दिया उसने। क्या माल है बाप रे बाप ! मैंने तो एक बार बरेली स्टेशन पर देखा था, माँ के साथ लखनऊ से आ रही थी। बाप रे बाप, जिन्दा तिलस्मात है ज़िन्दा—इत्ती बड़ी-बड़ी आँखें, ये-ये हैं मुगलों की फौज ! हाय-हाय ! ये रम्मन बाबू भी क्या हैं कि जैसे इन्दर।"

"तुम्हें दुख है कि खुशी ?" सूरज ने पूछा।

जियालाल ने बिलकुल फिल्मी गाने की तर्ज में कहा, "मेरा तन-मन मगन, मेरा जी भी मगन, मेरे प्राणों में छायी बहार, ओ मोरे राजा !"

दूध में शक्कर मिलाता हुआ बिलकुल दूसरे अन्दाज में बोला, गम्भीरता से, "सूरज बाबू ! मेरे लीडराने वतन, सुनो, मेरे भी मन में आ रहा है कि मैं भी बन्द कर दूँ यह दुकान और ब्लैक करूँ।"

"ब्लैक ! तुम किसकी ब्लैक करोगे ?" सूरज ने पूछा।

"अजी ब्लैक की भी कोई गिनती है या सीमा है," जियालाल का चेहरा तमतमा आया। "फर्ज करो कि मेरे पास कोई मेटीरियल नहीं है ब्लैक के लिए, न कोई पूँजी या मूलधन ही है, फिर भी कोई बात नहीं। तब मैं ज़ज़बानी ब्लैक करूँगा। अपने सत्य को ब्लैक में

बेचूँगा, अपने झूठ का ब्लैक करूँगा। और इससे भी बड़ा बिजनेस, झूठ और सच का एडलटरेशन (मिलावट) करूँगा। मेरे पास गल्ला नहीं है तो क्या, मेरे पास घी-तेल का व्यापार नहीं है तो क्या ?"

सूरज अपनी कातरता में जियालाल का मुँह देखता रहा। फिर जियालाल की बाँह पकड़कर उसने अपने पास बिठा लिया, "तुम ऐसा नहीं करोगे जियालाल !"

"क्यों ? क्यों न करूँगा ? आखिर क्यों न करूँ, मैंने ही ईमानदारी का कोई ठेका ले रखा है क्या ?"

"तुम कभी ब्लैक नहीं करोगे, क्योंकि तुम्हारे पास मन है। पता है तुम्हें बंगाल में भयानक अकाल पड़ा है।"

"मन तो है, पर तराजू कहाँ है," जियालाल उठकर बोलने लगा। "वह जो धर्म का काँटा बोला जाता था न, और वे जो धर्म के बाट थे, वे सब भी तो टूट गए ! लेने के लिए काँटा-बाट और बेचने के लिए काँटा-बाट और फिर बंगाल में ही अकाल क्यों चारों ओर अकाल पड़ जायगा।"

"यह अकाल अंग्रेजों ने डलवाया है।"

उसी समय सामने से अर्द्धविक्षिप्त दशा में गुलजारीलाल दिखाई दिये। धोती के अलावा, तन का सारा कपड़ा तार-तार कर डाला था। सर से जैसे तेल चू रहा था। सिर के बाल तथा मूँछ-दाढ़ी से जैसे पागलपन बरस रहा था। गले में नये-पुराने सिक्कों के तीन-तीन हार पहने हुए थे—पहला हार सबसे बड़ा था, उसमें नये छोटे रुपये, अठन्नी, एक और दो रुपये के नोट तार में बिंधे थे, दूसरा हार पहले से छोटा था, उसमें एडवर्ड सप्तम के वजनी चमकदार रुपये और अठन्नियाँ गुँथी थीं, तीसरा हार और भी छोटा था, उसमें विक्टोरिया के बड़े-बड़े विशुद्ध चाँदी के रुपये और अठन्नियाँ भरी थीं।

ठीक उसी समय एक ही साइकिल पर जगनू और रजुआ दिखाई पड़े। चुपके से सूरज के सामने 'लंकादहन' की एक कापी फेंककर वे

चम्पत हो गए।

'लकादहन' के मुखपृष्ठ पर प्रोफेसर दयाराम शास्त्री का फोटो निकला था, और मोटे टाइप में खबर छपी थी, "प्रोफेसर दयाराम शास्त्री सरकार से माफी माँगकर जेल से रिहा। लखनऊ मे सरकार की ओर से उन्हे कोई नौकरी भी मिली है, अब वे 'देश समाचार' के सम्पादन विभाग में कार्य करेंगे।"

सम्पादकीय पृष्ठ के साथ वाले पेज पर मिठाईलाल वार्ष्णेय का चित्र निकला था, 'झँडावीर' नाम दिया गया था। और मिठाईलाल के पैर के बारे मे ख़बर छपी थी कि, 'वीर सेनानी श्री मिठाईलाल द्वादशश्रेणी के पैर का प्लास्टर हटाया गया, पैर मे अब कोई दर्द न रहा, पर हड्डी मे दरार आ जाने के कारण वह वीर एक पैर का लँगडा हो गया—साहू गुरचरन लाल मुर्दाबाद! साहू समाज मुर्दाबाद। अंग्रेजी हुकूमत का नाश हो! इन्क़लाब ज़िन्दाबाद!"

शेष अखबार मे चोर बाजारी के विविध विवरण और 'एडलटरेशन' की खबरें छपी थी।

दिसम्बर के अन्तिम दिन थे और उत्तर दिशा की बडी ठंडी हवा लोट-लोटकर बह रही थी। नियम और स्वभाव के अनुसार रूपाबहू साढे सात बजे ठाकुरद्वारे मे पूजन हेतु जाती और अर्चना-पूजा तथा ठाकुरजी की आरती के बाद आठ बजे तक अपने घर लौट आती थी।

आज रात के दस बजने वाले थे। रूपाबहू ठाकुरद्वारे की देहरी पर अजीब बावरे ढङ्ग से बैठी हुई, दायें घुटने पर मुँह टिकाये राजू पण्डित की ओर देख रही थी। राजू पण्डित जैसे गा-गाकर समझा रहे थे, "हम और तुम क्या हैं? यह सारा दृश्यमान जगत् क्या है? लीला है लीला! उस त्रिभुवन नाथ लीलापति कृष्ण भगवान् की! इसलिए हम-तुम जो करते है, जो किया है, या जो भविष्य में करेंगे, वह सत्य नही

है, वह महज़ लीला है लीला। उस महालीलापति के हम कठपुतले हैं। पर हम उसके सच्चे भक्त है। अतएव उसने हम पर कृपा करी, जिसको प्रहिरि मार्ग कहते हैं, इसलिए हमारे द्वारा उसने एक लीला करी। और समझो कि उसी लीला के बीच उसने हमें अपना दर्शन दिया। क्योंकि, लीला ही भगवान् है—और यह लीला परम भक्ति, ईश्वर की परम कृपा के फल से ही घटायमान होती हैं—देखो न कृष्ण और राधा की महालीला—

"बैठे युगुल रग रस भीने, आलस युत अंगन भुज दीने।
लटपटि पाग रसमयी भौहे, कुण्डल झलक क्रपोलन सोहै।
आलस नैन सुरति रस पागे, नंदनन्दन पिय सँग निशि जागे।
टूटे हार मरगजी सारी, नखशिख सुन्दर पिय अरु प्यारी।"

पर सत्य में क्या है, महज माया, केवल लीला—कहा जो है भगवान् ने अपने मुख से—

अति विचित्र नँदलाल की, लीला ललित रसाल।
जो सुख दुर्लभ शिवसनक, सो विलसत ब्रजवाल॥

"जो दृश्यमान है, वह सत्य नहीं, लीला है! क्या है लीला?"

रूपाबहू जैसे विक्षिप्तावस्था मे उठी, अपने गिरे आँचल को सम्भालने की जैसे उसे सुधि न रही, घायल सर्पिणी की तरह वह राजू पंडित पर टूटी, उसके मुँह को बुरी तरह नोच बैठी और सामने की खुली पोथी को चीथने लगी, "कहाँ है वह लीला? कहाँ है वह लीला? ले खा ले मुझे! जिन्दा खा ले! खत्म कर डाल सारी लीला! कुछ सत्य नहीं तेरे लिए, सब लीला ·लीला!"

और एक बेहद आर्त स्वर मे चीखकर वह लडखडाती हुई वहीं फ़र्श पर गिरी और बेहोश हो गई। राजू पंडित भागकर ठाकुर जी की मूर्ति के पीछे चिपक गए—भयातुर छिपकली की तरह, जिसकी किसी ने दुम काट दी हो।

रूपाबहू की चीख़ती हुई आवाज को मधू बुआ ने भी सुना और

सन्तोष ने भी। दोनो बेतहाशा दौडी हुई आई और बेहोश रूपाबहू से लिपट गई।

चेतराम घर मे न था। दुकान पर भी उसकी कोई खबर न थी। रूपाबहू को देखने के लिए डाक्टर बगाली बाबू आये। उन्होने दवा दी और रूपाबहू के सिरहाने बैठे रहे।

कुछ क्षण बाद वह मुस्कराकर बोले, "बहू अच्छा हो गया अब। होश मे आ गया। पर बाबा, इससे कोई बालना-चालना नही। इसको रेस्ट लेने दो। खूब रकोम से नींद माँगता है। खूप स्लीप देइब इसे।"

रूपाबहू अपने कमरे मे, शेष सब आँगन मे। एकाएक रूपाबहू चीख पडी। मधू बुआ और सन्तोष के पकडने पर भी वह आँगन मे आ गिरी। कुछ देर कराहती रही, फिर चुप हो गई।

चेतराम लौटा तो रूपा को देखते ही भय खा गया। बुआ की गोद मे वह औंधी पडी थी, सन्तोष सिर गाडे बैठी थी। गौरी बेटी सामने खडी नि शब्द रो रही थी। चेतराम ने बहुत धीरे से पहले मधू को पुकारा, फिर सन्तोष को और अन्त मे रूपाबहू को। पर सब चुप थे।

चेतराम ने तब कडी अधीरता से रूपा का नाम लेकर पुकारा, दो बार नही, तीन बार, चार बार। रूपाबहू एकाएक तडपी और अपने मुख को उसी तरह आँचल मे बाँधे इतने आक्रामक ढंग से वह चेतराम पर टूटी कि लगा सब बिखर जायगा, एक-एक रेशा टूट जायगा—दोनो का, एक ही के हाथ दोनो का।

सब तरह से हारकर जब चेतराम ने रूपा के दाये हाथ को मजबूती से थामना चाहा, तो उस क्षण तक बहू बेहोश हो चली। तार-तार हुए कपडे, फर्श पर टूटी चूडियाँ, आँसू, खून के धब्बे, नुचे हुए बाल और सबके ऊपर एक भयानक सन्नाटा। और इसके बीच मे निर्वस्त्र-सी बेहोश रूपाबहू, बल्कि उसकी क्लात छायामात्र। चेतराम के मुख और छाती पर कई जगह नाखून के घाव हो गए थे। नाक में से खून बह रहा था। सन्तोष और मधू बुआ ने चेतराम को सारी

घटना बता दी—अर्थात् वह सब जो बाह्य था, जो घटना थी, जो कथा थी।

इस बार कुछ ही क्षण बाद बेहोशी चली गई। रूपाबहू कराहती हुई अपने-आप उठी और दीवार के सहारे धीरे-धीरे अपने कमरे मे चली गई। पर उसका कराहना, दीवार का सहारा लेकर चलना और वे अथाह आँखे—सूनी-सूनी, उदास, अर्थहीन—जैसे रूपाबहू न जाने कब से किसी भयानक रोग से ग्रस्त हो।

बस्ती के श्मशान बाग मे एक औघड बाबा आया था। बडे बडे यन्त्र और सिद्धियाँ थीं उसके पास। एक दिन बस्ती मे आकर उसने न जाने क्या बजाया और मुँह से आवाज की, आस-पास के साँप उसके पास चले आये। उसने साँपो को पकडकर उनकी जबान खींच ली, और बस्ती से भाग निकला। बसन्ता ने जाकर भभूत ली थी। नारायणदास ने अपने पिता गुलजारीलाल के लिए मन्त्र फुँकवाया था। चन्दनगुरु ने उससे एक अँगूठी ली थी—लोहे की, नागिन की आकृति वाली।

एक दिन आधी रात के समय चेतराम श्मशान बाग मे गया। औघड बाबा के पैरो पर गिर पडा और आर्त स्वर मे बोला, "मेरी स्त्री है, पता नहीं उसे क्या हो गया है, रह रहकर बेहोश हो जाती है, मुझे तो देखकर क्रोध से पागल हो जाती है। कुछ खाती-पीती नहीं, नींद भी बहुत कम आती है। ठाकुर जी की बडी पक्की पुजारिन थी। घर मे भगवान् की अनेक मूर्तियाँ सजा रखी थी—दोनो वक्त पूजा-अर्चना करती थी। एकाएक उसे पता नहीं क्या हो गया, उसने भगवान् की मूर्तियो को तोड-फोड डाला। किसी से सीधे मुँह बात नहीं करती। मुझे तो वह बिलकुल देखना ही नहीं चाहती। सब डाक्टरों को दिखाया, हकीम-वैद्य भी देख गए, पर वह तो किसी तरह भी दवा

ही नहीं खाती।"

औघड बाबा चुपचाप सुनता रहा, एकाएक बडे ऊँचे स्वर में हँसा, और चिमटा बजाता उठ खडा हुआ। चेतराम के घर मे आकर उसने पूछा, "कहाँ है वह देवी, मुझे उसके पास ले चलो और सब लोग दूर हट जाओ।"

रूपाबहू अपने कमरे मे मूर्तिवत् खडी थी, जैसे काठ मारी हुई। औघड बाबा को उसने आग्नेय दृष्टि से देखा, तभी बाबा ने अपना चिमटा नचाकर रूपा की पीठ पर इतनी जोर से मारा कि वह तत्काल गिर पडी। पर वह बेहोश न हुई। उसने बढकर औघड बाबा के पाँव पकड लिये—श्रद्धानत हो गई उन चरणो पर। फिर औघड बाबा ने दूसरा चिमटा मारा, तीसरा, फिर चौथा और पाँचवाँ। चेतराम आँगन मे खडा रोता रहा, हर चिमटे के प्रहार से वह कराह उठता और औघड बाबा को पकडने दौडता।

खिडकी से उसने देखा, बहू औघड बाबा के चरणो मे बिछी हुई है, आँखे ऊपर उठी है, और वह श्रद्धा से कह रही है, "और मारो बाबा, काट दो मेरी पीठ, मै भूखी हूँ इस मार की। मुझे यातना दो बाबा, मैं शरण हूँ!"

"जा अब सुखी रह! पर ख़बरदार जो अब कभी उस पथ पर गई। तेरे सिर की पिशाचिनी को मै अपनी मुट्ठी मे लिये जा रहा हूँ। अब कभी मत याद करना इसे। तू अपनी ज़वानी को भूल जा, अपने रूप को भूल जा। समझ कि तू श्मशान की राख है, मुर्दा है।"

यह कहकर औघड बाबा तीर की भाँति उस घर मे से निकला और जैसे एक ही साँस मे वह बस्ती पार कर लेगा। पीछे-पीछे रूपा-बहू दौडी, दौडती गई, जैसे प्यास पानी के पीछे दौड रही हो।

बस्ती को पार करते-करते औघड़ बाबा ने घूमकर देखा और रूपाबहू को बडे क्रोध से डाँटा। पर रूपाबहू फिर चरणों पर गिर पडी और गिडगिडाकर बोली, "मुझे किसी सर्प से कटा दो बाबा, मैं मर

जाऊँ। मै अब जीना नही चाहती। मुझे अपने चिमटे से टुकटे-टुकडे कर दो। मै सचमुच चिता की राख होना चाहती हूँ।"

रूपाबहू आँचल फैलाकर बैठी रही और फफक-फफककर रोती रही। औघडबाबा ने झुककर जमीन से मिट्टी उठाई, थोडी सी मिट्टी रूपा के आँचल मे बाँध दी, और शेष उसके माथे पर लगाते हुए कहा, "जा निर्भय रह!"

"अपने से भी?" बहू ने भरे कण्ठ से पूछा।

"इसके आगे मै कुछ नही कह सकता। अब लौट जा अपने घर, मेरी आज्ञा है!"

मन्त्रमुग्ध-सी रूपा अपने रास्ते पर मुडी, फिर रुक गई, और अत्यन्त कोमल स्वर मे बोली, "बाबा, ऐसा लगता है कि आपकी बोली मैने कहीं और भी सुनी है, बहुत-बहुत पहले मैने जरूर कही आपको देखा है। सुधि आ रही है मुझे।"

औघड बाबा अपनी तेजी में चला गया और रूपा उसी दिशा मे देखती रह गई। ज्यो-ज्यो वह अपने घर के समीप पहुँचती जा रही थी, त्यों-त्यों उसके सारे शरीर मे इतना दर्द बढ़ता जा रहा था कि वह थोडी-थोडी दूर पर बैठती जा रही थी। घर के पास वाले चौराहे पर वह बैठी ही थी कि मधू बुआ और सन्तोष ने बढ़कर उसे बाहुओ से थाम लिया। वह रो रही थी—शिशुवत, निष्कपट।

चेतराम एक शाम सूरज से मिला। रूपाबहू की स्थिति बताते हुए बोला, "वह मुझे देखते ही जैसे बीमार हो जाती है। मै तो स्वयं उसके सामने नही पडता। वह अच्छी हो गई है। अब तुम घर चलो सूरज। तुम्हे घर मे पाकर उसका मन हरा हो जायगा। भर जायगी वह।"

यह कहते-कहते चेतराम का कण्ठ रुँध-सा गया। सूरज कभी पिता की ऐसी स्थिति का सामना नही कर सकता था। वह बिना कुछ बोले यन्त्रवत चेतराम के सग अपने घर में आया। उस क्षण घर में बुआ के

संग सन्तोष भी थी ।

ज्योही सब-के-सब आँगन मे आये उसी समय रूपावहू अपने कमरे से चौके मे जा रही थी । हाथ मे थाली लिये थी । उसकी दृष्टि सूरज और चेतराम पर एक साथ पडी ।

एक क्षण तो वह न जाने कैसे बँधी खडी रही, दूसरे ही क्षण वह लडखडाकर जैसे भगाने को हुई, और चौखट से टकराकर गिरने लगी । सूरज ने उसे थाम लिया । रूपा माँ बेहोश थी ।

बेहद चिन्तित और अधीर चेतराम औघड बाबा से मिलने श्मशान मार्ग के लिए रवाना हुआ । बाबा का वहाँ कोई पता न था । चेतराम की अधीरता बढती गई । वह बस्ती मे आया और औघड बाबा की खोज मे फिरने लगा । महाजन टोला की एक गली मे जगनू मिला—कन्धे पर सीढ़ी और दोनों हाथों मे म्युनिसिपेल्टी के लालटेन लिये हुए ।

उसने चेतराम को खबर दी, "सेठलाला ! वो औघड तो बडो शेर निकलो । जे रम्मन और सैयामल है न ! औघड बाबा से दोनो सौ-सौ के नोट बनवा रहे थे । कुल बीस हजार रुपये गाँठ ले गया वो ।"

"नोट, औघड बाबा से नोट बनवा रहे थे ?" चेतराम हतप्रभ था ।

"हाँ जी लाला ! औघड बाबा सौ रुपये के एक नोट से जाने किस मसाले और मन्तर से दस नम्बरी नोट बना देता था ।"

"तो औघड बाबा चले गये ? अब नहीं मिलेगे क्या ?"

"अब कहाँ मिलेंगे लाला ! वह तो बहुत ऊँचे दर्जे के चार सौ बीस थे । अब वह क्यो दिखाई पडेगा ?"

यह कहकर जगनू बहुत खुलकर हँसा और मोड के लैम्प पोस्ट मे लालटेन रखने लगा ।

चेतराम चौक में आया । रम्मन-सैयामल और औघड बाबा की चर्चा चारों ओर फैल रही थी । पर उस चर्चा मे भी वह औघड बाबा को ढूँढ रहा था । अन्त मे वह रम्मन के घर गया । छेदामल और

वसन्ता फूट-फूटकर रो रहे थे। रम्मन सिर झुकाये चुपचाप बैठा था। रम्मन का बारह हजार गया था और सैयामल का आठ हजार।

चेतराम बडी देर तक उन सबके बीच बैठा रहा। रम्मन को समझाते हुए वह बोला, "इस तरह कही धीरज गँवाया जाता है। अरे, जब तुमने गँवाया है तो तुम कमाओगे भी न। अभी तो समय है बारह हजार पैदा करने मे कित्ती देर!"

रम्मन से बाते करता हुआ चेतराम अपनी गद्दी पर चला आया। नोट बनाने से लेकर औघड बाबा के भागने तक की बात को वह बडी बेचैनी से सुन गया।

रम्मन जब घर जाने को हुआ, चेतराम ने उसे दो हजार नक़द देते हुए कहा, "लो घबडाओ नही बेटा, फिर से व्यापार करो—लेकिन ईमानदारी का व्यापार करो, भगवान् से डरकर और उस परलोक को सोचकर। कुछ रखा नही है इस दुनिया मे, सब हाथ का फेर है, अन्त मे सब बेकार है।"

५

मिठाईलाल के घर दो बिल्लियाँ—एक सफेद और एक काली—इधर पिछले एक वर्ष से पली थी—चूहो से घर और दुकान की रखवाली के लिए।

उस रात किसी कारणवश उन दोनो मे लडाई हो गई। भीतर से लडती-लडती दोनो बाहर मैदान मे चली आई—सूरज के पलँग के पास। रात के एक बजे का समय, सूरज को नींद आई थी, बल्कि नही आ रही थी। दोनो बिल्लियों मे सफेद बिल्ली कुछ कमज़ोर पड रही थी, लेकिन लडने के लिए धमकी, फूँत्कार और गुर्राहट मे वह भी पीछे न थी।

सूरज उन्हें अनायास ही देख रहा था। एकाएक काली बिल्ली क्रोध से चीख़कर सफेद पर टूट पडी और परस्पर युद्ध मे दोनो गुँथ-सी गईं। सूरज को लगा, सफेद बिल्ली हारकर भी मुक्ति नही पा सकेगी। वह उठा और उसे बचाकर अपने पलँग पर ले आया। वह बेतरह काँप रही थी—प्यारी मासूम! सूरज उसे अपने गाल से चिपकाये लेटा रहा। कुछ देर के बाद, सम्भवत. बिल्ली को अनुभव हुआ कि सूरज सो गया, फिर वह धीरे से खिसककर उसके पाँव से लिपटकर बैठ गई।

सूरज का मन एक विचित्र आह्लाद से भर आया। उसकी आँखे डूब गईं।

कुछ क्षण बाद उसे लगा, वह सफेद बिल्ली सन्तोष है। सूरज ने तत्काल उसे अपनी आँखों पर रख लिया, उसे चूमने लगा।

गाल पर बिल्ली का मुख और आँखो मे सन्तोष की छवि—मधुर, स्निग्ध और लालसापूर्ण। सन्तोष सन्तोष!

रूपाबहू रूपा माँ माँ! बीमार माँ!

चेतराम · पिताजी · बाबू मेरा·· सुहृदय, उदार और गरीब बेचारा। और सूरज बुआ का दुलारा · सन्तोष का स्नेही फूफाजी का क्रान्तिकारी · ईशरी फूफा का लाडला · बस्ती का नेता · युवक संघ का वीर सेनानी नेता · राष्ट्र-सेवा, स्वतन्त्रता-सग्राम का सैनिक आटोग्राफ देने वाला सूरज · मालाएँ पहनने वाला, उद्बोधन के भाषण देने वाला सूरज ··अभिनन्दन पत्र पाने वाला· जै-जैकार पाने वाला सूरज · पर ··लेकिन · यह क्या? घर से निर्वासित, उपेक्षित · माँ · शिशु·· हाँ उपेक्षित! पिता चेतराम गोरेमल, नानाजी··· करोडपती · सूरज मूलधन बस्ती का मूलधन। पर माँ बीमार बुआ गरीब · बाबूजी, चेतराम, ऐसा क्यो? कुछ नही! देश-हित के सामने सबका बलिदान। सब सुख त्याग। स्वतन्त्रता-सग्राम! राष्ट्र-सेवा! स्वराज्य। जै हिन्द · इन्कलाब जिन्दाबाद।

सूरज की आँखें कडवाहट से भर आई। लग रहा था, उनमे किसी ने कडुआ तेल डाल दिया है । और आज का तेल" तेल मे बालू के कण भी "और सरसो का तेल ? नहीं अब शुद्ध कहाँ ? मिलावट सर्वत्र मिलावट। एडलटरेशन ! सरसो के तेल मे मूँगफली, बिनौला। घी मे चर्बी, तिल का तेल, नारियल गोले का तेल मूगफली का तेल। और बस्ती मे डालडा की इतनी दुकाने। इतनी बिक्री ? कौन खाता है इसे ? डालडा इतना इसलिए नही बिकता कि लोग इसे खाते हैं, बल्कि इसलिए कि लोग इसे घी मे मिलाते है ! बी० टी० टेस्ट क्या है ? उसमे भी जादू है। गेहूँ मे, जौ मे, दाल मे, चावल मे, न जाने किन-किन चीजो के बीज, सख्त दाने, ककड, कुटे हुए रगबिरगे पत्थर। आटे मे, मैदा मे, बेसन मे, सूजी मे लकडी के बुरादे। घीराम रोड, बडा दरवाज़ा, ऊँची हवेली, घीसिरा मुहल्ला, छेदामल का अहाता, उनकी गलियाँ, गोदाम, बैठक और ड्योढियाँ और बिक्री के दरवाज़े सूरज के सामने घूमते रहे। और उनमे से एक अद्भुत कोलाहल और चीख़ उभर रही थी। सूरज ने तकिये के दोनो सिरों से अपने कान भींच लिये। आँखे मूद ली। पर आँखो में भी आँख होती है। जैसे वह कभी बन्द नहीं होती, वह शायद मछली की आँख है। इन आँखो में धर्म के काँटे झूलने लगे। बाट दिखाई पडे—खरीदने के बाट और, बेचने के और। सही वही, नकली वही। बनिया मुकदमा नही करेगा, सब सह लेगा, जुरमाना, नजराना, घूस, 'वार' के चन्दे, डिस्ट्रिक्ट सप्लाई अफ़सर, डिप्टी रिजनल फूड कण्ट्रोलर को डालियाँ। अपने-अपने फर्मों मे साहूकार साझा कर लेगा सप्लाई अफ़सर से, फूड कण्ट्रोलर से, इन्स्पेक्टर से, पर वह चूँ नही करेगा, विरोध नही करेगा। यह उसका धर्म नही है। उसके धर्म मे है सीमेट, लोहा, तेल, कपडा, अनाज, चीनी, ईंट और नमक—'इनफ्लेशन' और आदमी। नियन्त्रण और आदमी की भूख—गुप्त रखने की आदत, चोरी मे सोचने और करने के संस्कार ! राशनिग, ब्लैक, कोटा,

परमिट और तिरगा झण्डा 'इनफ्लेशन' मिलावट आदमी मे मिलावट सच-झूठ की मिलावट, शुभ-अशुभ की मिलावट।

उसी क्षण सूरज के कानों मे एक दूसरा स्वर भी गूँजा। महाजन टोला वाले कहते थे हम सब तरह की बेईमानी कर सकते है पर मिलावट की बेईमानी को हम गोमास का पाप समझते है, लडकी के संग कुकर्म-जैसा मानते है।

सूरज को लगा, उसके गले से लिपटी हुई बिल्ली उसकी लडकी है जिसे काली बिल्ली काट खा रही थी। सफेद बिल्ली ' काली बिल्ली ब्लैक "ब्लैक '। सफेद और काले दो चूहे । जैन मन्दिर मे उसने कभी प्रवचन सुना था—आदमी, जिसे जंगल मे एक सिह पकडने दौडता है। आदमी भागता-भागता एक कुएँ मे गिर पडता है और कुएँ मे लटकी हुई किसी लतर को पकड टँग जाता है। ऊपर भूखा सिह और नीचे कुएँ मे एक भयावह सर्प, जो उसे डस लेने के लिए फुँफकार रहा है। और वह लतर जिस थामे वह लटका है, उसे दो चूहे बडी तेज़ी से कुतर रहे है—एक चूहा सफेद और एक काला।

सूरज ने मारे भय के अपनी आँखे खोल दी। उसे लगा, वही उस कुएँ मे गिरा हुआ आदमी है। उसे कुछ नही सूझा, जैसे वह अन्धा हो गया। उसका सारा कण्ठ सूख गया। जिह्वा तालू से चिपकने लगी, जैसे वह गूँगा भी हो जायगा। वह चीख़ पुकार भी नहीं सकता—नीचे सर्प, ऊपर सिह, अवलम्ब को कुतरने वाले दो चूहे। एकाएक सूरज को उस कथा की भूली हुई बात याद आ गई। उसके खुले मुख मे उसी लतर पर लगी हुई मधु के छत्ते से मधु की बूँदे टपक रही थीं।

फिर सूरज अपनी सहज स्थिति मे आया। पर उसके दोनों कान बेतरह जल रहे थे। आँखें जैसे अब कभी नही बन्द होंगी, अब वह कभी सो न सकेगा।

सम्भवत डेढ-दो घण्टे तक सूरज अचेत-सा पडा रहा—निर्वीर्य,

निस्तेज। पलग पर बैठी हुई बिल्ली नाक से खुर्र-खुर्र की आवाज करती हुई नीचे उतर गई।

फिर सूरज उठकर बैठ गया, तकिये के सहारे। वह जीवन मे पहली बार इस तरह श्रद्धानत, विनीत स्वर से अनुभूतिमय होकर अपने-आप मे कहने लगा, 'हे ईश्वर! सुबह हो जाय। भोर हो जाय। यह रात मुझे नीद नहीं देती।' और उसे लगा कि वह अकेला बस्ती की सडको पर चल रहा है, गलियो, मुहल्लो और दरवाजो को पार कर रहा है। उसके आगे-पीछे कुत्तों के झुण्ड भूँक रहे है, जैसे मडी मे कोई चोर घुस आया हो।

यह मंडी, यह बस्ती, यह सूरज की जन्म-भूमि! लोग कितनी बुरी जगह समझते है इसे। कोई गौरव नही, कोई यश नही, कोई सम्मान नही—आत्मसम्मान तक नही। बस, रुपया और व्यापार! यहाँ हर चीज़ को महज व्यापार की दृष्टि मे देखना—म्युनिसिपेलिटी की चेयरमेनी से लेकर कांग्रेस की सदस्यता तक। यह सब क्या है? क्यो है? ये मडी वाले अपने नगर का नाम बताने मे क्यों झिझकते है? अपना परिचय सीना तानकर क्यो नहीं देते? सम्भवत आज तक इस बस्ती मे कोई महान् नही हुआ। बस्ती मे कोई एक भी महान् हो जाय, तो अपने को बस्ती वाला कहलाने मे इन्हे गौरव मिले। ये स्वयं अपनी नजर मे ऊँचे उठ जायँ। जो अपने को अपमानित, पतित, तुच्छ और बुरे समझते हैं, उन्हे मुक्ति मिल जाय।

इस बस्ती मे इतने मन्दिर, इतने शिवाले, इतनी गढियाँ, धर्म-अखाडे और ठाकुरद्वारे है फिर भी इस बस्ती मे प्रकाश क्यों नहीं है? बस्ती का आर्य समाज—महिला आर्य समाज, कुमार-सभा, यहाँ का सनातन धर्म, चौक मे सनातन धर्म का इतना विशाल भवन, वैष्णव-समाज, कृष्ण समाज, राम समाज, जैन समाज, ये सब क्या है? इतनी शक्तियाँ मिलकर भी बस्ती के समाज को मुक्ति क्यो नही दे पातीं? क्रान्ति क्यों नही ला पाती? इतनी शक्तिशाली कांग्रेस, हिन्दू महा-

सभा, काग्रेस सोशलिस्ट पार्टी, किसान-मजदूर प्रजा पार्टी और टेररिस्ट, ये सब क्या है? क्यो है? सूरज के मन मे क्रमश उत्तर उभरने लगे—सब परम्परा है, अन्धभक्ति है, अन्धश्रद्धा के समर्थक है, महज अनुगामी, बुद्धि-विवेक के दुश्मन। ये सब जो सोचते है, वे अपने-आप से नही सोचते न अपना ही सोचते है, सब दूसरे का है, सब इन पर लादा हुआ।

आओ इन सबसे आगे निकल भागें। अपना सोचे। जो हम है, पहले उसे सोचें—मै और मेरा निजत्व और उसका सारा अस्तित्व, मै और मेरी घर-गृहस्थी, मै और मेरा घर, काग्रेस और अग्रेज़ी हुकूमत, ग़ुलामी और स्वतन्त्रता-सग्राम।

स्वतन्त्रता संग्राम!

स्वतन्त्रता क्या है? जिसे मुक्ति कहते है क्या है? जहाँ मेरे सम्पूर्ण व्यक्ति का सहज विकास हो।

मुक्ति के प्रश्न मे सबसे पहले व्यक्ति है। फिर समाज, फिर राष्ट्र और राष्ट्र से परे?

और सग्राम?

दो विरोधी शक्तियों मे सघर्ष—एक, जो गुलाम है, दूसरी, जिसके हाथ मे पहली की स्वतन्त्रता छिनी रखी है।

एक भारतवासी, दूसरा अग्रेज़!

एक सूरज, दूसरा गोरेमल!

सहसा भावतप्त सूरज के सामने से जैसे अन्धकार का कोई पर्दा हटने लगा। जो उसके प्राणों में सुलग रहा था, वह जैसे जल उठा, और उसके प्रकाश मे वह दीप्त हो उठा—उसने साफ़-साफ देखना शुरू किया रूपाबहू बन्दी भारतमाता, गोरेमल अग्रेज, सूरज और चेतराम भारतवासी।

और सूरज का विवेक खिल गया, आजादी की लडाई तो मेरे घर ही मे छिडी है। मुझमे ही छिडी है, चेतराम मे है, रूपा माँ में है,

सन्तोष मे है, मधू बुआ मे है। सब मुक्ति के युद्ध मे ग्रस्त है। मैं अपने घर से निर्वासित हूं, पिता से त्यक्त, माँ से त्यक्त और उपेक्षित। गोरेमल मुझसे घृणा करता है।

अधिकार से भागना कायरता है, प्राप्य से निस्पृह रहना पलायन है। आत्म-स्थिति से वीतराग रहना मृत्यु है।

सूरज उठा। उसकी भुजाएँ फडक रही थीं। आँखो मे कुछ बरस आया था। एक विचित्र-सी अनुभूति उसके अन्तम् मे बहुत गहरी उतरती चली जा रही थी।

सुबह हो रही थी। सूरज ने चाहा कि वह जाते-जाते मिठाईलाल को जगाये। पर वह रुक गया और बडी तेजी से अपने घर की ओर मुडा।

घीराम रोड पर उसकी पहली भेट छेदामल से हुई। उसके हाथ मे केवल एक बाजरे की रोटी और आगे-पीछे दस-बारह कुत्ते। सूरज को देखते ही छेदामल ने रोटी को कुत्तो के बीच फेंक दिया और भरे कण्ठ से बोला, "सब फुँक गओ बेटा, रम्मन ने दुकान उजाड दयी।"

"सब सुना है मैने!" सूरज आगे बढ रहा था।

छेदामल ने कहा, "बारह हजार तो गओ ही बेटा, लेकिन रम्मन की दूसरी न सुनी होगी, वह परसों रात ही से घर से गायब है।"

सूरज आगे बढ आया। घण्टाघर की सडक पर पहुँचते-पहुँचते उसकी भेंट जगनू से हुई—बुझी हुई लालटेनें और कन्धे से सीढी लटकाये हुए।

सूरज को देखते ही जैसे वह जी गया, "नमस्ते सूरज भैया! सब अच्छा है न! 'अरे, रम्मन बाबू की नहीं सुनी भैया, वह तो साहू साहब की स्वर्णलता को लेकर बम्बई भाग गए।"

जगनू से छूटकर सूरज आगे बढा। उसे लगा, पीछे से किसी ने उससे जैहिन्द किया है। वह हडबडाकर इधर-उधर देखने लगा। पर आगे-पीछे कोई न था। उसके भीतर एक विचित्र प्रकार का तनाव

खिचने लगा और उसे साँस लेने मे कठिनाई-सी होने लगी। वही खडे-खडे सूरज को ऐसा अनुभव होने लगा, जैसे वह सैकडों नवयुवको के बीच मे घिरता जा रहा है। सिर पर तिरगा, ओठों पर राष्ट्रीय गीत, क्रान्ति के गीत, भाषण, उद्‌बोधन, जैमाल, पुष्पाञ्जलि, जै-जैकार, इन्कलाब ज़िन्दाबाद, आटोग्राफ, त्याग, बलिदान, उत्सर्ग!

सब झूठ! सब झूठ! भ्रम! धोखा! पलायन! पलायन कायरता!

सूरज बडी तेजी से गोपालन मुहल्ले मे बढता जा रहा था, लेकिन उसकी तनी हुई मुद्रा से ऐसा लग रहा था, जैसे कोई अदृश्य शक्ति उसका पीछा कर रही हो और आवाज़ दे रही हो—'आज तक इस नगरी मे कोई महान् नही हुआ। सब अन्धविश्वासी, अविवेकी, परम्परावादी, अनुगामी, हीनग्रन्थि-ग्रस्त, आत्म-सम्मानहीन, गौरव-हीन। यह सब महज़ इसलिए कि इस नगरी मे अब तक कोई महान् नहीं हुआ। इस बस्ती मे कोई एक भी महान् हो जाय तो अपने मे ऊँचे उठ जायँ। जो अपने को अपमानित, पतित और बुरे समझते है, उन्हे मुक्ति मिल जाय।

ओ सूरज!

ओ सूरज! रुको तो!

सूरज से क्या तात्पर्य? सूरज से मतलब जो प्रकाश दे, जो अपने को जलाकर दूसरो को प्रकाश दे।

चौराहे से अपने घर की चौडी सडक तक आकर वह एकाएक रुक गया और घूमकर प्रीतमदास की गली मे मुड गया।

सरजू सोनार का घर, उसका लडका हीरालाल—मित्र हीरालाल, आगे वह ठाकुरद्वारा, वह सन्तोष का घर और वह अपने घर का पिछवाडा।

ठाकुरजी के मन्दिर मे न जाने कैसे कहाँ से सन्तोष आई खडी थी—उदास चिंतित, जैसे न जाने कितनी रातों की जगी हुई और

रोई हुई। सूरज उस गली से भाग निकलने वाला था, पर सन्तोष को देखते ही वह रुक गया, जैसे वह अनायास कहीं बँध गया।

सन्तोष एकाएक जैसे रूठकर ठाकुरद्वारे की ओर बढने लगी और उसने छिपकर देखा, सूरज उसी भाँति गली मे खडा है। सन्तोष ने आज यह समझ लिया था कि सूरज उसके पास आया है। वह इस लिए मुँह छिपाए इधर-से-उधर घूमने लगी थी कि सूरज उसका पीछा करेगा, उसे आज पकड लेगा।

दूसरे ही क्षण, जब सन्तोष ने घूमकर फिर गली मे देखा, सूरज वहाँ न था। सन्तोष उसी साँस से खिची हुई गली मे उतर गई। पूरी गली सूनी थी। वह दौडी हुई गली के एक सिरे से आगे तक देख आई, फिर उसी साँस मे दूसरे सिरे तक गई, पर सूरज लापता था।

सन्तोष चुप रह गई—ठगी-सी। फिर सिसककर रो पडी। और सिर झुकाए वह ठाकुरद्वारे से अपने घर की ओर बढने लगी। उसका मन हाहाकार कर रहा था—सूरज तुम अपने घर से निर्वासित हो और मै अपने घर में ही निर्वासित हूँ। पिताजी मुझे देखकर न जाने क्यो क्रोध से भर जाते है। पहले तो ऐसा नहीं था। कितना मानते थे मुझे। माँ-पिता दोनो का सम्मिलित प्यार मुझे उनसे मिलता था। अब लगता है, वे मुझे अपने सामने देखना नही पसन्द करते। आज कितने दिन हो गए पिताजी वृन्दावन चले गए, और अब तक नही लौटे। शायद अब वे लौटना ही नही चाहते, क्योंकि घर मे मै हूँ। सच सूरज, तुम एक बार तो आकर मुझे देख जाओ, मै अब किस तरह इसी छोटे से घर मे बन्द रहती हूँ। दादी ने खाट पकड ली है। अब आगे मैं इस जुलाई मे पढने भी नही जा सकूँगी। अब एफ० ए० क्या कर पाऊँगी, टेथ क्लास ही तक बदा था। गली-मुहल्ले मे ही नही निकलती, यहाँ तक कि अब मैं तुम्हारे घर मे भी नही जाती। तुम मिलते तो मै तुमसे एक ऐसी बात कहती कि तुम हैरान रह जाते। हाय, कितनी अच्छी मधू बुआ है—महान् और तपस्वी। रूपा माँ कैसी हो जाती है! बडा

रोना आता है उन्हे देखकर। तुम इतने भावुक क्यों हो सूरज ? यह बड़ी बुरी बात है। इससे मनुष्य कायर और अविवेकी हो जाता है। सत्य से, जीवन की स्थितियों से, पलायन करने लगता है। तुमने तो स्वयं मुझसे कहा था एक बार—'भावुकता मनुष्य को बहुत दूर नहीं ले जाती, बीच ही मे छोड भागती है।' तुम तो मेरे पास आकर भी गली में से भाग निकले—डरपोक। तुम्हे तो मै बधाई देने को तरस रही हूँ—इंटरमीडियेट फर्स्ट क्लास मे पास हुए।

तब तक सूरज उसके पास आ खडा हुआ था। आह्लाद से खिंचा हुआ सन्तोष के कान मे जैसे कुछ कहने लगा। सन्तोष की मुद्रा तब भी न भग हुई। एकाएक सूरज ने अपनी बाहुओं मे उसे इतने आवेश से कस लिया कि सन्तोष का आँसू-भरा मुख उसके कन्धे पर आ गिरा।

ठाकुरद्वारे मे आरती के शख बज उठे, घण्टी-घडियाल के संगीत से सारा वातावरण भर उठा। उस देहरी पर जैसे असंख्य दीप जल उठे, जहाँ न जाने कितने क्षण तक सूरज और सन्तोष एक-दूसरे के बाहुओं मे, नयनो में परिरम्भन मे समर्पित होते रहे।

सन्तोष को जैसे एकाएक होश हो गया। सुध में आकर वह सिर झुकाए घर में भागी। सूरज उसी स्थान पर खडा रहा—दायें हाथ से किवाड थामे और बाँह पर माथा टिकाए। सूरज की आँखो मे जैसे बडे-बडे लाल-लाल बादलो के पहाड उभर आये हों और वह बेसुध-सा किवाड के सहारे टिका रहा। आँगन के बरामदे तक पहुँचते-पहुँचते सन्तोष भी जैसे बेसुध होने लगी। उसके प्राणों में जैसे युगों का सोया हुआ सगीत, सब एक ही बार में बज उठा हो। सारी नसो में जैसे इन्द्रधनुष खिच गए हो। अग-अंग पर मेहदी, दूबअक्षत, कुमकुम आलता, अगराग और सिंदूर रच गए हो। घर-आँगन मे ढोल-मंजीर बज उठे हो। सखियाँ मगल गाने लगी हों। द्वार पर शहनाई बज उठी हो। आँखो मे कजरारे बादल झुक आए, जिनमे उसकी नसों के इन्द्र-धनुष धीरे-धीरे बहकर आ टिके। आज धनुष-यज्ञ है। आज उस धनुष

को सूरज ने उठा लिया।

संतोष लाज से झुकी-झुकी, मुँह मे आँचल दबाए देहरी के पास बढने लगी, जैसे वह सूरज के गले मे जयमाल डालने बढी हो।

सूरज ने आहट पाते ही दौड़कर सन्तोष को अपनी बाहुओं मे उठाना चाहा, तभी दादी की पुकार आई।

मन्तोष बुरी तरह से काँप रही थी।

उत्तर मे सूरज को बोलना पड़ा, "आया दादी!"

और उसी साँस मे वह दादी के पास पहुँच गया। "कौन! सूरज है क्या रे?" दादी ने लडखडाते स्वरो मे कहा, "सन्तोष कहाँ है?"

"है वो दादी! वह आ रही है! बोलो, क्या चाहिए दादी, मै ला दूँ।"

मुँह धोकर सन्तोष लौटी, पर उसके बाल अब भी बिखरे थे, कनपटियों से उसकी घुँघराली अलके बिलकुल आँखो पर बह रही थी। आँखो में पानी के इतने छींटे दिये गए थे, फिर भी वे आँखे सहज नहीं हो सकी थी—पूर्णत. भरी-भरी थी, छलकती हुई, सावन की काली घटाएँ जैसे अब भी उनमे घिरी हों।

सन्तोष ने दादी को औषधि खिलाकर पानी पिलाया, और खिसककर फिर बरामदे मे जा बैठी—उसी अबाध मन से, मुद्रा से, मान से।

सूरज पास गया। बहुत धीरे से बोला, "बताओ मै कौन हूँ?"

"बेवकूफ· उल्लू कायर ।नही·· नही · नहीं ·।"

आवेग से छलछलाती हुई वह सूरज के अक मे बिछ गई, "अब कायर नहीं वीर· बहादुर! जब तुम गली से एकाएक भाग गए थे तब मैने तुम्हे यही कहा था, तुम्हे एक गाली और भी मैने दी थी—भावुक। अब क्षमा माँग रही हूँ। मुझे याद है, तुमने एक बार अपने कबूतरों को मार भगाया था न! समझो उन्हीं कबूतरों मे से एक मै भी हूँ, जिसे तुम कभी नही भगा सके। कभी नही भगाओगे।"

सूरज चुप था।

"तुमसे मुझे बहुत बातें करनी है। कहाँ से शुरू करूँ, समझ नही पा रही हूँ।"

"अपने पास से शुरू करो।"

"मेरे पास केवल तुम! केवल तुम! केवल तुम्हारा स्नेह! तुम! और जानते भी हो, तुम क्या जानोगे, तुम तो इधर-उधर फिरते रहते हो, अकेले निर्वासित बनकर। मैं भी तो हूँ, मुझे क्यो नहीं सग ले लेते। पिताजी वृन्दावन चले गए। गली-मुहल्ले की औरतें हमारा-तुम्हारा नाम जोडती है। कहती है तुम इसलिए ऐसे हो कि ।" सहसा सन्तोष के मुख पर एक अनुपम छवि बरस गई। वह चुप होकर अलग हट गई।

"तुम टेथ क्लास फर्स्ट क्लास मे पास हुई।"

"तो क्या हो गया इससे? एफ० ए० थोडे ही पढने पाऊँगी? पिताजी मुझसे एकाएक बहुत नाराज रहने लगे है।"

"मै बता दूँ क्यों," सूरज ने कहा, "तुम ब्याहने योग्य हो गई इसलिए।"

दोनो हँसते रहे।

एकाएक सन्तोष उदास हो गई, "एक बात सुनी है। तुम अपने घर क्यो नहीं जाते? कैसे आदमी हो तुम? पता है तुम्हें? बहू माँ ने मधू बुआ पर कितना भयानक इलजाम लगाया है!"

"वह क्या?" सूरज भयाक्रात हो गया।

"बहू माँ कहती हैं कि बुआ का चरित्र बुरा है। वह जो गद्दी के छोटे मुनीम हैं न, रामचन्दर उन्हीं का नाम लेकर।" यह कहती-कहती सन्तोष सिसककर रो पडी। और एक बार फिर उसी रुँधे कण्ठ से कहा, "मुझे भी न जाने क्या-क्या कहती रहती है।"

"तब तो मैं निश्चय ही घर जाऊँगा, और अभी जाऊँगा।"

यह कहता हुआ सूरज गली में उतर गया।

६

चौड़ी सड़क पर आकर सूरज ने जब अपने घर के दरवाजे को देखा तो उसे लगा वह घर उसका नहीं है। वह ऐसा घर है, जहाँ उसका अस्तित्व बन्दी है, जहाँ उसके माँ-बाप गिरवी हैं और जहाँ वह सर्वथा अनादृत है—पूर्णतया उपेक्षित।

सड़क से दुकान पर चढ़ते समय उसके पैर काँप रहे थे। उसका मन चीख चीख़कर कह रहा था, यह तुम्हारी हार है, यह प्रत्यावर्तन तुम्हारी पराजय है।

दुकान पर कोई न था—न चेतराम न गोरेमल। दोनों मुनीम रामचन्द्र और सीताराम गद्दी पर बैठे थे। होरी तराजू के पास लगा था और हिरनू किसी व्यापारी को नाश्ता कराने में व्यस्त था।

सूरज का एक पैर गद्दी की ओर बढ़ रहा था, दूसरा सीधे घर में जाना चाहता था। तभी दुकान के सभी लोगों ने उसे देख लिया और जैसे स्वागत करने दौड़े। मुनीम लोगो ने बताया, चेतराम को लेकर गोरेमल स्टेशन गया है, कुछ बिल्टी करानी है। होरी सूरज के लिए एक कुरसी झाड़-पोछकर रखने लगा। हिरनू दौड़ा घर में जाने लगा, पर सूरज ने उसे रोक लिया।

सबको विस्मय में छोड़कर सूरज स्वयं ही बढ़ गया। देहलीज के आगे ही उसे गौरी मिली—हट्टी-कट्टी, सीता जीजी से भी चार कदम आगे।

"नमस्ते गौरी जिज्जी!" सूरज ने भराए कण्ठ से कहा।

गौरी विस्मय में पड़ी चुप रह गई और सूरज के पीछे-पीछे दौड़ी। आँगन में प्रवेश करते-करते सूरज रुक गया। उसने देखा, आँगन में एक पलंग के ऊपर रूपाबहू बैठी है, नीचे नंगे फ़र्श पर मधू बुआ बैठी है—एकाग्र, चुप और उदास।

बाल बिखेरे रूपाबहू बुआ को उपदेश दे रही है, "स्त्री का धर्म

है केवल पतिव्रत। पतिव्रता नारी के सामने दुनिया की कोई भी ताक़त बडी नहीं है। एक बार जमराज भी हार मान लेता है। सावित्री-सत्यवान की कथा ···। स्त्री के लिए उसके पति से बाहर कुछ नही है। उसके लिए सब कुछ—धन-धर्म-लक्ष्मी, दूध पूत—उसी पति ही मे है। उसी पति मे स्वर्ग भी है और मोक्ष भी। स्त्री के लिए पर-पुरुष भाई, पिता और पुत्र के समान है। और आगे की सोचो तो पर-पुरुष स्त्री के लिए अछूत है, सर्वथा त्याज्य है। नारी धर्म कहता है कि स्वप्न मे भी पर-पुरुष का ध्यान करना महापाप है—और स्त्री के लिए कुपंथ पर जाना रौरव नरक मे गिरना है।"

फिर रूपाबहू ने पल्ले से अपने खुले सिर को ढकते हुए कहा, "पति ही सब कुछ है। स्त्री के लिए पति ही उसका ईश्वर है, उसका भाग्य-विधाता है। उसे छोड सारा ससार वृथा है।"

सहसा तभी आँगन मे सूरज प्रविष्ट हुआ। रूपाबहू की जिह्वा जैसे तालू से चिपक गई। जैसे उसे किसी ने काठ मार दिया। वह बस देखती रह गई—केवल क्रियावश। मधू बुआ ने बस केवल एक बार सूरज को देखा और अपने मुख को घुटनो के बीच छिपा लिया—अभियोगी की तरह, डरे हुए शिशु की भाँति, जिसके आगे-पीछे कोई न हो।

सूरज ने प्रकृतिस्थ होकर कहा, "यह सब क्या हो रहा था? बुआ! ओ बुआ! उठो तुम यहाँ से। उठती हो कि नही, यहाँ क्यो बैठी?

आवेश मे सूरज ने बुआ को बाँहों मे उठा लिया। बुआ निस्पद थी, जैसे सज्ञाहीन।

सूरज ने बुआ को सम्हालते हुए माँ से कहा, "पति ही सब कुछ है, स्त्री के लिए पति ही उसका ईश्वर है, यह सब तुम मेरी बुआ को क्यों समझा रही हो? कौन हो तुम समझाने वाली।" 'तुम' शब्द को इस तरह पीसकर सूरज ने उच्चरित किया कि सारा आँगन दहल गया।

"पति-धर्म की शिक्षा तुम देने चली हो? और इस बुआ को

देने चली हो ? पहले इस पति-धर्म की शिक्षा अपने-आप तो ग्रहण करो। तुम, जो अपने पति को इतनी घृणा से देखती हो ! तुम, जो अपने-आपको गोरेमल की बेटी से अलग कभी सोच ही नहीं सकी—न किसी की माँ, न किसी की बहू, न किसी की धर्मा ! तुम, जिसकी उपस्थिति से सारा घर जेलखाना बन गया—सारा घर असहज हो गया, कोई अपनी जिन्दगी नही जी रहा है। तुमने जैसे इस घर मे सबके भीतर एक-एक गाँठ बाँध दी है। इस घर मे कभी कोई ऐसी भयानक गाँठ वाला आदमी नही आया था। सब सहज थे, सरल सीधे। तुम पहली थीं जो इस घर मे आई—बहुत बडी गाँठ लेकर और विष की तरह उसे सारे घर मे फैला दिया। तुम ।"

बुआ ने तत्काल सूरज के तप्त मुँह पर अपना हाथ रख दिया। उसे आगे कुछ न बोलने दिया। उसे खींचती हुई एक ओर हटा ले गई। "इसमे इस तरह बिगडने की क्या बात है ?" बुआ सूरज को डॉटने लगी, "वह बडी है, पूज्य हैं, उन्हे शिक्षा देने का अधिकार है, इसमे तुम्हे इतना क्रोध क्यों ?"

"लेकिन यह पतिधर्म और पतिव्रत की शिक्षा तुम्हे क्यो ?"

"तुमसे मतलब ?" बुआ ने स्वर को जितना ही कडा करना चाहा, वह सहसा उतना ही पिघल गया। सारा कण्ठ, आँखे स्वर-वाणी, जैसे सारा व्यक्तित्व आँसू-आँसू हो गया और बुआ सारे आँसुओ को अगस्त्य मुनि की तरह पीने लगीं, पीती रही।

सूरज खुद वहाँ से हट गया। उसके लिए बुआ को देखना असह्य था और ठीक उसी तरह बहू माँ को। जिस स्वतन्त्रता-सग्राम को वह बाहर बाहर लडता था, वह शायद उसके लिए झूठा था, असली स्वतन्त्रता-सग्राम तो उसके घर-आँगन मे छिडा है।

घायल मन से सूरज बाहर चला गया। चुपचाप कुरसी पर जा बैठा। उसे देखकर किसी को बोलने की हिम्मत न हुई। कुछ क्षण के बाद वह उठा, कलश से पानी उडेलकर कई गिलास पानी पी गया।

तभी गोरेमल के साथ सामने चेतराम दिखाई पडा।

दोनों सीधे गद्दी पर चले गए। सीताराम के द्वारा चेतराम ने सूरज को एक गुप्त सन्देश भिजवाया—सूरज तुम घर मे चले जाओ।

"कह दो कि सूरज कही नही जाता, वह यहीं रहेगा।"

सूरज ने यह इतनी जोर से कहा कि चेतराम गद्दी पर काँप गया।

गोरेमल गद्दी से बाहर निकल आया, "मुनीम, चेतराम को इधर भेजो।"

चेतराम पास आ खडा हुआ।

गोरेमल ने पूछा, "तुम्हारे साहबज़ादे महाशय तुमसे माफी माँगकर यहाँ आये हैं कि यूँ ही? ज़रा गौर करने की बात है!"

"जी, ओ · ओ···हाँ···जी, बात यह है कि···" चेतराम के मुँह से जैसे कोई शब्द नही फूट रहा था।

तभी सूरज बोला, "कैसी माफी, और किससे माफी?"

"चेतराम, जवाब दो!"

"मैं जवाब आपसे चाहता हूँ," सूरज ने कहा।

"तमीज से बातें करा!"

चेतराम डर से बीच मे आ खडा हुआ और सूरज को चुप कराने लगा।

सूरज अबाध गति से बोला, "आपकी तमीज़ मेरे पास नहीं है। यह मेरा घर है। मै अपने घर मे स्वतन्त्र हूँ। मै किस बात की माफ़ी माँगूँ? और किससे, क्यों माँगूँ?"

सूरज की बातें गोरेमल तक न जायँ, इसलिए चेतराम बीच मे बोलता रहा, "लडका है। नादान है। नासमझ है। इसकी बात का क्या? लाला, इसकी बात पर न जाइए। अभी तो मै हूँ। यह कौन है? यह इसकी नादानी है। गर्म ख़ून है।"

सूरज कह रहा था, "सब्र की हद हो गई! आप महज़ अपने को तहज़ीब का ठेकेदार समझते हैं। हम सब आपकी नज़र में हैवान हैं

सारा गेहूँ स्टेशन पर पहुँच जाय। 'बिल्टी' बनवाने मे नाम का ध्यान रखना।"

मौक़ा पाकर चेतराम घर मे जा रहा था—सूरज से मिलने। पर गोरेमल ने डाँट दिया, "इनकम टैक्स के सारे पर्चे जब तक तैयार न हो जायँ, तुम गद्दी से उठ नहीं सकते।"

और गोरेमल स्वयं उन्ही के साथ बैठकर अपना काम करने लगा। अपने दिल्ली फ़र्म के 'इनकम टैक्स' के पर्चे वह स्वयं कल रात ही से बना रहा था। दिल्ली मे पिछले वर्ष 'इनकम टैक्स' के पर्चे बनाते समय पुलिस का छापा पड गया था और सब जाली पर्चे पकड लिये गए थे।

चेतराम पर्चे बनवा रहा था, पर उसके अन्त:करण मे सूरज नाच रहा था—नाराज गोरेमल का 'लेकिन' चुभ रहा था। उसके अन्त-क्षितिज मे गोरेमल का 'बिल' उभर रहा था—उसका बैंक बैलेन्स, दिल्ली की फ़र्म, और कई लाख रुपया, जिसे उसने गुप्त रखा है, जिससे सरकार कर न ले सके। सोना, जवाहिरात के रूप में जो उसकी अचल सम्पत्ति बन गई है—वह सब-कुछ चेतराम के मन में फैलता जा रहा था।

करीब ढाई बजे सूरज घर मे से निकलकर फिर बाहर की उसी कुरसी पर चुपचाप बैठ गया। लू चल रही थी और साथ-ही-साथ अंधड भी तेज। भीतर गद्दी से दोनों मुनीम, चेतराम और गोरेमल की आवाजें एक-पर-एक उभर रही थीं।

कुछ देर के बाद, न जाने किस प्रसंग मे, गोरेमल गरजने लगा, "चेतराम, सोना सदा सोना है, लेकिन ख़रीदते समय उसका और भाव होता है, बेचते समय और। ये नौजवान आजकल के क्या बनते हैं अपने को। मेरी उमर पचपन के करीब है, लेकिन चार नौजवान मिलकर मेरी इस मुट्ठी को खोल दें तो एक हज़ार इनाम! अब भी दो-दो शादियाँ करके निभा सकता हूँ। यह चरित्र की बात है। नियम-

संयम की बात है। 'मनी' और 'मणी' ससार में यही सत्य है और सब झूठ ! 'मनी' माने धन, 'मणी' माने वीर्य—इससे बढ़कर ससार में कुछ नहीं। और इन जवानो में ये दोनों चीजें नहीं। और ये भी जवान बनते है।"

यह कहता हुआ कुल्ला करने के लिए गोरेमल बाहर चला आया। बडी उपेक्षा से उसने सूरज को देखा, "जिसमें मान-अपमान का भेद नही, अपने भविष्य की चिन्ता नहीं, अपने-पराये मे फर्क नही, लानत है उस पर, उसका मुँह देखना पाप है, कलक है वह अपने घर का, ख़ानदान का।"

इस तरह हवा मे बात कर-करके गोरेमल गाली देने की कला मे बडा माहिर था। वह जिसके पीछे पड जाय, बस भूत बन जाता है।

सूरज ने भी हवा में कहना शुरू किया, "एक भीतर बैठी है—माँ बनकर, बहू बनकर। किसी को पतिव्रत, नारी-धर्म और सतीत्व की शिक्षा देती हैं, किसी को भर आँख देख नही पाती, न जाने कितना नीच समझती हैं। और एक बाहर आ बैठते हैं, जो दुनिया मे अपने को सबसे बडा ईमानदार, चरित्रवान, शक्तिवान, ज्ञानी और महात्मा समझते हैं। स्नेह किसे कहते है, इन्सान को आदर-सम्मान देना किसे कहते हैं, शायद इन्हें कभी छू तक नहीं गया ह।'

चेतराम गद्दी से उठकर बाहर आया—सूरज को रोकने, पर गोरेमल की आँख देखकर वह भीतर लौट गया।

"ब्लैक मार्केटिंग करना, जाली बही रखना, 'इन्कम टैक्स' के जाली पर्चे बनाना, सोने-चाँदी की ईंटे बनवाकर गाड लेना, सट्टेबाज़ी करना, झूठी-झूठी 'बिल्टियाँ' बनाना, 'वार' को सपोर्ट करना, मँहगाई, कंट्रोल-राशनिग, तबाही और अकाल चाहना, अंग्रेज़ी राज्य के दावेदार बनना, यही इनकी ईमानदारी हैं, चरित्र है, शक्ति है, ज्ञान है !"

यह सब सूरज एक ही साँस में कह गया। गोरेमल उसका मुँह देखता रहा, "कह चुके ?"

सूरज चुप था।

"हूँ! तो यह बात है!" गोरेमल अपनी मुट्ठी मलने लगा, और 'हूँ हूँ' कह-कहकर अपने-आपमें लम्बी-लम्बी साँसे भरता रहा, बडी देर तक वही बरामदे मे टहलता रहा।

रात को ठेलो पर लद-लदकर गेहूँ के बोरे स्टेशन की ओर जाने लगे। सूरज जगा बैठा था। गोरेमल सहन मे टहल रहा था। सूरज छेदामल के अहाते के पास चेतराम का रास्ता रोककर खडा हो गया।

"आज मै निश्चय ही तुम्हे रोक लूँगा," सूरज ने बडे ही दयनीय स्वर मे कहा, "तब तुम्हे नही रोक सका, जब तुम जिस चीज के आने-जाने मे कंट्रोल नही था उसी चीज के नाम से 'बिल्टी' बनवाते थे, पर भेजते कुछ और थे। पर आज मै रोकूँगा, यह असह्य है, हद है।"

सूरज का कण्ठ भर आया, पर उसका आवेश बढ गया, "यह हद है। यह हजार मन गेहूँ 'फेमिन रिलीफ सोसाइटी' के नाम से कलकत्ता जा रहा है, लेकिन असली बिल्टी किसके नाम बनेगी? बोलो बाबू! पिताजी बोलो! आज उत्तर दो मुझे। मैं इधर-उधर सत्याग्रह करता घूमता था, स्वतन्त्रता-संग्राम मे पुलिस और जेलखाने की यातना सहता था, पर शायद वह सब इतना महत्त्वपूर्ण नहीं था जितना यह है—तुम हो, माँ है, बुआ है, जीजी है मै हूँ और हमारा यह जीवन है।"

"लेकिन लल्ला, यह मैं कहाँ कर रहा हूँ, यह तो गोरेमल कर रहा है।"

"नहीं बाबू, तुम्हीं कर रहे हो। गोरेमल तुमसे करा रहा है! यही तो भयानक है।"

"गोरेमल बहुत नाराज़ हो गया है हमसे," चेतराम कहने लगा। "इस समय भूल जाओ सब। अन्त में सब हमारा ही है।"

"हमें कुछ नहीं चाहिए उसका। बाबू, क्या दिया है उसने आज-

तक तुम्हे ? केवल अपमान दिया है। तुम चेयरमैन नही हो सके, तुम रायबहादुर, रायसाहब नहीं हो सके। उसने तुमको न किसी संस्था का प्रेसिडेन्ट बनने दिया, न सेक्रेटरी, न सभापति। उसने कुछ भी नही होने दिया है।"

उसी क्षण सीताराम मुनीम दिखाई पडे। लाला चेतराम को देखते ही बबडाहट मे बोले, "लालाजी ! लालाजी ! सेठजी आ रहे है !"

चेतराम अपने रास्ते भागा। सूरज वही खडा रह गया। सामने से चाँदी की मुठिया वाली छडी के साथ मूँछ पर ताव दिये गोरेमल गुजरने लगा। सूरज ने उसे रोककर कुछ कहना चाहा, पर चुप रह गया।

रात के लगभग डेढ़ बजे जब जाली और असली दोनों बिल्टियाँ बन रही थी, उसी क्षण पुलिस का छापा पडा। स्टेशन मास्टर, माल-बाबू के संग चेतराम हिरासत मे ले लिया गया। घटना-स्थल पर एका-एक सूरज दिखाई पडा। उसने बडे ऊँचे स्वर में कहना शुरू किया—

"अभियोगी गोरेमल है !"

"अभियोगी गोरेमल है !"

पर क्षण-भर मे गोरेमल वहाँ से गायब था—सूरज के देखते-देखते।

तीसरा भाग

पीली दुअन्नी

१

चोथेलाल हलवाई की दुकान उठ गई है। दिसम्बर की रात के बारह बज रहे हैं। बाहर की गहरी अगीठी पत्थर के कोयलो के अगारों से भरी दहक रही है। उसके किनारे रज्जुआ, ताले और जगनू बैठे आग ताप रहे है। उनके बीच मे केवल एक बीडी है—जगनू के ओठों पर, उसीको एक-एक फूँक मे तीनों ख़त्म कर रहे है।

जगनू बडे दर्द से बोला, "अमे रज्जू बे, यह राबर्ट्स कम्पनी की फैक्टरी जब से बन्द हुई, मेरी हिम्मत नहीं होती कि मै हनुमान-वाटिका की तरफ जाऊँ।"

"अमें दिन दिहाडे वहाँ गीदड बोलते हैं," रज्जू कहने लगा। "क्या साहब था मेरा! महीने मे सिर्फ एक दिन के लिए आता था, और हम सबको इनाम बाँटता था। उसकी मेम साहब फरास की थी, मैने तो एक ही बार देखा था उसे, मालिक! अगूर की तरह थी। हम लोगो को उसने एक एक पैकेट चाय दी थी। मुझे तो उसका पैर नही भूलता, जी हुआ था कि ज़बान से चाट लूँ!"

ताल मुहम्मद ने कहा, "और मेरे साहब का पेच—इतनी साफ-सुथरी और रौनक की जगह तो कहीं दिल्ली-कलकत्ता मे भी नही होगी। बहिश्त का टुकडा—मेरा साहब उसे अपने हाथ से सजाता था। जिस रात को मेरा साहब सब-कुछ बेचकर इंगलैड जाने की तैयारी कर रहा था, उस रात मैंने देखा था, अपने अंग्रेजी झडे मे मुँह छिपाकर वह न जाने क्यों रो रहा था।"

रज्जू बोला, "हमारा साहब तो जब आख़िरी बार आया था मैनेजर को हिसाब-किताब समझाने, तब जाते समय कम्पनी के सारे वर्करों को एक लाइन मे खडा करके उसने कहा था—'टुम शवका हिमाब चुकटा हो गया न ! हमारी कम्पनी अब यहाँ से टूट जा रही है।' हम अपनी कम्पनी की तरफ से टुम सबका शुक्रिया अदा करता है।' उसने सचमुच हम लोगो को सलाम किया था।"

"कितनी जल्दी से सारा बेच-खोचकर ये दोनो साहब भाग गए।"

"जैसे रामचन्दरजी ने अयोधिया का राज्य छोड दिया था," ताले ने कहा।

"अजी, उन्हे आसार मालूम हो गया कि अग्रेजी हुकूमत अब जाने को है यहाँ से, इसलिए वे पहले ही सब बेचकर अपने मुल्क चले गए।" जगनू कह रहा था, "अजी, बडे चतुर हैं ये अगरेज ! बन्दर होते है न, जब कही हैजा-ताऊन पडने को होता है तो वे वहाँ से एक महीना पहले ही छोडकर भाग जाते हैं।"

रज्जू बडे धीमे स्वर में बोला, "पिछले साल जब मिठाईलाल के पिता चिरौंजीलाल कानपुर गए थे न, गद्दे वाली पलंग खरीदने, तब उस रात जो यहाँ उनके कपडे की दुकान मे आग लगी थी—तब देखने लायक था इसी चन्दन· "

"यह चन्दनगुरु भी क्या है !" ताले ने कहा, "पुलिस निगरानी खुल गई है उस नम्बरी पर ! लेकिन अब भी शराब बनाता है अपने यहाँ। एक दिन आध पाव मुझे भी पिलाई थी।"

"शराब तो जियालाल भी बेचने लगा है," रज्जू कहने लगा। "सारे लाला लोग शराब पीने लगे है। करें क्या, पानी की तरह तो रुपया कमा रहे हैं इस कंट्रोल मे ! और वह जो विपिन-है, साहू गुरचरनलाल के साझे मे जिसने नावेल्टी सिनमा खोला है, अब पहचानता तक नहीं। एक दिन टिकट माँगने गया—'लैला मजनू' का सनीमा लगा था—पर उसने मुझे कमरे से निकाल दिया—साला मैनेजर बना

बैठा है।"

"चौधरी रामनाथ का भी तो सनीमा घर तैयार हो रहा है—'परभात' नाम रखा है शायद," जगनू कह रहा था। "साला देखते-देखते करोडपति हो गया, अपने बडे लडके परभात के नाम से सनीमा खोल रहा है। वही मैनेजरी करेगा। और सुना है कि राबर्ट्स कम्पनी की बिल्डिंग में वह कोई फैक्टरी चालू करने वाला है।"

रजुआ बोला, "सच यार, तभी तो उसने साहब से सब ख़रीद लिया था। कोशिश हो जाती तो उसमें नौकरी मिल जाती—मुझे भी और लालमुहम्मद को भी। क्यों जगनू, कोशिश करा दे न यार!"

"पहले खुलने तो दो," जगनू ने कहा। "यार दो-दो बच्चे हो गए मेरे, म्युनिस्पेल्टी के इस काम से मेरी भी गुज़र नहीं हो रही है।"

रजुआ ने एकाएक बडे रहस्य के स्वर मे कहा, "सुनो यार, कहीं चोरी क्यो न की जाय!"

"मैं भी यही सोचता हूँ," लाले ने कहा। "जब कहीं कोई काम नही, रोज़गार नही तो फिर कैसे काम चले? कितने दिन हो गए बेकार बैठे।"

"एक ठेला गाडी खरीदो यार तुम दोनो," जगनू बोला। "ढाई सौ रुपये का एक बैल और पचास रुपये की ठेला गाडी—तीन सौ रुपये में तुम दोनों की ज़िन्दगी चल पडेगी।"

"तो दो न तीन सौ रुपये!" रजुआ के मुँह मे पानी भर आया।

"अबे मेरे पास कहाँ हैं? मैं तो तरकीब बता रहा हूँ।"

"तरक़ीब से क्या!" लाले बोला। "कहो तो यहीं बैठे-बैठे हजारों तरीके बता दूँ रुपया कमाने के। अंगरेज़-कम्पनी में काम कर चुका हूँ, किसी बनिया-बक्काल के घर नहीं! क्या समझा है हमे!"

"अबे छोड भी!" रजुआ उसी रहस्य के स्वर मे बोला, "जगनू भाई, बस महज़ तीन सौ रुपये की कहीं चोरी करा दो—दोस्त, बडा एहसान होगा!"

जगनू चुप सोचने लगा। रजुआ और ताले एकाग्र उसे देखने लगे और उनके बदन की गरमी एकाएक तेज होने लगी—यद्यपि अंगीठी ठण्डी होने जा रही थी।

'कहीं से कर्ज क्यों न ले लें?" जगनू बोला।

"कर्ज, यार ठीक नहीं, बड़ी फँसान हो जाती है उसमें," ताले ने उत्तर दिया।

"हाँ यार, बस एक बार चोरी—और महज़ तीन सौ की!" रजुआ ने जैसे प्रतिज्ञा की।

"अच्छा चलते हम सब पहले कसम खाएँ कि एक ही बार महज तीन सौ रुपये की चोरी करेंगे!"

"राम कसम!"

"खुदा कसम!"

रात के डेढ़ बज रहे थे। जगनू बजाजा मुहल्ले की एक गली में खड़ा हो गया। आगे गली के मोड़ पर उसका जलाया हुआ लालटेन प्रकाश दे रहा था। वह उसे बुझाने चला, पर न जाने क्यों, उसके हाथ-पाँव बुरी तरह काँपने लगे।

वह ताले-रजुआ से भयभीत स्वर में बोला, "जाओ तुम बुझा आओ उसे।"

"यार ऐसा लग रहा है जैसे मेरा 'पेंच' वाला अंगरेज़ साहब मुझे डरा रहा है।"

ताले की यह बात सुनते ही रजुआ बोला, "अच्छा, आज छोड़ो कल करेंगे।"

तीनों चुपचाप अपने-आपसे डरे हुए, धीमर टोले की ओर चले गए।

अगली रात ताले और रजुआ ने बिना जगनू को कुछ बताए एक घर में चोरी कर ही ली—चार सौ नक़द रुपये और ढाई सौ के गहने। दोनों ने आधी-आधी रक़म बाँट ली और जगनू से उन दोनों ने बताया कि अब वे अलग-अलग ठेलागाड़ी चलाएँगे।

२

चेतराम करीब एक महीने से बीमार पडा था। पहले उसे धडके की बीमारी हुई, फिर इधर उसे लगातार बुखार आ रहा था। फर्म का सारा काम चौपट हो रहा था। दिल्ली से गोरेमल ने पहले अपने मुनीम को यहाँ का काम देखने के लिए भेजा था, अब वह पिछले चार दिन से स्वयं यहाँ आ गया है। बरेली के मिशन अस्पताल के सबसे बड़े डॉक्टर को घर बुलाकर उसने चेतराम को दिखलाया है। खून और पेशाब की परीक्षा हुई है। दिल्ली से सुई की दवाइयाँ आई हैं, और कल से चेतराम की तबीयत सुधर रही है।

गद्दी से भीतर वाले कमरे मे चेतराम मुँह ढके जैसे सो रहा है। अभी थोडी-सी रात बीती है, लेकिन वहाँ इस तरह की खामोशी छाई है कि लग रहा है आधी रात बीत चुकी है।

सूरज चुपचाप बाहर बरामदे मे बैठा है, गोरेमल की गद्दी से लेकर चेतराम के पलग तक चक्कर काट रहा है—जैसे वह अपने भीतर के किसी तीव्र भाव के घात-प्रतिघात से इधर-उधर डोल रहा हो। चेतराम सोया नहीं है, जग रहा है। वह महज़ गोरेमल के कारण मुँह ढके पडा है। इस सत्य को गोरेमल भी जानता है।

चेतराम को देखने उसके तीनों दलाल एक सग आये—बिहारी, नैनू और कुसामल। उन्हे देखते ही गोरेमल बोलने लगा, जैसे वह किसी माध्यम की प्रतीक्षा मे बेचैन डोल रहा था—"सपूत कहलाने को मरते हैं। इनका चले तो ये ज़िन्दा ही अपने बाप को कही ढक आयें। अपने घर मे आग लगाकर कहे कि यह राष्ट्र-सेवा है। हजार मन गेहूँ फूँक दिया। बाप को पुलिस हिरासत मे डालकर खानदान की इज्ज़त बढा ली। यह धडके की बीमारी मिली कहाँ से? पुलिस हिरासत मे मिली, उस अपमान और बदनामी से मिली, जो भाग्यवान पुत्र के हाथ से रचा गया! ज़रा गौर करने की बात है जनाबआली!"

"बिहारी, नैनू, कुंसामल, मै तुम तीनो की साक्षी देकर कहता हूँ, मै अगर एक बात भी झूठ कहूँ तो तुम लोगो का जूता और मेरा सिर ! उस 'केस' मे मेरे ढाई हजार रुपये नक़द ख़र्च हुए, तब मै चेतराम को जेल जाने से बचा सका। मै क्रोधी हूँ, शक्की हूँ, जिद्दी हूँ, चिड़चिड़ा हूँ, मक्खीचूस हूँ और दुनिया मे सबसे बदतर हूँ—मुझे सब मंज़ूर है, लेकिन गोरेमल को यह कभी नही मज़ूर है कि वह किसी तरह पैसे की मार खा जाय। जिसने उसे आँख दिखाई या तो उसी की आँख या मेरी ही। गोरेमल बहुत मामूली आदमी है, न उसके आगे-पीछे कोई खिताब है, न पदवी है, न दर्जा है, न उसे किसी चीज़ की इच्छा ही है—लेकिन वह बादशाह है अपने घर का, अपना ख़ुदमुख्तार है। जिस प्रेसिडेण्ट को कहो, जिस लीडर को कहो, जिस हाकिम-हुक्काम को कहो और जिस रायबहादुर, रायसाहब को कहो, गोरेमल उन्हे अपने दरवाज़े पर बुला सकता है। बीसों एम० ए०, ग्रेजुएट को मै नौकर रख सकता हूँ। कल-कल के लौंडे मुझे चार सौ बीस पढाते है। बाप मर रहा है, फ़र्म डूब रही है, बेटा बी० ए० पास करने चला है ! बाप ने मारी मेढकी, बेटा तीरन्दाज़ ! लीडरी करने चले है ! देश की स्वतन्त्रता की बागडोर इन्ही के हाथो है।"

सूरज को अब असह्य हो रहा था। पर वह विवेक से देख रहा था, अगर वह बोलता है, तो गोरेमल से बात बहुत बढ जायगी और उसका दुष्परिणाम बीमार पिताजी पर पड़ेगा। पर सूरज दूसरी ओर यह भी सोच रहा था कि अगर वह अब भी नही विरोध करता तो गोरेमल अपनी कटुता की सीमा पार कर लेगा, वह अपमान करने की हद्द कर देगा।

गोरेमल कहता जा रहा था, "यह बाप भी बेटे से कम नही है। जो पुत्र कहता है, वह झट से पिता की समझ मे आ जाता है। और जो मै कहूँ वह बात लाख जनम समझ मे न आयेगी, ज़रा गौर करने की बात है। बड़ी लड़की सीता की शादी मैने कराई—अपने मुनीम के लड़के

के साथ, महज़ पाँच सौ रुपये मे। और वह लडकी सोने के गहनो से आज पटी है, पूरे घर की मालकिन है, दो-दो बच्चो की माँ है, न खाने की कमी न पहनने की। लेकिन वह शादी इस घर के सपूत को नहीं पसन्द आई। उसने गौरी की शादी पिछले साल अमरोहे में कर दी। मुझे कानों कान ख़बर न दी, जैसे मै ही दुश्मन हूँ इनका। चार हज़ार नक़द ख़र्च करके यह शादी की है और ऐसे घर जहाँ जरूरत पडने पर दस तोले सोना ढूँढने पर न मिले। ज़रा गौर करने की बात है।"

तीनो दलाल चुपचाप सुनते जा रहे थे। कभी-कभी कोई उनमे से समर्थन भी देता चलता था। सूरज एकाएक असह्य पीडा से तडपा। दलालों के सामने तनकर बोला, "चले जाओ यहाँ से!"

"यह है सपूत की शराफत, अपने दरवाजे की इज्जत!" गोरेमल दलालो के पीछे-पीछे सहन तक चला गया।

चेतराम ने बडे दर्द से सूरज को पुकारा, "लल्ला!"

पास आ सूरज भरा खडा रहा।

सहन मे गोरेमल की आवाज़ अब भी उन दोनो का पीछा कर रही थी, "एक शादी सपूत ने की। इसी तरह एक शादी बाप ने अपनी बहन की की थी—खुरजे में! ज़रा गौर करने की बात है।"

चेतराम एकाएक जैसे तडप उठा, "लल्ला, जाकर गोरेमल से कह दो मुझे ताना न मारें।"

सूरज वहाँ से टस-से-मस न हुआ। वह चाहकर भी न हो सका। बंदी बना खडा रहा। और बीमार पिता की अवज्ञा ही सही, असह्य अपमान भी सही, सूरज तब तक वहाँ स्थिर खडा रहा, जब तक उसमें उठा हुआ ज्वार धीरे-धीरे समाप्त नहीं हो गया।

गोरेमल सहन से लौटकर गद्दी पर बैठ गया। तब सूरज उसके सामने खडा हुआ। बडे ही संयत स्वर मे बोला, "आप सब कुछ करते है, लेकिन इतना अपमान क्यों करते है?"

"मुझसे सीधी ज़बान बोला करो, ज़रा गौर करने की बात है ! मै बी० ए० में नही पढ रहा हूँ ।"

"फिर भी आप बी० ए०, एम० ए० को नौकर तो रख सकते है !"

"तो !" गोरेमल देखने लगा ।

"पिताजी बीमार है, जब अच्छे हो जायँ, सहने की कुछ ताक़त आ जाय उनमे, फिर मै आपसे कुछ बाते करना चाहूँगा, अभी मै आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप बिलकुल चुप रहे—यद्यपि आपने अभी सब कुछ कह दिया है, कहने के लिए कुछ नही छोडा । पता नही किसे, कहाँ-कहाँ तीर लगा है.।"

"तीर ! कैसा तीर ?" गोरेमल ने अजीब उपेक्षा से कहा, "वह तीर-तार की बात जो लैला-मजनू और शीरी-फरहाद के किस्सो मे मिलती है, वही तो नही ?"

"आप तो धार्मिक आदमी है," सूरज गम्भीरता से बोला, "आपको जितना ईश्वर मे विश्वास है, उतना मुझे नही है । आप उसी ईश्वर से पूछिए—अपने ईश्वर से, कि पिताजी को धडके की बीमारी आपसे मिली है कि मुझसे । सच-सच पूछिए अपने ईश्वर से !"

"तुम पूछ चुके हो अपने ईश्वर से ?"

"मेरे पास ईश्वर नही है ।"

"फिर क्या है तुम्हारे पास ?"

"दर्द, अपमान, उपेक्षा !"

"इसके सिवा भी कुछ है तुम्हारे पास ?"

"है क्यों नही, पर यहाँ उसकी चर्चा करना मुझे स्वीकार नहीं है । वह मेरे भीतर है और भीतर ही रहेगा ।" सूरज का कण्ठ भर आया ।

अगले दिन गोरेमल दिल्ली चला गया । सूरज ने कॉलेज जाना बन्द

कर दिया। वह तब तक कॉलेज नही जायगा जब तक पिताजी स्वस्थ होकर दुकान की गद्दी पर नही बैठने लगेंगे।

बड़ी तत्परता और जिम्मेदारी से मुनीमों के संग वह गद्दी पर बैठता और पिताजी से पूछ-पूछकर फर्म का कार्य करता।

इन्ही दिनो एक सुबह, जब पूरब मे सूर्य भी उदित नहीं हुआ था, उसके द्वार पर एक ताँगा रुका। यात्री उस पर से उतर नही रहा था।

जो आगन्तुक था, वह किसी को पुकार भी नही रहा था। ताँगे-वाला आवाज दे रहा था, "कोई है? आकर बाबू को उतार ले जाओ!"

जो अतिथि उस द्वार पर आया था, उसमे शायद इतनी भी शक्ति शेष नही थी जो ताँगे वाले से ही कहकर, उसी के सहारे नीचे उतर जाता और उस घर मे चला जाता।

सूरज सहन को पार कर सड़क के पास चला आया, लेकिन आग-न्तुक का मुँह वह अब तक न देख सका था। वह उलटी दिशा मे मुँह छिपाए बैठा था।

"फूफा!" सूरज आह्लाद से भर गया और हँसता हुआ ईशरी फूफा को ताँगे से खीचने लगा।

"हाँ हाँ हाँSSS सँभाल के!" ताँगेवाला एकदम से दौड़ा और गिरते हुए यात्री को सँभालकर बोला, "देखते नहीं, बाबू से चला नही जाता। दोनों पैरों मे गठिया हो रहा है।"

दोनों पैरों में गठिया! और ईशरी फूफा! वह क्रान्तिकारी, जो दोनों हाथो से पिस्तौल चलाता है, जो मिनटो मे ट्रेन उलट देता है! नहीं नही, यह वह ईशरी फूफा नहीं।"

सूरज ने अपनी दृष्टि ईशरी से मिला दी। ईशरी के मुख पर कोई भी भाव न था—निर्विकार, निरुद्देश्य। बस वह महज़ देखने के लिए देख रहा था।

सूरज ने ईशरी को कन्धे पर लाद लिया, जैसे माथे पर मन्दिर का पुष्प रख लिया हो और उसी गति से वह सीधे घर में चला गया।

दौड़कर बुआ ने देखा और देखती रह गई—न कोई वाणी, न स्वर, न क्रिया, न कोई उपचार। बस, ढलकती हुई नज़र से न जाने क्या निहारती रह गई—दूर, बहुत दूर, जैसे कोई गा रहा हो .

सिया समाज सुहाग सुन्दरी,
रघुवर आये जनक की नगरी।

रूपाबहू आई। बाहर से धीरे-धीरे चलकर चेतराम आया। सब एक-दूसरे से बातें, कर रहे थे—सहमे हुए, लेकिन कोई ईशरी से कोई बात नही कर पा रहा था।

ईशरी इतना दुबला पड़ गया था कि बिलकुल स्याह लगता था। नाक कितनी लम्बी निकल आई थी ! आँखे बिलकुल धँसी-धँसी। मुँह कितना छोटा-सा लगता था—उदास, चिन्तामग्न और कभी-कभी बुड्ढों-जैसा तेज-हीन, भाव-हीन, केवल रेखाएँ-ही-रेखाएँ। सिर पर छोटे-छोटे बाल, कनपटियो पर पककर बिलकुल सफेद हो चले थे। दाढी-मूँछ की खूँटियाँ—वे भी कहीं-कहीं सफेद पड चुकी थी। दोनों गालों पर झाई पड गई थीं।

और गठिया दोनों पैरो मे !

यह सबसे अधिक करुण था। जैसे यही वह लक्ष्य था, जहाँ उसकी क्रान्ति अपने परिणाम पर पहुँचकर रुक गई थी।

ईशरी—असहाय, दीन, अवश !

यह अहेतुक भास ! मधू बुआ बिलकुल न रोई—एक आँसू भी नही। पृथ्वी की तरह थी—मौन, अचलधर्मा, सहिष्णु। जो कुछ भी मिले, सबको स्वीकार, अंगीकृत करते चलो। जो मिला है, यही क्या कम है ! मैं तो इसे ही अपना भाग्य समझती हूँ। ये लौट आए, सीधे मेरे ही पास आये। मुझे कभी नहीं भूले—मेरे लिए यही अश्रुत है—अपूर्व है। यही मेरा क्या कम गौरव है कि मैं ऐसे पुरुष की

पत्नी हूँ !

दोनो गाँठे फूल-फूलकर इतनी बडी हो आई थी कि उन्हे देखकर डर लगता है। पता नहीं उनमे पीडा कितनी होगी ! यह पुरुष कितना दर्द पी रहा होगा। यह कुछ बताता भी तो नही ! कुछ आभास तक नही होने देता। कहता है, ठीक हो जायगा, बहुत जल्द ठीक हो जायगा। इसमे घबराने की क्या बात ! यह तो यूँ ही हो जाता है ! पर यह पुरुष अब यह नही कह रहा है कि उसे बहुत शीघ्र जाना है, कल भोर ही वह लौट जायगा, उसे अमुक स्थान पर इसी क्षण पहुँच जाना है। यह भी नहीं कह रहा है कि उसके पीछे पुलिस पडी है या सी० आई० डी० लगी है। कितना निद्वंन्द्व हो गया यह पुरुष ! कितना परितृप्त, शान्त और सन्तुष्ट लग रहा है ! कोई दौड-धूप नही, जैसे वह प्रलय की आँधी किसी अन्धगुफा मे जाकर बन्दी बन गई हो। क्रान्ति की वह अग्नि, वह अबाध ज्वाला कहाँ बुझ गई जाकर ? क्या हिमशिखर ने उसे बाँधकर तोड दिया ?

हाय ! यह क्या हो गया ? मेरी भी तपस्या बाँझ पड गई क्या ?

क्या लेकर लौटा है यह ?

सब होम करके क्या मिला ?

बुआ हाहाकार करके पाँचवे दिन रो पडी—विशेषकर जब उसने ईशरी की उदास आँखे देखी—जिनमे दया की भीख थी, अनुताप के डोरे थे, बेबसी थी।

असह्य था यह बुआ के लिए।

सूरज ने अलीगढ और मुरादाबाद से डाक्टर बुलाकर ईशरी को दिखलाया, ऐक्सरे कराया। दवा और सुइयाँ, दोनो शक्तियो का सहारा लिया जाने लगा।

ईशरी को छोडकर घर में सब-के-सब इतने व्यस्त रहते थे कि घर-

आँगन या छत पर पहले की तरह अब बैठकबाजी नहीं थी। सूरज गद्दी सँभालता था, ईशरी के लिए डाक्टर और दवाइयाँ भी जुटाता था। चेतराम अभी बीमारी से उठा था—वह सुबह-शाम बहुत दूर तक टहलने जाता। भोजन करता और दोनों वक्त सो साता। सारा काम, सारी चिन्ताएँ सूरज ने ओढ़ ली थीं। पिछले दो दिनों से उस घर मे सन्तोष आने लगी थी— बुआ के पास।

३

मथुरा-वृन्दावन की यात्रा से राजू पण्डित अपने सग एक स्त्री लेकर लौटे थे। राजू पण्डित से ज्यादा उमर की वह नही थी, फिर भी वह उसे 'गोपी माँ' कहते। पूरी बस्ती मे, विशेषकर गोपालन मुहल्ले में, गोपी माँ को लेकर जगह-जगह घर-घर मे बडी चर्चा थी, विशेषकर, कुलवंती, सरजू सुनार की पत्नी के यहाँ। गली-पडोस का मामला था न! कुलवंती के यहाँ छेदामल की पत्नी बसन्ता आ जाती। फिर बातें छिडती, एक से अनेक।

"वृन्दावन में राजू पण्डित का कीर्तन भओ रहो, अखण्ड कीर्तन! राजू पण्डित नाचतो-नाचतो जे याही औरत पर गिर पडो।"

"जे औरत विधवा है कहीं की!"

"भगैल होगी, या रखैल कहीं की! जब दीदा का पानी एक बार गिर गओ तो !"

"जने किस जाति की है!"

"और जे नाम कैसा रखो है—गोपी माँ! न मुँह का पता न पेट का!"

"अग-अंग मे चुपडे तेल, वृन्दावन मे होरी-होरी।"

"जे इसी कूँ तो देख के राजू की माँ मरी है, वरना अभी वो बूढी

माँ मरती थोडो—अस्सी साल की उमर, मगर काम करती थी।"

"गोपी माँ! छि. कहाँ सन्तोष की माँ, कहाँ जे बन के आई है माँ!"

"जिन्दे न आया बोरिया, सपने न आई खाट!"

"अरी कुलवंती जिन्दे क्यो?" बसन्ता बडे ही रहस्य-स्वर मे बोली, "जे रूपाबहू बनी बैठी है—ठाकुरजी की पुजारिन यह भी तो! सात चूहे खाय के बिलार भई भक्तिन्!"

"मुआ फिर भी तो पेट न भरो इस पुजारी कू!"

"तब से सन्तोष कित्ती दुखी हे!" बसन्ता ने। कहा "सुना हे रोती हे!"

कुलवंती झलझला उठी, हाथ और आँख मटकाती हुई बोली, "जीजी, तुम भी! कहाँ की बात! वह प्रेम की रुलाई हे प्रेम की—सूरज से प्रेम हे! बडी गहरी छनती है दोनों मे—दो शरीर एक आत्मा हे दोनों। रोज़ जब तक देख न लें, मिल न लें, आँसू बरसतो हे तब तक!"

कुलवंती चुप रह गई।

"अब तो सूरज घर ही में रहता है," बसन्ता बोली। "बडी लडाई हे गई है दिल्ली वाले गोरेमल से। किसी कूँ डरता थोडे हे यह सूरज! दिन-दहाडे तो चला जाता हे सन्तोष के घर, और उसी तरह सन्तोष चली जाती है उसके घर। कोई रोक-टोक भी नही हे! ज़माना ही बदल गया अब तो।"

"अरे भाई! पढी-लिखी जो इतनी हे!"

"कहती है ब्याह नहीं करूँगी," बसन्ता ने आँख तरेरकर कहा। "हाय' हाय! ब्याह नहीं करूँगी! मेरी बेटी होती तो मै जिन्दा ही काटकर ढक देती। इतनी हिम्मत! लेकिन कलमुहाँ यह मुहल्ला ही ऐसो हे! आँख न दीदा, खाँय मलीदा! जे चाहे जाकूँ रख ले, काहू धर्म नही, समाज नही।"

"सो तो है," बसन्ता ने धीरे से कहा ।

"वह जो सन्तोष का मामा है, काशीपुर वाल, जे उसने भी तज दयो राजू पण्डित कूँ ! आना-जाना सब बन्द है ! जे उसने दो-दो शादियाँ तै करी थी सन्तोष वास्ते ।"

कुलवन्ती बातें करते-करते जब यहाँ पहुँच गई, तो बसन्ता घबड़ाने लगी कि अब वह उसके रम्मन और साहू साहब की लड़की स्वर्णलता वाली घटना पर न आ जाय । अतएव छेदामल को दवा देने का बहाना करके वह झटपट वहाँ से उठी और अपने घर की ओर मुड़ गई ।

कुलवन्ती महिला आर्यसमाज की सेक्रेटरी है । वह स्त्रियों के भरे समाज में घर-घर का कच्चा-चिट्ठा उदाहरण के रूप में झट सामने रख देती है, ज़रा भी लिहाज़ नहीं करती । अनसूया, सती सावित्री, वेद की नारी के नाम पर वह किसी भी औरत-लड़की को धाँय धाँय उड़ाने लगती है । इसलिए मुहल्ले की सारी स्त्रियाँ कुलवन्ती से काँपती हैं । लेकिन कुलवन्ती भी उन स्त्रियों से काँपती है, जो उसे जानती हैं, इसीलिए वह अपनी गली और आस-पड़ोस की स्त्रियों के नाम तक नहीं लेती । चेतराम-राजूपण्डित, दोनों घरों से उसके पति सरजू सुनार पर काफ़ी कर्ज भी है, इसीलिए वह और भी इन घरों के नाम नहीं लेती ।

लेकिन बसन्ता कुलवन्ती से बेहद डरती है । डर के ही मारे वह अक्सर कुलवन्ती के घर आती है और बैठी हाँ-में-हाँ और परनिन्दा में भाग लेती है ।

राजू पण्डित ने अपने यहाँ एक बहुत बड़ा बैंक खोला है । बैंक का नाम है 'हरिनाम बैंक ।' इसमें दो तरह के बैंक हैं—एक 'रामनाम बैंक', दूसरा 'कृष्णनाम बैंक ।' राजू पण्डित के पास इन बैंकों के बाकायदा बही-खाते, रसीद-पर्चे और चेकबुक आदि हैं । राजू पण्डित और गोपी माँ

दोनो इस बैंक को चलाते है। हिसाब-किताब जोडने-घटाने के लिए सरजू का जवान लडका हीरालाल एकाध घण्टा रोज कार्य कर देता है। उसके लिए उसकी तनख्वाह दो हजार कृष्णनाम प्रति सप्ताह है।

दोनो बैंकों के हिसाब और दर अलग-अलग है। कृष्णनाम एक रुपये मे एक हजार की दर से बिकना है, और रामनाम एक रुपये मे डेढ़ हज़ार की दर से। राजू पण्डित ने अपने इस बैंक की नियमावली और घोषणा-पत्र छपा रखे हैं—दो आने दाम है उसके। उसमे लिखा हे कि रामचन्द्र जी विष्णु की बारह कलाओ के अवतार थे, अतएव वे पूर्ण ब्रह्म नही थे। वे केवल मर्यादावादी और सन्त, रक्षक भगवान् थे। उनमे रसिक बिहारी लाल का पक्ष शून्य था, अतएव बहुत सोच-समझकर, नरक-स्वर्ग का सारा हिसाब लगाकर रामनाम की दर एक रुपये मे डेढ हजार है।

पर कृष्ण भगवान् !

विष्णु के सर्वश्रेष्ठ अवतार, सोलहो अंशी-सोलहो कला के अवतार, अतएव कृष्ण पूर्ण ब्रह्म है—सच्चिदानन्द, रासबिहारी, रूप, रस, बल, बुद्धि जीवन के सम्पूर्ण पक्षो के ईश्वर। तभी कृष्णनाम की दर एक रुपये मे केवल एक हजार है।

और गजब की बिक्री थी। इस बैंक मे काफी रात को जब दुकानदार लोग अपने काम-काज से छुट्टी पाते, तब भीड इकट्ठी होती इस बैंक पर। बैंक मे उधार खाता बिलकुल नहीं था—सब 'कैश पेमेण्ट।'

"नो क्रेडिट!"

बस्ती के अतिरिक्त, आसपास के गाँवों और मुरादाबाद, अलीगढ, खुर्जा, हाथरस और दिल्ली तक इस बैंक के नामों की बिक्री होती थी। आसपास के लोग स्वयं आकर खरीद ले जाते थे। दूर वाले महाजन मुनीमों द्वारा तथा और दूर देश वाले सेठ व्यापारी डाक द्वारा सौदा कर लेते थे। रामनाम की अपेक्षा कृष्णनाम की बहुत अधिक बिक्री थी।

लेकिन जिस दिन कोई बहुत ज्यादा 'ब्लैक' करके आता, तो उसे उस दिन 'रामनाम' बैंक की याद आती। राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं न! पतितो को उबारने वाले हैं। उनके हाथ मे धनुषबाण है। वह रक्षक है, प्रजापालक है। 'मो सम दीन न हीन हित, तुम समान रघुवीर, अस विचारि रघुवस मणि हरहु विषम भव भीर।' 'एहि कलिकाल न साधन दूजा, जोग जज्ञ जप तप व्रत पूजा।'

"ठीक है, बिलकुल सही विचार है लाला जी! लेकिन आज 'रामनाम' के भाव मे कुछ महँगी आ गई है—बहुत गरमी है आज इस बैंक में। सभी तो अब रामनाम बैंक की ओर दौड रहे है, मैं क्या करूँ?"

"सो कोई बात नही! यह तो मार्केट की बात है जी!"

"पाँच सौ रामनाम मेरे नाम।"

"ब्लैक के हिसाब से कम है पाँच सौ, ढाई हज़ार ख़रीदो, हाँ! गणिका और अजामिल ने इतना ही रामनाम भजा था।"

"ठीक है, ठीक है! वही सही!"

उस रात नारायणदास अपने विक्षिप्त पिता गुलजारी लाल को लेकर राजू पण्डित के पास आया। गोपी माँ कुछ फ़ासले पर बैठी कृष्णनाम जप कर रही थीं।

नारायणदास राजू पण्डित मे रामनाम की बातों मे लग गया, मौक़ा पाकर गुलज़ारी लाल गोपी माँ के मुँह पर झुककर इतने विद्रूपात्मक ढग से हँसा कि गोपी माँ चीख़कर भागीं।

गुलज़ारी लाल ठहाका मारकर हँसता जा रहा था, और कह रहा था, "बंक वाली बीबी, हुडदग देई नाम···"

"आ पड़ोसिन लड लें

लडै मेरी जूती—

जूती मार खसम के।"

नारायणदास ने पिता को कसकर थाम लिया। गोपी माँ थर-

थर काँप रही थी। गली और ठाकुरद्वारे से अनेक लोग वहाँ एक क्षण मे इकट्ठे हो गए। गुलज़ारी लाल भीड को देखकर एक बार फिर भडक गए और नारायणदास के काबू से बाहर हो अपने गले की मुद्रा-माला को निकालकर कहने लगे, "यह देखो विक्टोरिया का रुपया—इसका नाम राम है। यह देखो एडवर्ड का रुपया, इसका नाम कृष्ण है। यह देखो लडाई का रुपया, यह देखो एक का नोट, इसका नाम म्यूनिसिपेलिटी का चेयरमैन। यह है नई अठन्नी, इसका नाम राजू पण्डित। यह है छेद वाला पैसा, इसका नाम आदमी। यह है पीली दुअन्नी, इसका नाम है समय, जो अब चौकोर चलने लगा है और किस्मत की गोलाई मे आकर अँडस गया है।"

नारायणदास पिता को समझाता हुआ वहाँ से चल पडा और गली मे उतरकर बडी तेज़ी से घर की ओर मुड गया।

काफ़ी रात बीत चुकी थी। सन्तोष अपने कमरे मे पडी जग रही थी। उस घने अन्धकार और रात की खामोशी के पख बाँधकर कोई सन्तोष के अन्त क्षितिज पर धीरे-धीरे उतर रहा था—गाता हुआ—पास आता, फिर दूर, बहुत दूर उड जाता और उसके सगीत की प्रतिध्वनि सुनाई पडती। उस सगीत को पकडने के लिए सन्तोष दौडती, पर वह उसे पकड नहीं पाती। फिर उसके ऊपर गेंदे के बडे-बडे फूल बरसने लगते और वह उनसे पट जाती। मणियो का मुकुट पहने हुए एक राजकुमार आता और उसे ढूँढकर उठा ले जाता। सन्तोष के कमरे का अन्धकार, सन्नाटा, सन्तोष के मन का अन्धकार, उसके प्राणो का सगीत, सबकी एक मोटी पर्त बनती जा रही थी और जो अन्तःक्षितिज पर आ-आकर भाग रहा था, उसे सन्तोष ने सहसा उसी पर्त मे बाँध लिया और उसके अक में सिसककर रो पडी।

सूरज! सुना कि नही! नही सुना? मै भी तो बताना ही भूल

गई। अब पिताजी मुझे मानने लगे। घर मे एक नौकरानी रख दी है। मेरी प्रसन्नता के लिए मुँह देखते रहते हैं। हर क्षण कहते रहते है, 'लल्ली! तू पुण्य है मेरे घर की! तू सदा खुश रह!'

पर अब मै पिताजी से अप्रसन्न रहने लगी हूँ। मुझे अब वे बिलकुल नही भाते। जी होता है कि उनसे कही दूर चली जाऊँ। मामाजी मुझसे नाराज हैं, वरना मै अब तक काशीपुर ही चली जाती। मुझे कतई अच्छे नहीं लगते पिताजी! यह जिसका नाम गोपी-माँ है, इसे यह क्यों लाये अपने संग? यह औरत है क्या? इसका प्रयोजन क्या? मै विष का घूँट पीकर रह जाती हूँ। जब से यह आई है, मुझे मेरी दिवंगता माँ याद आती है—रुग्ण, क्षयग्रस्त, तिल-तिला कर चुकी हुई, घुँट-घुँटकर मरी हुई। हर क्षण मेरी आँखो में उसीकी साया डोलती रहती है—आँसुओं मे डूबी हुई, झुकी-झुकी कराहती हुई, असख्य मूक अभियोग लिये, पीडा लिये।

अभी तो और सुनो सूरज!

यह भी तुम्ही से कहूँगी।

और कौन है मेरे?

यह गली, मुहल्ला मुझे बुरा-भला कहे मै जरा भी परवाह नहीं करती। सोचती हूँ अपढ़ है, पिछडे लोग हैं, कामधन्धा नही तो और क्या करेंगे? लेकिन इस गोपी माँ और पिताजी को जोडकर जो बाते सुनने को मिलती है—ये तो मुझे न जाने क्यो बडी भयानक लगती है।

हाय! मै किस पिता की बेटी हूँ!

मेरा माथा झुक जाता है। मैं तत्काल मर क्यों नही जाती? मुझे ऐसा लगता है—यह सब मेरी माँ पर जा रहा है—वह मरकर भी कलंकित हो रही है।

कैसे है यह मेरे पिताजी, मै समझ न सकी।

यह इनकी पूजा!

यह इनका नियम-धर्म !

यह प्रभुनाम बैंक ! छि, इस बस्ती मे इतनी चीजे इतने बुरे-बुरे रूपों में तो बिक ही रही थीं, अब यह प्रभुनाम ही बिकना बाकी था। किस लोक मे मरकर जायँगे मेरे पिताजी !

कितनी अभागिन हूँ मै सूरज ! तुम्हीं समझाओ न मुझे।

और इन बस्ती वालों को क्या कहूँ। कितने मूढ, अपाहिज और लुंज है ! जरा भी तो नही सोचकर देखते। इन्हे रामनाम बैंक पर और कृष्णनाम बैंक पर कितना विश्वास है ! इन्हे तो धर्म, नरक-स्वर्ग और भगवान् के नाम पर चाहे कोई मुर्गा बना दे।

ज़रा-सा ही कहने पर पिताजी ने मेरा नाम इंटरमीडियेट में लिखवा दिया। मै तुम्हारे कॉलेज मे पढ़ने लगी। पर मैंने तुम्हे अभी तक नहीं बताया। अब मै नही पढ़ूँगी। क्यो पढ़ूँ ? कहलाऊँगी तो आखिर राजू पण्डित की बेटी ही न !

एकाएक सन्तोष को लगा कि उसके अन्त क्षितिज पर जो मूर्ति मोटी पर्त में बँधी खडी थी, वह सबको चीरकर कही उड गई।

सन्तोष अकेली हो गई—निरी अकेली। वही कमरे का सन्नाटा-अन्धकार, वही उसके भीतर का सन्नाटा और अन्धकार !

जैसे सन्तोष का जी घुट रहा था। उसने कमरे मे रोशनी कर ली। कमरे से निकलकर आँगन मे चली आई—मुँह, हाथ-पैर धोये—पानी पिया और चुपचाप बडी देर तक वही आँगन मे खडी रही।

कमरे मे लौटी और एकटक कमरे के बल्ब को देखती रही—बल्ब, प्रकाश, सूरज सूरज और सूरज !

सूरज की लिखी हुई कुछ चीजे हैं उसके पास—कुछ पृष्ठ-कुछ संकल्प-क्षण। सन्तोष ने उन्हे असख्य बार पढा है—आज वह फिर उन्ही को पढने चली।

'सन्तोष !

मै क्रान्ति हूँ। तू मेरी शक्ति है। मै संकल्प हूँ, तू अर्चना है, पूजा है उसीकी। हमारे राष्ट्र को स्वतन्त्र होना है। मै सैनिक हूँ इसी संग्राम का। तुम्ही ने मेरे माथे पर मगल तिलक लगाकर भेजा है। मै युद्ध हूँ, तू जौहर है। मै समर्पण हूँ, तू आशीष है। हम दोनो उज्ज्वल शुभ्र पृष्ठ है वर्तमान के इतिहास के। मेरा स्वतन्त्र राष्ट्र, जन्मभूमि। राष्ट्रगौरव। ’

‘मेरी सन्तोष !

इस बस्ती को गौरव देना है। जो अन्ध-विश्वास है, जो जड है, प्रतिक्रिया है, नीच-कुटिल और अमानवीय है—उसे ध्वस्त करना है। इस बस्ती को महान् होना है—बस्ती वाला कहलाने में लोगों को गौरव मिले। कोई एक भी मन का छोटा न मिले। सब ऊँचे और ऊँचे, क्रमश. ऊँचे। ’

‘मेरी सत्तो !

एक दीवार वह है जिससे घर बनते है—महल अटारी और दुर्ग। पर एक दीवार हमारे भीतर है—मन में, इससे हम दिनोंदिन छोटे होते चलते है और एक दिन हम स्वय नष्ट होकर अपने स्वत्व को उसी मन की दीवार मे खो देते हैं। हम स्वयं दीवार बन जाते हैं—चलती-फिरती दीवार, जिससे घर उजडते है, महल, अटारी और दुर्ग भी ध्वस्त हो जाते हैं।

हममे ये दीवारें नहीं हैं। हम तो निरभ्र आकाश है। क्रान्ति-मन्त्र के दिग्व्यापी संगीत हैं। पर ऐसी दीवारे हमारे चारों ओर हैं। हर श्वास में इन दीवारों की गन्ध है। इन्हे हम मिटा देंगे। हम दोनो का जन्म ही इसी उद्देश्य से यहाँ हुआ है। वरना हम यहाँ क्यों जन्मते ?’

‘सत्तो,

मेरी पूजा !

जन्म-जन्म से तू मेरी है। हम एक है। तुम्हारे पवित्र सीमंत में मेरे प्राणों का सिन्दूर भरा हुआ है। सुहाग मे रची हुई तुम, मेरी

परिणीता ! देख लेंगे समाज क्या करता है हमारा। सत्य बड़ा है या समाज ?"

यह पढते-पढ़ते सन्तोष को ऐसा लगा कि उसका सारा मुँह जल उठेगा। कानो से अग्नि की आँधी बहने लगी। सारा अन्तस् घुटन से टूटने लगा। लगा कि किसी गगनभेदी अज्ञान-शिखर से वह टूटकर गिरी है—गिरती चली जा रही है ·· चली जा रही है। और उसके भयभीत मन मे कम्पित चेतना और तप्त आँखों मे वे असख्य दीवारे नाच रही है, जिनसे घर उजडते है, महल-अटारी ढह जाते है।

और दीवारों के भयानक तूफ़ान में सन्तोष बेहोश होकर गिर पडी। पर उस स्थिति मे उसे कहीं से, किसी की एक लम्बी चीख़ सुनाई दी—माँ की चीख ! नहीं · नही सूरज की चीख़ ! और उस चीख़ ने सन्तोष को धीरे-धीरे अपनी बाहुओ में लपेट लिया।

ठाकुरद्वारे मे सुबह की पूजा समाप्त करके राजू पण्डित घर लौटे—बेटी को देखने। सन्तोष अब तक नही जागी। क्या हो गया है उसे ?

कमरे मे जाकर देखा तो सन्तोष तेज़ बुखार मे बेहोश पडी थी।

तीसरे दिन उसकी आँख खुली। सूरज सिरहाने बैठा था, सन्तोष का बुख़ार कम हो गया था, लेकिन दो ही दिनों में वह पीली पड गई थी। न जाने कैसा बुख़ार था वह ! सारे शरीर मे दर्द, हर जोड में पीडा ! इस बीच वह जिन मानसिक स्थितियों से गुजरी थी वह और भी घनीभूत थी। उसने जैसे अनेक सत्यों को अपनी अनुभूति का अंग बनाकर साफ़ देख लिया था। पर उसके पास वाणी न थी यद्यपि साहस आ गया था। इतने ही क्षणो मे वह भावुकता की परिधि को बेधकर जैसे आगे निकल गई थी।

अगले दो दिनों मे उसका बुखार उतर गया। दर्द चला गया,

पर जैसे अपनी उपलब्धि दे गया। मन बहुत हलका हो गया था।

सूरज सुबह-ही सुबह उसे देखने आया था। बडे अधिकार और ममत्व से उसने सूरज को अपने पलंग पर बिठा लिया। बडी अर्थभरी निगाहो से वह बार-बार सूरज को देखती, मुस्करा उठती, उसके पीले मुख पर न जाने कहाँ से लालिमा भी दौड आती। फिर एकाएक न जाने किस तरह उदास हो जाती। पूरे मुख से हँसती हुई वह बोली, "सुना है तुम घर और दुकान का सारा काम देखने लगे।"

सूरज चुप था।

"तुम पढने भी नही जाते।"

सूरज की आँखो मे न जाने क्या देखकर सन्तोष चुप हो गई। बडी देर तक चुप बैठी रही, जैसे वही माध्यम था, उनके वार्तालाप का और कोई विकल्प न था।

सन्तोष पर फिर वह दीप्ति लौट आई। उसने सूरज को थाम लिया और उसी तरह बोली, "लो मेरे निरभ्र आकाश को दीवारो ने बाँध लिया?" वह कण्ठ मे कुछ घूँटने लगी। जो भर आया, उसे छिपाने लगी।

फिर बोली, "मैने सच देख लिया सूरज, तुम्हारा यह परिवर्तन मेरी वजह से हुआ है। इस व्यावहारिकता की जड मे शायद मै हूँ। कितनी तुच्छ! स्वार्थी ।

'इस बस्ती मे अगर एक भी कोई महान् हो जाय, तो बस्ती वाला कहलाने मे उन्हे गौरव मिले!' सन्तोष के सामने यह सत्य रेखा रह-रहकर कौंध रही थी।

"आज एक बात कहना चाहती हूँ सूरज," सन्तोष के स्वर मे जैसे एकाएक सगीत बरस पडा, "पर कैसे कहूँ! चलो, मुझे अपने परों पर सुला लो, शायद तब मै कह सकूँ।"

"मुझे पता है, जो तुम कहना चाहती हो।"

"सच!·· तो बताओ क्या है?" सन्तोष जैसे रो देगी, "झट

बोलो नहीं तो · बोलते क्यों नही ?"

"यही कि मै तुम्हारे घर न आया करूँ।"

"हाय हाय ! कितने बेवकूफ हो तुम !" सन्तोष अपने सिर से सूरज की दायी बॉह पीटने लगी, "नहीं जान सके न ! मै कहूँ यह कैसे जान गए ! बडे जानने वाले आये ! मेरे घर नहीं आयेंगे—देखूँ तो कैसे नहीं आते !"

सूरज हँस पडा। मुख का सारा तनाव मुस्कान की दीप्ति मे पिघल गया।

"जाओ मै नही बोलती," सन्तोष अलग हट गई। "तुमने क्यों ऐसा कहा ? ऐसा तुमने सोचा ही क्यो ? मेरा घर ! कैसा मेरा घर ?"

ओठ कॅपा-कॅपाकर वह रो पडी।

"लो गॉठ बाँधो मेरे इस आँचल मे तुम फिर ऐसा कभी नही कहोगे।" सूरज हँसता रहा और सन्तोष उससे गाँठ बँधाती रही।

"पर तुम क्या कहना चाहती थीं, इसे तो बताया नहीं, बस रोना, रूठना, जिद करना, यही याद रह गया," सूरज ने कहा।

"सच, मै बिलकुल भूल गई। अब तो मुझे जरा भी नही याद है कि मै क्या कहना चाहती थी—सच, बहाना नही करती हूँ।"

"अच्छा सोचकर देखो, शायद याद आ जाय।"

सन्तोष मुस्कराती-मुस्कराती उदास हो गई। वही पीला मुख, वही खामोश आँखे फिर लौट आई। तकिये के नीचे सूरज के पत्रों को निकालकर बडी देर तक न जाने क्या देखती रही। फिर अदम्य साहस से अपने को बाँधकर बोली, "यहाँ के लोगो को बस्तीवाला कहलाने में गौरव मिले, मै इस स्वप्न को किसी तरह झुठलाना नहीं चाहती।"

सूरज चुप था।

"मुझे ऐसा लगता है कि मै तुम्हे निर्बल बना रही हूँ। मैने तुम्हे बाँध लिया है कहीं। कोई स्वप्न को बाँध ले, यह कितना भयानक है।" सन्तोष काँपने लगी।

कुछ क्षण चुप रहकर वह फिर बोली, "तुम मुझे ब्याहकर—डोले मे बिठाकर—अपने घर ले जाओ, यह मेरा गौरव है, तुम्हारा किसी तरह से नही। यह विशुद्ध मेरा स्वार्थ होगा—मेरा गौरव, इस बस्ती का नहीं। बस्ती की अन्ध सामाजिकता को इससे कोई मुक्ति नहीं। यहाँ की हर साँस मे जो दीवारे है, वह इससे किसी तरह से नहीं टूटती।"

सन्तोष का सारा मुखमण्डल दीप्त हो आया था। निर्मल नयनों मे एक नैसर्गिक छटा उभर आई थी। उसने बढकर सूरज के माथे को चूम लिया। उसके चरणों को चूमने लगी, तो सूरज उठ खडा हुआ।

उस कमरे मे चारो ओर इतना प्रकाश भर रहा था कि उसके लिए असह्य था। इस प्रकाश मे एक अद्भुत भार था, जिसे वह वहन नहीं कर पा रहा था।

वह भरी आँखों से सन्तोष को देखता रहा।

४

चेतराम अब गद्दी पर बैठने लगा था। ईशरी की गाँठों का आधा दर्द चला गया था, पर सूजन मे जरा भी अन्तर नहीं था। वह स्वेच्छा से अब पैरो को हिला-डुला लेता था, पर पैरो को न वह मोड ही पाता था न उनके सहारे खडा ही हो सकता था।

शेष स्वास्थ्य भी कुछ सुधर गया था। लेकिन वह अब भी रोगी-जैसा लगता था, यह सबसे अधिक चिन्ता की बात थी। उसकी चलने की बडी इच्छा होती थी और उस उत्साह से वह कभी-कभी बुरी तरह से मथ भी उठता था।

वह मधू बुआ से बैसाखी बनवाने के लिए कहता तो बुआ फूट-फूट-कर रोने लगती। इस सम्बन्ध मे जब वह सूरज से कहता तो सूरज दौडकर किसी नये डाक्टर, नये हकीम-वैद्य के पास जाता और नये

उत्साह से कहता, "फूफा, अब तुम बहुत जल्द चलने लगोगे।"

एक दिन दोपहर को आँगन की धूप मे ईशरी अपनी गाँठों मे कोई दवा लगवाए पलंग पर लेटा हुआ था। नीचे एक ओर मधू बुआ बैठी कोई दवा घोट रही थी और पास ही रूपाबहू बैठी अपने बाल सुखा रही थी—घने, लम्बे-लम्बे केश—जिनमे से आधे बाल पककर सफेद हो चले थे, विशेषकर माँग पर। कनपटियों पर के बाल तो बिलकुल सफेद हो गए थे।

निस्तब्धता को भग करती हुई रूपाबहू बोली, "श्मशान पर एक औघड बाबा आये थे—जो ज़िन्दा साँप को पकड़कर उसकी जीभ निकाल लेते थे। बडा तेज और प्रताप था उनका। अगर वे कहीं मिल जाते तो यह गठिया का रोग एक मिनट मे चला जाता। ऐसी आग थी उनको आँख मे, ऐसा देखते थे वह कि पहाड काँप जाय। रोगी को चिमटे से मारते थे वे। बडी धार थी उनके चिमटे में, झल-झल चमकता था, और वैसे ही उनका ललाट चमकता था।"

मधू बुआ जमीन मे सिर गाडे औषधि तैयार कर रही थी। पर ईशरी पर रूपाबहू की बातो की अजीब प्रतिक्रिया थी। जैसे-जैसे वह औघड बाबा के अंगो की प्रशंसा कर रही थी, उसी क्रम से ईशरी अपने हाथ, आँख और ललाट को स्पर्श करता चल रहा था, जैसे उन अंगों को वह फिर से पहचान रहा हो।

रूपाबहू कहती जा रही थी, "बडा सत्य था उस औघड बाबा मे। रोग-दु ख तो उन्हे देखते ही भागता था। सचमुच नोट बनाते थे—एक रुपये के नोट से दस रुपये का नोट, और दस वाले नोट से सौ रुपये का नोट। यहाँ के लोगों ने खूब बदनाम किया औघड बाबा को। कहते थे कि औघड बाबा ठग थे। वे हज़ारो रुपये ठग ले गए। उन लोगों ने अपमान किया होगा बाबा का, तब बाबा ने उन्हे श्राप दे दिया होगा। उन्हे किसका डर? कितना क्रोध था उनमें, बाप रे बाप! ऐसा पुरुष हो तो लोगो को पता चले।"

"ऐसे औघड ठग ही होते हैं, मेरा भी यही खयाल है," ईशरी ने कहा, "और ऐसे ठगो को कुछ फलता थोडे ही है ! दस हजार वे ठगकर कही से ले गए, कोई उनसे भी बडा ठग उन्हे मिल गया। खूब मारा भी और सब छीन भी लिया।"

मधू बुआ ने ईशरी को देखा। दृष्टि मिलते ही वह चुप रह गया। झट कहने लगा, "मुझे कमरे मे ले चलो, मुझे बेहद धूप लग रही है। सारे बदन मे चुनचुनाहट हो रही है, जैसे कोई काँटा चुभ रहा हो।"

उसी क्षण सूरज आया। उसने देखा, रूपाबहू और मधू बुआ के सहारे ईशरी फूफा भीतर के कमरे मे जा रहे थे।

रात को सोते समय बुआ ईशरी की गाँठो मे देशी शराब मलती थी। उस रात, तब तक सूरज भी वहाँ बैठा ईशरी से बाते कर रहा था।

बुआ शराब की बोतल लेने गई, पर उसमे तो एक बूँद भी शराब न थी। कल तो आधी बोतल भरी थी।

बुआ ने ईशरी से पूछा।

उसने बताया, "कल रात दर्द की वजह से मैने सारी शराब गाँठ मे सुखा दी।"

फिर आज रात को कैसे मालिश हो ? बुआ सोचने लगी, यह अपने-आप क्यों गाँठ मे मालिश करते है ? मुझे जगा क्यो नही लेते ? मुझसे सकोच करने लगे है क्या ? आज तीसरी बार ऐसा हुआ है—आधी-आधी बोतल शराब अपने हाथो गाँठ में मालिश कर लेना।

बुआ मन-ही-मन सोचती हुई चुप रह गई, जैसे वह धर्म की कोई बाज़ी हार गई हो।

ईशरी ने बुआ की ओर ज़रा भी ध्यान न दिया। वह सूरज के साथ बहस कर रहा था।

सूरज ने पूछा, "काग्रेस क्या है ?"

"मुझे नहीं पता," ईशरी ने उत्तर दिया, "मैं क्रान्तिकारी दल में था, मेरी पार्टी को हिंसा और विनाश में विश्वास था।"

"आपकी पार्टी का विश्वास था, पर आपका व्यक्तिगत विश्वास क्या था?" सूरज ने प्रश्न किया।

"वही, जो पार्टी का था।"

"अतएव आपने जो व्यक्तिगत रूप से इस स्वतन्त्रता-संग्राम में हत्याएँ कीं, विनाश किया, वह सब आपकी पार्टी ने किया, आपने नहीं," सूरज कहता जा रहा था।"पर इस संग्राम में आपका निजी कंट्रिब्यूशन क्या है, मैं इसे जानना चाहता हूँ।"

"अपने निजत्व का पार्टी के लिए बलिदान।"

"और पार्टी का कंट्रिब्यूशन?"

"देश को गुलामी की जंजीरों से मुक्त करना।"

"अर्थात् गुलामी की जंजीर तोड़ने का कार्य और श्रेय आपकी पार्टी को है, आपको नहीं। तो आप महज साधन थे, प्रेरणा नहीं, आप क्रिया थे गति नहीं।"

ईशरी चुप था।

सूरज ने दूसरी बात उठाई, "आप कहते हैं कि अब आपकी पार्टी का कार्य समाप्त हो गया। शिमला कॉन्फ्रेंस के बाद देश को अपनी इंटरिम गवर्नमेण्ट प्राप्त हो गई। अस्त्र और आतंक का कार्य समाप्त हो गया—अंग्रेजी हुकूमत ने आपसे हार मान ली। यह सब ठीक है। पर आगे भविष्य में आपका क्या कार्यक्रम है?"

"कुछ नहीं," ईशरी कहने लगा, "हमारे लीडर ने संन्यास धारण कर लिया।"

"आप लोगों को विदा देते समय उन्होंने कुछ कहा? उपदेश दिया? कोई आज्ञा दी?" सूरज ने पूछा।

"उनसे किसी की भेंट कहाँ हुई। जिस तरह सब अण्डरग्राउण्ड थे, उसी तरह वह भी थे, बल्कि वह तो सदा से अण्डरग्राउण्ड थे।"

' और अब संन्यासी हो गए !" सूरज कुछ मुस्करा आया। "दर्शन की खोज मे संन्यासी हो गए। पार्टी मे कोई दर्शन नही था। और हो कहाँ से ? वहां कोई व्यक्ति थोडे था, वहाँ तो महज़ पार्टी थी।"

बडी देर तक दोनो चुप रहे। बुआ सो जाने के लिए बार-बार आग्रह कर रही थी।

ईशरी अपनी चुप्पी तोडने के लिए बोला, ' मेरी पार्टी ने अपना काम पूरा कर दिया, अब शेष काम 'कांग्रेस' का है।"

"कांग्रेस क्या है ?" सूरज फिर मूल और आदि प्रश्न पर रुक गया।

"तुम्ही जानो," ईशरी ने कहा, "तुम तो यहाँ के स्टूडेण्ट कांग्रेस के जनरल सेक्रेटरी, अध्यक्ष, सब-कुछ हो।"

"हूँ नहीं, था कभी," सूरज ने उत्तर दिया।

फिर सूरज चुप हो गया—एक चुप हजार चुप, जैसे उसे बहुत-बहुत कहना हो। ईशरी को नीद आने लगी थी। बुआ सो चुकी थी।

दूसरे दिन, ईशरी की दवा के साथ-साथ गाँठ की मालिश के लिए शराब की दूसरी बोतल आई।

फरवरी के अन्तिम दिन थे, फिर भी दोपहर की धूप बुरी नही लग रही थी। बडी ठण्डी पहाडी हवा रह-रहकर बह रही थी।

बाहर सेहन मे आराम-कुरसी पर लेटा सूरज अख़बार पढ़ रहा था। एकाएक चौराहे पर उसे बच्चों का शोर सुनाई दिया।

वह टहलता हुआ चौडी सडक से आगे गया। चौराहे के आगे उसने देखा कि उसका परम मित्र मिठाईलाल बच्चों से घिरा हुआ बुरी तरह से खीझ रहा है।

बच्चे शोर मचाकर गा रहे हैं.

लगड-मचगड को तीन मेहरी
एक कूटे
एक पीसे
एक भाँग रगरी ।

और यह भी गा रहे थे अन्त मे
लँगड़ा बैठा रोवै
आपन दीदा खोवै ।

सूरज बडे आवेश मे दौडा । बच्चों की भीड में झपटकर उन्हे मारने लगा । सब भागकर इधर-उधर चम्पत हो गए, पर गलियों मे से बच्चो की आवाज़ अब भी आ रही थी

लँगडा झेल झेल झेल !
लँगडा झेल झेल झेल !!

सूरज मिठाईलाल को अपने सग लिये उसके घर चला गया, पर इस घटना से वह कहीं इतना आहत हुआ था कि बिलकुल चुप रह गया ।

मिठाईलाल शाम को भाँग खाने लगा है, लेकिन इन बच्चों को कैसे पता ? और पता भी हो तो उनकी इतनी हिम्मत कि मिठाईलाल के पीछे लग जायँ !

मिठाईलाल—झण्डावीर !

आहत मन सूरज घर लौट आया । अब वह साफ देखने लगा था स्वतन्त्रता-सग्राम की उपलब्धि । स्टूडेण्ट काग्रेस का झण्डावीर एक ओर है और क्रान्तिकारी दल का ईशरी फूफा दूसरी ओर ।

शाम के धुँधलके मे वह अकेला उसी सेहन मे लेटा हुआ था—शान्त-एकाकी; अख़बार को सिर पर ओढ़ लिया था, जिससे मुँह-आँख सब ढक गए थे । होरी और हिरनू के सहारे भीतर से ईशरी आया और वही पलग पर बैठ गया ।

"क्या बात है, तबीयत तो ठीक है न ?" ईशरी ने पूछा ।

सूरज मुँह खोलकर झट प्रकृतिस्थ हो गया, मुस्कराने लगा—ईशरी को बाहर अपने सामने आया देखकर।

सूरज ने बिना किसी प्रसग के कहा, "कल मैने जो आपके लिए कहा था, आपकी पार्टी के लिए कहा था, वह सब मैने अपने लिए कहा था। मै जिस दल या सस्था मे था, वह महज वाहन था बडो का। हाईकमाड कोई निर्णय लेती, वह निर्णय ऊपर से चलता, रेगता हुआ नीचे तक फैल जाता और हम सब उसमे बह जाते। हमने कभी अपने व्यक्ति मे अपने-आपको नहीं सोचा, कभी हमे अग्रेजो के आमने-सामने आकर मुठभेड करने को नहीं मिला। हम कभी भी उस 'फ्रण्ट' पर नही पहुँचे, हमने उस फ्रण्ट को अपनी आँखो से नहीं देखा जहाँ हमारा वास्तविक युद्ध हो रहा था। हर बडा अपने छोटे से श्रद्धा लेता रहा, मालाएँ पहनता रहा, जै-जैकार पाता रहा, और अपने-आप को गौरव देता रहा। यह ऊपर नीचे का मानव-समाज जो स्वतन्त्रता-सग्राम मे जूझ रहा था—उसके भीतर कभी कोई आन्तरिक दृष्टि नही थी, बाह्य-दृष्टि भले ही हो, जिसे हम स्वतन्त्रता-सग्राम कहते है। पहले व्यक्ति का बनवास हुआ, फिर उसके आन्तरिक समाज का और इससे राजनीतिक पार्टियाँ उदित हुई, बडे-बडे शब्द कहे गए—बलिदान, उत्सर्ग, महान्, महात्मा, गौरव, क्रान्तिदूत, दीवाने, शहीद, अमर, और ऐसे ही असख्य शब्द। पर ये शब्द अधूरे है, क्योकि ये हमारे जीवन मे नहीं निकले—दिये गए, बाँटे गए। ये शब्द अर्थहीन है, क्योंकि इनके पीछे कोई दर्शन नहीं, कोई अनुभूति नही। ये शब्द, ये पार्टियाँ आकाक्षा जगाती है, परितृप्ति नहीं देती। हमारा जो कोमल है, शुभ है, मानवीय है, उसका अपहरण कर लेती है और फिर उन्हीं को ढूँढने के लिए रास्ता बना देती है—ऐसा रास्ता, जो महज़ चलने के लिए है, आगे बढ़ने के लिए नहीं।"

इस बीच ईशरी न जाने कितनी बीडियाँ पी चुका था और उसकी आँख मे इतनी गहरी ख़ामोशी थी कि सूरज को चुप हो जाना पडा।

और विश्वासघात, आत्मघात जैसे तत्त्व, व्यक्तित्व के अमिट अंश बन गए, वे अब कहाँ लेकर जायँ अपने-आप को ? उन तत्त्वो को खूराक चाहिए—'इंडिविज्वल राशन'—जो अब तक उन्हे पार्टियो से, स्वतन्त्रता-सग्राम की प्रक्रिया से मिलता रहा है।"

"तो क्या पार्टियो ने अपने मेम्बरों और कार्यकर्ताओं को नौकर रख छोड़ा था ?" ईशरी ने कहा। "ये सब अपने मन की बाते थीं, अपना-अपना जोश था, भक्ति थी।"

"कुछ नही थी, महज़ भावुकता थी," सूरज के स्वर मे दर्द उभर आया, "जिसका, बडी बेरहमी से शोषण हुआ। नौकर को तो फिर भी तनख्वाह मिलती है, इन्हे तो कुछ भी, कहीं से भी नहीं मिला, न विवेक न कोई दर्शन, न अनुभूति न आत्म-गौरव ! जो-कुछ पास था, बस लुटा आए। कोई अग से लँगडा, लूला और घायल होकर लौटा, कोई अपने मन से, कोई अपने चरित्र से और कोई अपने सर्वस्व से। स्वतन्त्रता-सग्राम हम जीत आए, लेकिन घर फूँककर, परिवार को लुटाकर, अपने को बनवास देकर, जो अत्यन्त कोमल, शुभ और परम मानवीय था, उस सबकी हत्या करके, अब कहाँ जायँ ?"

"मुझे बडा दुख है सूरज कि तुम इतने निम्न धरातल से ये सारी बाते सोचने लगे हो," ईशरी ने ग्लानि के स्वर मे कहा।

"मै सोचने तो लगा हूँ फूफा ! तुम मुझे आशीर्वाद दो।" सूरज का स्वर भारी हो गया। "और मै चरण छूकर तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि तुम भी सोचो फूफा ! यही वह अमृत है, ज्योति है, जिससे अपनी दृष्टि मिलती है, आगे का रास्ता बनता है, नही तो जो हम अपने खोखले व्यक्तित्व मे बाँधकर ले आए है न, उनसे हम एकदम टूट जायँगे, सर्वथा बिखर जायँगे।"

सूरज उठ खड़ा हुआ और अनायास ही सड़क पर उतर आया, निरुद्देश्य इधर-उधर घूमने लगा।

रात बुआ को कुछ देर मे छुट्टी मिली। जब वह कमरे में आई, ईशरी फूफा सो गए थे।

फिर भी बुआ शराब की बोतल खोलकर फूफा की गाँठो मे धीरे-धीरे मालिश करने लगी।

ईशरी ने पूछा, "रूपाबहू का क्या हाल-चाल है ?"

"ठीक ही है।"

"अब तुम्हे पतिव्रत की शिक्षा नही देती ?"

"जब से सूरज भइया ने डाँटा है, तब से बन्द है।"

कुछ देर चुप रहने के बाद मधू बुआ ने कहा, "एक बार एक औघड बाबा यहाँ के श्मशान बाग मे आये थे, रूपा भाभी अक्सर उनकी चर्चा करती है। कहती है कि अगर वे फिर कही मिल जाते, तो उनसे तावीज बनवाती—एक मेरे लिए, एक तुम्हारे लिए और एक अपने लिए।"

"उनमे पूछो कि मै तावीज बना दूँ ?" ईशरी ने कहा। "पार्टी मे हम लोग यह सब काम किया करते थे—अण्डरग्राउण्ड रहकर ।" ईशरी ने जैसे अपना मुँह बाँध लिया, और उसे हँसी आ गई, फिर वह उदास हो गया।

"एक बात बताऊँ ?" बडी देर बाद ईशरी बोला। "लेकिन माफ करना मुझे तुम। वह औघड बाबा मै ही था।"

बुआ का मुख आरक्त हो आया। टूटी हुई मूर्ति की भाँति वह अर्थहीन भाव से देखने लगी।

बेहद थके स्वर मे बुआ ने पूछा, "तो नोट भी तुम्ही ने बनाया था ?"

ईशरी का केवल सिर हिला।

"तो वह बीस हजार रुपये के नोट तुम्ही ठगकर ले गए थे ?" बुआ का दर्द पागल हो उठा, "यही करने गये थे तुम ? यही तुम्हारा स्वतन्त्रता-संग्राम था ? इसी अस्त्र से तुम लडने गये थे ?"

बुआ नि शब्द रोने लगी, लेकिन स्वर अपनी गम्भीरता मे निर्विकार बना रहा, "तुमने यह बताया क्यो ? तुम न बताते मुझे ? क्यो बताया तुमने ? जिस छल-प्रपच से अपने-आपको बदलकर तुम औघड बाबा के रूप मे यहाँ आये थे, उसी तरह इस बार भी आये होते, और भी लूटकर इस बस्ती से ले जाते। मैंने तुम्हे तब भी नहीं पहचाना था, अब भी न पहचानती। हाय ! तुमने मुझे अपना सत्य क्यो बताया ?"

ईशरी अपनी सारी क्षमता से बुआ को आश्वस्त करना चाह रहा था, "पूरी पार्टी अण्डरग्राउण्ड थी। पार्टी को उससे कही अधिक रुपयो की आवश्यकता थी। पहले पूरी बात तो सुनो "

"आग लगे तुम्हारी बात मे ! तुम्हारी पार्टी मे और मेरे करम मे !"

बुआ शिशुवत् रो रही थी। उसका कलेजा फटकर उसके आँसुओ मे बहना चाह रहा था। घायल हरिणी की तरह वह चीखना चाह रही थी, पर अब बुआ को सूरज का वह घर पराया लग रहा था—दूसरे का घर, जहाँ वह गरीब चीखने के अधिकार से भी अपने-आपको वचित पा रही थी।

"तुम्हीं ने वह कुकर्म क्यो किया ?" बुआ फिर तडपी, "और इसी बस्ती मे आकर किया। रुपया वसूलने का ससार मे यही ढग रह गया था, और यही बस्ती रह गई थी जहाँ मै थी, जहाँ सूरज और चेतराम थे ? और अपना जादू-चमत्कार दिखाने के लिए तुम्हे यही घर था, यही रूपाबहू थी ? घात भी तो विश्वासघात !"

बुआ फूट-फूटकर रोने लगी, "मेरी तपस्या भी मेरी तरह बाँझ निकली। सब झूठ था। रूपाबहू ने मुझ पर जो कलक लगाया था, बिलकुल सही लगाया था। मेरा वही दरजा था, मुझे वही मिलना चाहिए था। मेरा सारा गुमान, सारी तपस्या झूठी थी, सत्य केवल वही है जो रूपाबहू कहती थी।"

मधू बुआ एक कोने मे मुँह छिपाकर फफक-फफककर रोती रही।

ईशरी कुछ देर तक उसे देखता रहा, मनाता रहा, फिर मुँह ढककर सो गया।

आधी रात को जब ईशरी को करवट लेना हुआ, तब उसकी आँख खुली। कमरे की रोशनी बुझी न थी। उसने बैठकर देखा, मधू उसी कोने मे गिरकर सो गई है।

ईशरी करीब एक घण्टे तक उसी तरह चुपचाप बैठा रहा, जैसे वह उस कमरे मे न होकर कही अण्डरग्राउण्ड की स्थिति मे हो—अकेला, असम्पृक्त, भेष बदले। गाँठ मे मालिश करने के लिए शराब की बोतल पलग के नीचे थी। ईशरी ने उसे उठाया और उसे लिये हुए वह अपने लिहाफ मे ढक गया।

फिर कुछ शराब जमीन पर गिराकर उसने ख़ाली बोतल को धीरे से लुढका दिया।

उसी क्षण मधू बुआ भागकर कमरे से बाहर निकल गई, जैसे वह फ़र्श पर भी नही पडी थी, बल्कि खडी थी, उसी तरह कोने मे मुँह छिपाए।

अगले दिन मधू बुआ इधर-उधर जैसे सबसे छिपती रही, करीब चार घण्टे तक सन्तोष के पास बैठी रही, उसे नये ढग का ब्लाउज काटना सिखाती रही। उसने एक भजन गाकर उसे सुनाया :

नैहर हमकाँ न भावै
साईं की नगरी परम अति सुन्दर
जहँ कोई जाइ न आवै
दरद यह साईं को सुनावै।

शाम को चौके मे जा घुसी तो रात को निकली—तरह-तरह के नाश्ते बनाती रही।

अगले दिन वह सूरज के लिए रूमाल बनाने बैठ गई और न जाने कितने रूमाल बनाती रही।

दूसरे दिन सूरज ने जैसे मधू बुआ को पकड लिया। वह बुआ से

पूछने आया था, फूफा की गाँठ के विषय में, मालिश के लिए शराब के बारे मे। यद्यपि बुआ सारे प्रसग मे निश्छल ढंग से हँसती रही, लेकिन जब सूरज ने बुआ से यह कहा कि 'बुआ तुमने बैसाखी के लिए मुझसे न कहकर सरजू सुनार से क्यो कहा ?' तो बुआ की आँखों मे उसने एक क्षण के लिए वही भयानक उदासी देखी जो ईशरी की आँखों में थी।

बुआ ने झट कहा, "सुना है, दिल्ली से लाला गोरेमल फिर आने वाले है।"

"तो तुमसे क्या ?" सूरज ने कहा, "देखो बुआ, मुझसे अपनी बातें न छिपाया करो हाँ, नहीं तो मै ।" सूरज का मुँह आरक्त हो गया।

बुआ ने हँसकर कहा, "तुम भी तो मुझसे अपनी बाते छिपाते हो, बोलो नहीं छिपाते ? कह दूँ ? सन्तोष पर न बरस पडना हाँ ! सन्तोष को तुम पत्र लिखते थे, मुझे क्यों नहीं लिखा, एक भी नही।"

यह कहते-कहते बुआ हँसकर लोट पडी—अपूर्व हँसी।

"अच्छा चलो, तुम मुझे अपने दो-एक फोटो दे दो—एक वह—मालाओ से पटे हुए विद्यार्थियो के सम्मुख भाषण दे रहे हो—और एक वह जो सन्तोष के सग है। हाँ, अब दे दो भाई, बुआ माँग रही है, समझ लेना।"

"मै तुझे क्या दे सकता हूँ बुआ ?" सूरज बोलते समय काँप गया, "काश मै तुझे सचमुच कुछ दे सकता ! बुआ, तेरे योग्य क्या सचमुच है मेरे पास कुछ ? अगर है तो तुम उसे माँग लो बुआ, लेकिन आज्ञा देकर, हाँ, शर्त यही है।"

"तुमने तो मुझे इतना दिया है सूरज कि मै तेरी बुआ से माँ हो गई।" बुआ का मुख चमक आया था। "संसार के लोग कहे कि मधू को कोई सन्तान नहीं, पर वे क्या जानें, मेरा पुत्र सूरज है।"

बुआ ने बढ़कर सूरज को अपने अंक में भर लिया और अबाध गति

से उसका माथा चूमने लगी।

"नही बुआ, यह बात गलत ! तू मुझे कहाँ-से-कहाँ बहा ले जाती है ! तुझे आज कुछ आज्ञा देनी ही होगी।"

बुआ मुस्कराती रही, मुस्कराती रही, जैसे वह मुस्कान की ही बनी हो। सूरज बेहद गम्भीर खड़ा था।

"अच्छा तो एक चीज मै तुमसे मांगती हूँ सूरज !" बुआ की गति देखो, वह अब भी मुस्करा रही थी, "जब तुझे कभी सत्य और विश्वास की आवश्यकता पडे, तो उसे ढूँढने तू कही, किसी के पास न जाना— न किसी धर्मग्रन्थ मे, न किसी मन्दिर-देवालय मे, न किसी महात्मा के पास, तू केवल रूपाबहू के पास जायगा। यहाँ सत्य केवल वही है।"

"यह कैसी आज्ञा है बुआ ? यह क्या माँग रही हो तुम ? कैसी हो रही हो आज ?" सूरज मथ उठा अपने-आप मे।

"बिलकुल ठीक हूँ," बुआ ने छेडते हुए कहा। "बोलो, जो माँगा है बुआ ने, देते हो ?"

"स्वीकार करता हूँ बुआ, लेकिन एक प्रश्न पूछकर।"

"वह क्या ?"

सूरज बुआ के चरण छूकर बोला, "सत्य केवल मेरी माँ, रूपाबहू है · · । रूपाबहू ने तुम पर जो कलक लगाया था, क्या सत्य का रूप वही है ? वह सत्य था क्या ?"

"वह सत्य ही नहीं, सत्य का दर्शन था।"

"मै समझ नही सका ?"

"मै जो कभी नहीं बताना चाहती थी, आज बता रही हूँ। वह जो यहाँ श्मशान पर एक बार औघड बाबा आये थे न, जिन्होंने बीस हज़ार के नोट ठगे थे, वह तुम्हारे फूफा ही थे। अभी और सुनो सूरज · · जो तुम रोज एक बोतल देशी शराब लाते थे न, टॉग में मालिश के लिए, जिसे वह कहते थे कि 'मैंने गाँठ में मल लिया, बिल्ली-चूहे

ने गिरा दिया', वह शराब वे स्वयं मुझसे चुराकर पीते रहे है ••। अभी और सुनो न ! उन्हे गर्मी की बीमारी हे।"

सूरज खडा रह गया, जैसे बुआ ने उसे दीवार मे लगाकर उसमे सिर से पैर तक कीले जड दी हों।

बडी देर तक चुप रहने के बाद बुआ फिर बोली, "मेरी रूपा-भाभी ने जो मेरे विषय मे कहा था, वह मुझे कलकित करने के लिए बिलकुल नही कहा था। वह मेरे भ्रम को तोडने के लिए एक कटु बात कही थी। मेरी झूठी तपस्या का पर्दाफाश करने के लिए कहा था। इस प्रसग मे मुझे वही मिलना चाहिए था—इसकी ओर वह एक भयावह, पर सहज सकेत था। वह सारे सत्य का दर्शन था सूरज !"

बुआ का मुख स्याह पड गया, "तुम्हारे फूफा का चरित्र, मेरा चरित्र और रूपाभाभी की वह बात—सबमे से सत्य का वही दर्शन निकलता है। तभी मै जान गई, सत्य केवल रूपाभाभी के पास है। उसी के पास वह दृष्टि है जो सबको बेधकर देख लेती है।"

सूरज निस्तब्ध खडा था।

"तेरा प्रश्न समाप्त हो गया सूरज ! मैंने उत्तर भी दे दिया।" बुआ का स्वर काँप रहा था, "अब बोलो, जो बुआ ने माँगा है, उसे देते हो ?"

"देता हूँ बुआ ! देता हूँ !"

सूरज वहीं दीवार पर टिक गया और बुआ ने सूरज की बाँह पकड ली। दोनो उसी तरह भित्ति-चित्र की भाँति खिचे रह गए, जैसे किसी ने उन दोनों को अमिट अक्षर बनाकर दीवार में उनसे एक करुण गीत लिख दिया हो—हे पुरुष ! हे पतिव्रता ! गौरव वह नहीं है जिसे तुम 'सत्य' कहते हो, आदर्श और महान् कहते हो, पर वह है जो बेहद कुरूप और कटु यथार्थ की शक्ल में तुम्हारे चारों ओर लिपटा हुआ है। तुम्हारा गौरव है कि तुम अब भी लडते हो। तुम्हारी महानता

है कि तुम अब भी उन्ही रास्तों से गुजरते हो, जहाँ तुम घायल हुए हो।

सुबह रूपाबहू सूरज के पास आई। उसे जगाकर पूछा, "बुआ और फूफा कहाँ गये ? कमरे मे तो नहीं है। कहाँ गये दोनो आखिर ?"

रूपाबहू व्यथित थी। सूरज निर्विकार देखता रहा। उठा, और माँ के सग ईशरी के कमरे मे गया। चारो ओर दृष्टि घुमाकर देखता रहा, जैसे वह रिक्त कमरे के हर कोने मे कुछ ढूँढ़ रहा था, कुछ देख रहा था और अपने मन को विश्वास दे रहा था—वह मन, जो इस घटना से हतप्रभ न हुआ, आश्चर्यचकित न होकर जो इसे अपनी स्वीकृति में बाँध ले गया, पर जो कही बेहद उदास हो गया, जैसे कोई दर्द बिना बताए उसे छोडकर चला गया।

"चलो ढूँढ़ लायें उन्हे," रूपाबहू ने कहा। "उदास क्यों होते हो ? वे कही टहलने न गये हो।"

सूरज नि स्पद देख रहा था—दो नगी चारपाइयाँ, सिरहाने बिस्तरा लपेटा हुआ, फ़र्श पर लुढकी हुई शराब की बोतल, खुली आलमारी मे दवा की शीशियाँ, मरहम, लेप और पट्टी के कपडे। ईशरी के पलग के पाये मे कई तावीजें, पाटी मे बँधी हुई लोहे की कटार और कमरे की खूँटियों पर बुआ के फटे हुए, मैले गंदे, तेल मे डूबे हुए जम्पर, और साडियाँ। ईशरी फूफा के कटे और मुडे हुए जूते और एक टूटी हुई कघी। "वे हमे छोडकर चले गये यहाँ से।"

सूरज कमरे से बाहर निकल आया। रूपाबहू सूरज को देखती रह गई। सम स्वर मे बोली, "लगता है मेरी वजह से चले गए। मैने ही तो मधू को वह कहा था, न जाने कैसा चित्त हो गया था उन दिनो !"

सूरज न जाने कहाँ देख रहा था।

"न जाने कैसे गये होंगे !" रूपाबहू का स्वर कुछ भारी हो आया,

"पता नही, कहाँ गये होंगे ! किसी को नही बताया। ऐसे क्यो चले गये ? तभी मै कहूँ, मधू ने एक दिन मे सरजू सुनार से बैसाखी क्यो बनवाई ? कैसे गये होंगे वे ?"

"मै कहता हूँ चुप रहो !" सूरज क्रोध से चीख पडा और उसी सूने कमरे मे फिर चला गया, और देखने लगा जैसे हर कोने मे बुआ खडी हैं, हर बिन्दु पर ईशरी फूफा खडे है। पूरी उदासी और सन्नाटे में उनकी आवाजें सुनाई दे रही है; वे फुसफुसा रहे है।

उसी स्वर मे सूरज का मन बोला, "सब छोड गई बुआ, सग कुछ तो ले जातीं !"

बडी देर के बाद सूरज कमरे से बाहर चला आया। रूपाबहू उसी मुद्रा मे आँगन में खडी रह गई थी। सूरज ने सामने आकर कहा, "बुआ को एक ताना गोरेमल ने भी दिया था—'एक शादी सपूत ने की। इसी तरह एक शादी बाप ने अपनी बहन की की थी—खुरजे में !'

"मन जो बढ गया है लोगों का, जो मुँह में आता है, कह डालते हैं।"

उसी समय आँगन में संतोष दिखाई पडी। बाहर से चेतराम भी आया। पर सब चुप थे, एक-दूसरे का मुँह देखते हुए, जैसे सबको हर चीज का पता है और कुछ भी नही पता है। हर कोई एक-दूसरे से पूछना चाहता है।

५

उस दिन चंदनगुरु की आँख कुछ देर मे खुली। हडबड़ाकर उठा, तो देखा, सूरज की किरणे चरनलाल के बारजे तक बिछ चुकी थीं। बडा गुस्सा आया उसे अपने-आप पर और अपनी घरवाली पर; जल-भुन

उठा—'देखो न हरामज़ादी को, जैसे यह भी मर गई।'

आवेश मे चारपाई से उठकर सीधा घर गया। चूहेदानी पर नज़र गई, तो उसकी बाँहे फडक गईं—दो मोटे-मोटे चूहे आ फँसे थे। चदनगुरु ने चूहेदानी उठा ली और आँखों के सामने उसे टाँगकर देखने लगा। दोनों मोटे जीव चूहेदानी मे इतनी तेजी और भय से भागने लगे, जैसे खुले घर मे उनकी नज़र किसी बिलाव से मिल गई हो। वह ठहाका मारकर हँस पडा, उन चूहो की भयाकुल और मस्त निगाहों पर।

सामने से घरवाली आई और हाथ से चूहेदानी छीन ली, "रखो इसे, और भी कोई काम-धाम है कि नहीं? दुनिया उठकर सुबह रामनाम लेती है!"

"रामनाम का बैंक खुला है राजू पंडित के यहाँ। खरीद लेगे किसी दिन।"

"जैसे मुझे खरीदकर लाये थे?"

"तुझे तो भगाकर लाया था। भूल गई इतने दिन मे?"

चन्दनगुरु की घरवाली शरमा गई।

"रहने दो आज, इन्हे रात को छोड आना।"

"रात को छोडने से चूहे फिर उसी घर में लौट आते है।"

"सुना था, तुम अपनी जवानी मे बहुत बडे पहलवान और नामी आदमी थे, फिर इस तरह अब चूहो के पीछे क्यों पडे रहते हो?"

"चुप रह! बक-बक मत कर!"

चन्दनगुरु ने चूहेदानी उठा ली और उसे अपने शाल के घेरे मे छिपा, झट सडक पर चला आया, रिक्शा कर लिया और बहुत तेज़ी से बस्ती से बाहर हो गया।

एक जगह रुककर चन्दनगुरु ने चूहेदानी खोल दी। कुछ क्षण तक वे चूहे बाहर ही न निकलते थे। झटका देने से एक चूहा निकला और निर्लक्ष्य तेज़ी से भागकर मिट्टी के बीच दुबक गया, जैसे उतनी दौड़ मे

उसकी नन्ही सी जान उड़ गई हो। दूसरा चूहा चूहेदानी से निकलता ही न था। चन्दनगुरु को देर हो रही थी, तब उसने पूरी शक्ति से झटका देकर चूहेदानी उलट दी। चूहा गिरकर सँभला और पूरी शक्ति से खुले मैदान मे भागा। वह कही छिपना नही चाहता था, बस भाग जाना चाहता था अपने प्राण लेकर। चन्दनगुरु उसे देख रहा था। चूहा भाग रहा था। एकाएक आसमान से एक चील झपटी और उस चूहे को दबोच ले गई।

चील चन्दनगुरु के सिर के ऊपर से उड़ी। उसने सुना, चूहा अजीब स्वर से चीं-चीं, चूँ-चूँ कर रहा था। जब तक वह चील दृष्टि से ओझल न हुई चन्दनगुरु देखता रहा।

पिछले दो महीनो से जियालाल का 'आजाद रेस्टराँ' बन्द हो गया था। पुलिस ने उसे एक चोरी के मुकदमे में फाँसकर जेल भेज दिया था। आज पन्द्रह दिन हुए वह छूटकर आया था और अब अपनी उसी उजड़ी हुई दुकान के तख्ते पर शाम को चाट-कचालू का खोमचा लगाता है।

सुबह नौ बजे तक छेदालाल के अहाते के आस-पास के लोग कोई मुँह मे दातुन डाले, कोई लुङ्गी चढाए, कोई ड्रेसिंग गाउन, ओवरकोट पहने और कोई शाल-कम्बल ओढ़े, कोई सिगरेट दागे, पान चबाए उसी तख्ते पर जम जाते।

उस जमाव मे आज विपिन-पहलाद के अलावा लाला रम्मन भी ड्रेसिंग गाउन पहने मौजूद थे।

चन्दनगुरु का रिक्शा सामने से गुज़रा। जियालाल ने दौडकर रिक्शा रोक लिया। शाल के भीतर चूहेदानी थामे चन्दनगुरु घबरा गए, "ज़रूरी काम से घर जा रहा हूँ; भगवान् क़सम, रोको नहीं इस समय।"

पर जियालाल उसे खीचता हुआ तख्त के पास ले आया और जमाव के लोगों से बोला, "होली नज़दीक है, आज इन्हीं से शुरू हो जाय।"

"भगवान् कसम, मै अभी घर से लौटकर आता हूँ।"

"शाल के भीतर क्या छिपाया है गुरु?" विपिन ने पूछा।

"कुछ नही, कुछ नही कुछ!" यह कहता हुआ वह जान छुडा कर एक साँस मे भागा। सारे लोग हँसते रह गए।

"कहो रम्मन बाबू, तुम्ही कुछ सुना डालो अपनी," जियालाल ने साँस भरकर कहा। "कैसे बम्बई में कटी? कैसे रास्ते मे उडी? कहाँ कहाँ घूमे?"

विपिन ने आँख दबाकर कहा, "अमे शोले मत भडकाओ!"

पहलाद ने गाना शुरू किया

मारी लैला ने ऐसी कटार हो,
मियाँ मजनू का उतरा बुख़ार!"

जियालाल ने कहा, 'अजी बुख़ार तो उतरा छेदामल का। लाला रम्मन साहू को तो अभी एक सौ चार डिग्री है। सुनो, चिट्ठी-उट्ठी भेजती है कि नही?"

"अजी जवाबी कार्ड भेजती है," रम्मन ने खिलखिलाकर हँसते हुए कहा। "अपने बाप के पास चिट्ठियो के पार्सल भेजती है। लिखती है, रजिस्ट्रार साहब की तबियत खराब रहती है। मुझे हरिद्वार लेकर गये थे। दवा कराने के लिए अभी लखनऊ गये थे।"

"यार रम्मन, तूने स्वर्णलता की जिन्दगी ख़राब कर दी। बेचारी की शादी एक बूढे रजिस्ट्रार से हुई। कहाँ स्वर्णलता परिस्तान की हूर और कहाँ वह खूसट रजिस्ट्रार, पचास साल का।"

"अमे, जिन्दगी तो मेरी ख़राब हुई सालो! सबमे आग लग गई।" रम्मन ने ऊँचे स्वर मे कहा। "मेरी फ़र्म टूटी। सारी कमाई क़ुरबान कर दी उस हसीना पर। उस ससुरी को पसीना तक न

आया। जब हम दोनो पकडे गए, तो जानते हो उसने क्या कहा साहू साहब से ? 'मुझे रम्मन ने भगाया था जी !' आय हाय !" लडकियो जैसी अदा मे रम्मन ने कहा और सारा वातावरण हँसी से गूँज उठा।

रम्मन कहता जा रहा था, "जी तो हुआ कि कुमारी स्वर्णलता देवी, मैट्रिक, डॉटर आफ रायबहादुर साहू गुरुचरनलाल जी, आई० एस० सी० एच० डब्ल्यू० भूतपूर्व चेयरमैन दी ग्रेट के सामने बेटी के सारे प्रेमपत्र पटक दूँ। लेकिन क्या बात है ! हटाओ, बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुधि लेय !"

जियालाल ने पूछा, "आगे कोई नया माल आ फँसा क्या ?"

"नही जी, अब तो याद ही काफी है," यह कहकर रम्मन कान पकडकर जल्दी-जल्दी उठने-बैठने लगा।

सबने दौडकर पकड लिया।

"रम्मनलाल छेदामल बैकर एण्ड कमीशन एजेण्ट की क्या गत बना दी ?" पहलाद ने हँसकर पूछा। "अजी लाला रम्मन, तुम्हारी जूते की दुकान कैसी चल रही है ?"

"अच्छी ही है, आओ न किसी दिन, तुम्हे तो बिना भाव के दूँगा यार !"

सब हँसते रहे, रम्मन निर्विकार बैठा था—फक्कड, मस्त, मौन ! इतनी ही उम्र मे जैसे सारी दुनिया देखे हुए, सब भोगे हुए।

"यारो, मुझे अपनी किस्मत पर कोई गम नही। कमाया और दोनों हाथ से फूँका। फर्म मे आग लगाकर, गद्दी छोडकर जूते की दुकान पर आ बैठा मैं, मुझे इसमें कोई शर्म नही, ज़रा भी गम नही ! बसन्ता माँ मेरे दुख से टूटकर मर गई, इसका भी मुझे बहुत अफ़सोस नही। अफसोस और शर्म है मुझे तो केवल इसी बात में कि मेरे लाला छेदामल को साहू साहब के यहाँ इस उमर मे नौकरी करनी पडी। मैं इसे बहुत कमीना बदला समझता हूँ साहू साहब का। मुझसे बदला लेते तो उन्हे कुछ मज़ा भी मिलता।"

"हाँ यार, मेरे बाबा कहा करते थे कि ये साहू लोग जब किसीसे बदला लेने को होते हैं तो उसके बाप को किसी-न-किसी सूरत से अपने यहाँ नौकर रख लेते हैं," पहलाद ने कहा और विपिन की ओर देखकर अपनी दाईं आँख दबा दी।

"ये पैसे वाले ऐसा करते ही हैं," जियालाल बोला। "बडे ठण्डे साँप होते है और दुनिया मे ये महज एक ही चीज से डरते है—नफरत से। ये सब चीज बरदाश्त कर सकते है, पर अगर इन्हे यह पता लग जाय कि फलाँ आदमी इनसे घृणा करता है तो फिर इनके हाथ-पाँव ठण्डे हो जायँ और उसे परास्त करने के लिए ये दुनिया की कोई ताकत न छोडें। ये सेठ महाजन, मिल-मालिक इतना दान क्यो करते हैं? धर्मखाता क्यों खोलते हैं? महज इसीलिए कि वह जनता, जिसको ये चूसते हैं, इनसे नफरत न करने लगे। तभी जगह-जगह मन्दिर, शिवाले, धाम, धर्मशाले, घाट, स्कूल, कॉलेज और न जाने क्या-क्या!"

"अबे छोड, तू भी क्या रोना रोने लगा," सब एक साथ बिगड खडे हुए।

"यार सुनो!" रम्मन मुस्कराकर बोला, "सूरज और सन्तोष का मामला कैसा चल रहा है?"

'वह मामला बिलकुल पक्का है, तुम्हारी स्वर्णलता की तरह वह मामला कच्चा नही है। दो शरीर एक आत्मा वाली घटना है वहाँ।"

"यार यही घटना तो मेरी भी थी," रम्मन हँसने लगा।

"सुनो यार! वह गोपी माँ तो खूब है। अभी तो चक्कू है यार वह।"

"यह राजू पण्डित बडा फाँसू है। एक-से-एक 'एक्सिडेण्ट' करता रहता है।"

"प्रभुनाम बैंक का काम कुछ ठण्डा पड गया है। उसका दफ्तर उठकर सरजू सुनार के घर चला गया है। वह हीरा ललवा है न, वही तो अकाउण्टेण्ट है उस बैंक का," विपिन बता रहा था। "वह जो राजू

पण्डित की चक्कू बेटी है न, उसने अपने बाप को धमकाया कि यह प्रभुनाम बैंक बन्द करो नही तो मै जहर खाकर मर जाऊँगी।"

"हाय राम! मनिहरवा मिमोरे मोरी बहियाँ, बजरिया मै ना जावूँ राम!" रम्मन भाव बताकर नाचने लगा।

"सन्तोष बेटी को शान्त करने के लिए राजू पण्डित ने उस बैंक को सरजू सुनार के हाथ बेच दिया है, पर चालू अब भी है।"

"एक दिन सन्तोष और गोपी माँ मे खूब झगडा हुआ था, न जाने किस बात पर!"

"वही मामला होगा, और क्या हो सकता है!"

"अरे यार, एक बात तो तुम लोगों ने सुनी ही नही!" जियालाल नाचते नाचते रुक गया। "वह जो सरजू सुनार की घरवाली है—कुलवती, महिला आर्यसमाज की मन्त्राणीजी, जो वैदिक नारी के नाम पर बस्ती की हर औरत का परदा फाश करती घूमती है—उसने भी एक नया बिज़नेस शुरू किया है।"

"वह क्या?" सब कान उठाकर घिर आए।

"वह एक दिन प्रोफेसर दयाराम शास्त्री के घर गई, शास्त्राइनजी से बोली, 'तुम अपनी सयानी लडकी को घर मे बन्द करके मारती हो और पति से लडती हो, मै इस विषय पर अपने समाज मे प्रस्ताव रखने जा रही हूँ।' शास्त्राइन तो झाडू लेकर मारने दौडी कुलवंता देवी को। लेकिन शास्त्रीजी प्रोफेसर ठहरे। उन्होंने कुलवंता को बहुत मनाया, पाँच रुपये चन्दा देने लगे महिला समाज को, लेकिन कुलवता ने कहा, 'मै दस रुपये ले कम न लूँगी।' फिर देना पडा बेचारे शास्त्रीजी को।"

"यार जियालाल," रम्मन बोला, "तुम गोपी माँ को किसी तरह से कहीं भगा ले जाते तो मज़ा आ जाता। यह क्या समझकर आई है इस बस्ती में? ऐसे चलती है कि · ।"

"अजी साहब, चोली पहनती है चोली, जिसे 'बाडिस' कहते हैं।"

"तुम उसे सेकण्ड शो सिनेमा दिखाने ले जाओ—किसी धार्मिक खेल मे," जियालाल रम्मन से बोला। "इतना काम तुम करो, फिर आगे मै देख लूँगा, बदायूँ तक तो भगा ही ले जाऊँगा।"

"हाँ-हाँ, फर्स्ट क्लास की चार सीटें मै दूँगा," विपिन बोला। "नावल्टी मे इस काम के लिए मैं 'सन्त तुलसीदास' पिक्चर मँगवा सकता हूँ।"

सामने एकाएक मास्टर चन्दूलाल दिखाई दिए—धूप का चश्मा लगाए, चूडीदार पाजामे पर जवाहर बडी कसे हुए और सिर पर ऐसी खादी टोपी जो दुपलिया को भी मात कर दे।

मास्टर चन्दूलाल को देखते ही जमाव के लोग एक-पर-एक पास देने लगे

"जै हिन्द धुआँधारजी!"

"बन्देमातरम् जी, इन्क़लाब ज़िन्दाबाद!"

"कहिए लकादहन जी, आप दिल्ली से कब लौटे? वहाँ तो इटरिम गवर्नमेंट बन रही है। सुना है आप हेल्थ डिपार्टमेंट सँभालने जा रहे है।"

"सुना है आपकी राष्ट्रीय सेवा, स्वतन्त्रता-सग्राम और सत्याग्रह से प्रसन्न होकर सरकार आपको कुस्तुनतुनियाँ भेज रही है।"

"नही जी, पहले आप काबुल जायँगे।"

जियालाल बोला, "जी हाँ, सवारी का प्रबन्ध हो गया है, कागभुसड पर चढ़कर जायँगे आप।"

मास्टर चन्दूलाल बुरी तरह से बिगड खडे हुए, सबको डाँटते हुए चुनौती दी, "यही चरित्र है आप लोगो का! इसी चरित्र पर आप देश की स्वतन्त्रता सँभालेंगे! मै ताला लगा सकता हूँ आप सबके मुँह पर! क्या समझ रखा है?"

"सुना है आप सी० आई० डी० इन्स्पेक्टर होने जा रहे है," एक आवाज आई।

"म्युनिसिपैलिटी बतौर इनाम आपकी शादी गोपी माँ से कराने जा रही है।"

"मैं कहता हूँ, शान्त हो जाओ," चन्दूलाल ने क्रोध से गरजते हुए कहा, "नही तो मैं यहाँ सत्याग्रह करूँगा—अनशन !"

"चश्मा उतारकर !" दूसरी आवाज़ आई।

"लुक हियर एण्ड सी देयर !" तीसरी आवाज़ उठी।

मास्टर चन्दूलाल 'सत्याग्रह जिन्दाबाद' का नारा लगाकर वहीं पलथी मार बैठ गए और योगियो की भाँति शान्त मुद्रा मे स्थिर हो गए। तख्ते का सारा जमाव देखते-ही-देखते गायब हो गया।

होली के आठ दिन शेष रह गए थे। सूरज कॉलेज जाने लगा था। ईशरी फूफा और मधू बुआ का उसके घर से चला जाना, सूरज के अन्तस् मे सदैव घूमता रहता था। विशेषकर ईशरी फूफा का व्यक्तित्व, जिसे बेधकर बुआ ने दिखाया था, वास्तव मे सूरज को कही बहुत गहरे बेध गया था।

उनकी सुधि से बचने के लिए वह अधिक-से-अधिक देर तक कॉलेज मे रहता, लाइब्रेरी मे बैठता, प्रिंसिपल मसुरियादीन साहब के कमरे में बैठकर बाते करता। घर आता तो गद्दी पर बैठकर मुनीमो से छीनकर काम करने लगता।

पर ये सब कवच का काम न कर पाते। वह करुण सुधि सारी परतों को तोडकर पख फैला-फैलाकर आती थी और सूरज को उडा ले जाती थी, और सत्य की चट्टानों पर उसे पटकने लगती, फिर वह खण्डों मे चूर-चूर होने लगता था। ऐसी मर्मान्तक पीडा मे वह कस-कर बँध जाता कि उसकी सारी आस्था डगमगाने लगती।

ऐसे विकट क्षणो मे या तो वह स्वयं कुछ पढने लगता अथवा सन्तोष के पास जाता और उससे 'महाभारत' सुनता—कभी द्रोणपर्व,

कभी भीष्मपर्व।

उस दिन सूरज की मनोव्यथा इससे भी न उबर रही थी। सन्तोष ने कहा, "तुम्ही तो कहते थे कि हर पीड़ा मनुष्य को एक क़दम आगे बढ़ा देती है।"

"पर यह पीड़ा नहीं है, क्योंकि यह चिन्ताशून्य है।"

"फिर क्या है यह ?"

"पता नही, आती तो है फूफा और बुआ की सुधि बनकर।"

"इसे एक बार सोचकर क्यो नहीं देख लेते ?"

"तुमने इसे सोचा है क्या ?" सूरज ने विनीत स्वर मे पूछा।

"कई बार सोचा है, पर मैं उस स्थिति मे थी कि उसे वस्तुत सोच सकी," सन्तोष ने कहा, "पर शायद तुम नहीं हो, बुआ तुम्हारे प्राणो का अश है, ईशरी फूफा तुम्हारे पौरुष का अश।"

"नही, कभी नहीं," सूरज आवेश मे बोला। "मेरे पौरुष के अश ईशरी फूफा नही हो सकते। कैसे कहा तुमने यह ?"

सन्तोष चुप हो गई थी।

"सन्तोष, तुमने यही सोचा है क्या ?"

"नही जी, मैं तो अपनी अक्ल से महज़ कारण बता रही थी कि तुम अब तक उस स्थिति को सोचकर क्यो नहीं भूल सके ? क्योंकि तुम आत्मसात् हो उनमे। वे अग है तुम्हारे।"

"अच्छा, तुम सोचकर किस सत्य पर पहुँची हो ?" सूरज ने पूछा।

"पर वह मैने अपने स्तर से अपनी तरह सोचा है," यह कहती-कहती सन्तोष एकटक सूरज को देखने लगी। फिर बोली, "बुआ महान् कृपण थी, अपनी तपस्या को वह किसीसे बाँटना नही चाहती थीं, इसीलिए वह फूफा को समेटकर चली गई। वह छिपकर, बिना बताए चली गई, इसे मै बुआ की नारी का परम स्त्रीत्व समझती हूँ। बुआ की यह सुधि मुझे गौरव देती है।"

कहते-कहते सन्तोष की आँखे सजल हो आई और सारा मुख

आलोकित हो उठा।

सूरज चुप था, जैसे उसकी पीड़ा को सहसा चिन्ता प्राप्त हो गई हो। वह नि स्पन्द बैठा रहा—सामने महाभारत की पोथी खुली थी, सिर ढके, स्मितवदना सन्तोष बैठी थी।

करीब एक घण्टे तक वह उसी तरह चुप बैठा रहा।

इस बीच सन्तोष दो बार ठाकुरद्वारे हो आई। सूरज को हँसाने के लिए उसने एक बार उसके माथे और गाल पर अबीर और गुलाल मल दिया।

सूरज उठकर जाने लगा।

सन्तोष ने पकड़ लिया, "ऐसे न जाने दूँगी।"

सूरज मुस्करा उठा।

"मै कहा करता था न," सूरज ने सम स्वर मे कहा, "इस बस्ती मे अगर कोई एक भी महान् हो जाय, तो यहाँ के लोगों को अपने-आपको बस्तीवाला कहलाने में गौरव मिले।"

"हाँ बिलकुल सत्य कहा है।"

"नही, बिलकुल झूठ है। मैने भावुकता के स्तर से वह सब कहा था, ये बातें महज भाषण मे कहने की है। 'महान्' और 'गौरव' ये शब्द बिलकुल अर्थहीन है। ये हमारे जीवन के शब्द नहीं है। ये हमारे ऊपर किसीने आरोपित कर रखे है, जिनमे हम बुरी तरह से घुट रहे हैं।"

सतोष खिलखिलाकर इस तरह हँसती रही कि सूरज की वह बात उसकी हँसी मे ढक जाय—वायु मे, गगन मे वह बिखरे नहीं।

सूरज बड़ी तेज गति से जाने लगा। सतोष अपनी हँसी मे गाफिल पड गई, पर वह दौडी और सूरज को उसने दहलीज़ पर पकड़ लिया।

"यह वही स्थल है सूरज!" संतोष सूरज की आँखों में देखती रह गई, फिर अनायास भारी होकर वे पलकें झुक गईं।

"तुमने यही कुछ कहा था।"

"हाँ याद है," सूरज एकनिष्ठ स्वर में बोला। "अब भी वह याद है मुझे, और वह सदा याद रहेगा, मैने ममता पाई है।"

"कुछ और भी कहा था,' सन्तोष ने माथा उठाया। उसके मुँह पर जैसे रक्त बरस रहा था।

"इसके अतिरिक्त जो-कुछ भी कहा था, वह सब नगण्य है, अर्थ-हीन। मैं वह सब भूल गया।"

सन्तोष उसे पकडे हुए अपने कमरे मे गई। सूरज के लिखे पृष्ठो मे से कुछ ढूँढ़ने लगी।

सूरज बोला, "मत ढूँढ़ो। उनमे कुछ भी नही है। भ्रम है, भावुकता है सब। यह समझो, ये सारे पृष्ठ कोरे हैं, सन्तोष ! जो-कुछ भी इनमे लिखा है, उनमे मेरी अनुभूति नही है। अब उनमें मेरी कोई आस्था भी नही है।"

सन्तोष एक क्षण के लिए पीली पड गई। वह सिर से पैर तक काँप गई, जैसे धरती हिल गई हो।

सूरज फिर उसी दर्द से बोला, जैसे शरीर के सारे रक्त के एक-एक बूँद के मन्थन से, "मैने यथार्थ भी छुआ है।"

सूरज की आँखे अजीब तरह से चमकीं, पर वह निर्विकार ढग से बोला, "महान् होना, गौरव देना, राष्ट्रसेवा, जन्मभूमि-सेवा, स्वतंत्रता-सग्राम, क्रान्ति, इन सबका अब मेरे सामने कोई महत्त्व नहीं है। ये सब मेरी अनुभूति में नहीं उतरे थे, केवल कर्म मे आये थे। और अब जो मुझे अनुभूति मिली है, उसके सामने मैं इन्हे ठीकरे समझता हूँ।"

सूरज चला गया।

संतोष खडी रह गई, जैसे उसके सामने ग्रह-लोक से एक तेज-पुञ्ज नक्षत्र गिरा हो और सबको चीरता हुआ न जाने कहाँ चला गया हो—चलता गया हो।

बड़ी देर बाद सतोष जब आश्वस्त हुई, तो महाभारत की पोथी मे वह सूरज के लिखे उन पृष्ठो को सहेजकर रखने लगी, जैसे कृपण अपने धन को कहीं रखे। और जब वह उसे अपनी माँ के दिये हुए सन्दूक में रखने लगी तब उसे न जाने क्या सूझा। उसने आटे की एक चौक पूरी—कमल की आकृति जैसी, पर टेढी-मेढी, क्योंकि हाथ काँप रहे थे। उसके बीच में उसने महाभारत की पोथी रखी, उस पर उन पृष्ठों को रखा और उस पर अपने माथे को टिकाकर वह नि शब्द रोने लगी।

६

होली के बाद दिल्ली से गोरेमल आया। इस बार वह अपने सग चेतराम के पूरे परिवार के लिए बहुत बढिया-बढिया कपड़े ले आया था। उन विविध प्रकार के कपडो में मधू बुआ और सीता-गौरी तक का हिस्सा लगकर आया था। इसके अतिरिक्त वह सूरज के लिए एक रेडियो सेट और टाइपराइटर ले आया था।

इस बार सारे परिवार के बीच गोरेमल आँगन मे बैठा—बिलकुल नाना की तरह।

सूरज से बोला, "याद रखना, वह रेडियो सेट और टाइपराइटर तुम्हारे नाना का दिया हुआ है!"

"तभी मुझे स्वीकार भी है," सूरज धीरे से बोला।

"अजी, सुनो भी," गोरेमल ने स्नेह से झिझककर कहा, "बड़े स्वीकार करने वाले आये हैं! तुम लीडर होगे, जहाँ के होगे, हाँ नही तो··।"

कुछ क्षण रुककर उसने कहा, "मैं जो कह रहा हूँ उसे पहले पूरा सुनो। गोरेमल फिज़ूलखर्ची मे विश्वास नही करता। इसे वह

गुनाह समझता है। लेकिन ज़रा गौर करने की बात है। इसे कजूसी नही कहते। इसे कहते है दूरदर्शिता। रुपया फेकने की चीज़ नही है, बल्कि पाटने की चीज़ है। जहाँ काम आ जाय, वहाँ सीना खोलकर दिखा दे, लाख-डेढ़ लाख तक को कुछ न समझे। रुपया औरत है। इसे पैदा करने वाला पुरुष है और इसे भोगने वाला भी पुरुष है—लेकिन वही जो भाग्यवान है। यह जरा गौर करने की बात है। पाडव पुरुष थे जरूर—एक-से-एक बढ़कर थे, लेकिन भाग्यवान नही थे, तभी वे सुख नहीं भोग सके।" यह कहते-कहते लाला गोरेमल हँस पडे। फिर कहा, "इस समय हिन्दुस्तान-भर मे जो सबसे अधिक क़ीमती रेडियो सेट था, मैने वही खरीदा। इसी तरह टाइपराइटर भी। रुपया इसीलिए बना है। खूब कमाओ और सही जगह पर सीना खोल-कर खर्च करो। यह गौर करने की बात है। इसे आप कजूसी और मक्खीचूसी कहेगे ? एक रेडियो सेट चेतराम ने भी ख़रीदा था। कित्ते दिन चला ?"

गोरेमल हँसने लगा—बडी निश्छल हँसी। "रेडियो से खबरें सुनो, बाज़ार के भाव नोट करो। मार्केट की नब्ज़ हाथ की उँगलियो मे ढीली न पडने पाए। और टाइपराइटर से लिखने का काम लो। मै तो कहता हूँ, जितना भी काम मशीन-बिजली, गैस-स्टीम से लिया जा सके, उसके लिए मनुष्य की ताकत और जिन्दगी खर्च करना बेवकूफी है, सरासर जहालत।"

सूरज वहाँ से चला गया था। रूपाबहू भी चौके की ओर जा रही थी। केवल अकेला चेतराम बैठा सुन रहा था। "सरकार बदल रही है, अग्रेज़ी हुकूमत ख़त्म हो रही है। एक तरह से युग बदलने को है। हमे जरा गौर से चलना है। जब अग्रेजी हुकूमत यहाँ से जा सकती है, तो अब यहाँ कुछ भी असम्भव नहीं। जो कुछ भी न हो जाय, वह थोडा। चेतराम, गौर करने की बात है, हम किस्मतवर है कि हम पूँजीपति नही है। हम दिन-भर में सैकडो बार मरते नहीं।

बिजनेस का जो हमारा रास्ता है न, सबसे बेनजीर है। हम पुश्त-दर-पुश्त इसी 'बिजनेस' से बैठे शान से खा-पी सकते है—न किसीकी दोस्ती, न दुश्मनी। कोई राज्य रहे या न रहे। चाहे जो हुकूमत आये, सब-सिर आँखों पर। और ये मिल-मालिक, जो बेचारे पूँजीपति के नाम से बदनाम है, वे हर रोज़ डरते है कि अगले दिन उनका क्या हश्र होगा, क्योंकि उनकी ज़िन्दगी, उनकी बिजनेस दूसरों के हाथ मे है। हम क़िस्मतवर है कि अपनी बिजनेस के मालिक हम खुद है। और हमसे भी ज्यादा क़िस्मतवर वह बनिया है, जो परचून की दुकान करता है। न कोई गम, न ख़तरा, न झूठ, न सच।"

गोरेमल मुस्कराने लगा। उसके मुँह में सामने के पत्थर के दाँत बडे प्यारे ढग से हिलने लगे थे।

गोरेमल के आने के बहुत पहले की बात है, एक दिन ठीक दोपहर को रूपाबहू किसी काम से छत पर गई—टिन के नीचे, जहाँ कभी बहुत पहले सूरज ने कबूतरों के लिए घर बनाया था—वे पालतू कबूतर, गिरहबाज, चंदनगुरु को मात देने वाले।

टिन के पास रूपाबहू ने सुना, भीतर कहीं से घुरंऽ' घुरंऽऽ''' ची'' चीं की आवाज आ रही है। वह भीतर गई—कोने में जहाँ पुराने घडे, सुराहियाँ और बाँस-खाट गॅजे रखे थे, उसके बीच एक घायल कबूतर दुबका बैठा था—भयभीत, त्रस्त। रूपाबहू ने उसे उठाकर अपने अंक से चिपका लिया था, और उसे आँखों से लगाकर रोने लगी थी—वह कबूतर, जिसे बहुत पहले उसके सूरज ने पाला था। उसके दायें पैर में अब भी चाँदी का वह नन्हा-सा छल्ला पडा हुआ है। देखने में कहीं बहुत चोट आ गई है। बायाँ पंख शरीर से गिरा जा रहा है। पंख उठाकर नीचे देखा तो वह सिहर गई—खून बह रहा है।

रूपाबहू घायल कबूतर को आँचल मे छिपाकर अपने कमरे मे ले आई थी। दवा, सेवा और ममता तीनो एक साथ पाकर वह मरणासन्न कबूतर जी गया। घाव भर गए, पर जो पख टूटा था, वह उडने की दृष्टि से निर्जीव रह गया।

वह कबूतर अब सदा, हर क्षण रूपाबहू के सग रहता है। कोई नही देख पाता, न समझ ही पाता है कि वह कबूतर कैसे जी गया। स्वतत्र, आकाशजीवी वह प्राणी किस अदृश्य डोर से बँधा इतना गद्‌गद दीखता है। वह क्या है रूपाबहू और उस नगण्य कबूतर के बीच, जो मूक रहकर भी छलकता रहता है, जो कृत्य होकर भी कृतज्ञता से भरा रहता है--कोई दया नही, दान नहीं, यूँ ही स्वत उद्‌भूत, स्वत चालित, हर साँस का अग बनकर।

चेतराम ने अक्सर देखा है—रूपाबहू अपने कबूतर को वही खिलाती है, जो उस पख वाले प्राणी को पसन्द है। चेतराम देखता है और मन-ही-मन विहँस उठता है—कितनी बच्ची है यह लल्ला की मां! कितनी सरल-सीधी!

सूरज ने कई दिन देखा है, रूपाबहू सबसे छिपाकर उस कबूतर को कभी-कभी नहलाती है। उसकी गरदन को रेशमी कपडे से पोंछती है और उसे चूमती है। निर्जीव पख को आँखों से लगाकर बडी देर तक चुप रहती है। उसके पैर का एक-एक कोना पोंछती है और उनमे तेल लगाती है।

एक दिन रूपाबहू ने सन्तोष से कहा, "यह कबूतर सूरज का है। उसी का पाला हुआ है न!" और उसे चूमती हुई वह भाव-विभोर होकर अस्फुट स्वर मे न जाने क्या बुदबुदा उठी।

चेतराम जब उस कबूतर और रूपाबहू को देखता, तो मन-ही-मन विहँस उठता, "यह कबूतर भगवान् का भेजा हुआ है, इसके पाँवों मे सोना मढ़ाऊँगा।" एक दिन उसने रूपाबहू से गद्‌गद कण्ठ से पूछा, "क्यों जी, इसका पख किसी तरह अच्छा नहीं हो सकता क्या?"

रूपाबहू ने शिशुवत् हँसते हुए कहा, "कोई हड्डी थोड़े ही है जो जुड़ जायगी, या कोई दीखता हुआ घाव है जो ऑपरेशन से ठीक हो सकता है। यह तो पक्षी है, जो टूट गया सो टूट गया।

"टूट गया! पक्षी है! पर कितना भागवान है लल्ला की माँ!" चेतराम इस पूर्णता से मुस्कराने लगा कि उसके मुख की सारी झुर्रियाँ लुप्त हो गई। उसकी मूँछ के अधपके बाल क्षण-भर के लिए जैसे फिर काले हो गए।

"अजी, तुमको काहे इतनी चिन्ता हो रही है, जाओ गद्दी पर बैठो न!" रूपाबहू ने चेतराम को इस तरह उत्तर दिया, जैसे कोहवर की दुल्हन दूल्हा से मान करे और आँखो आँखो मे ऐसा कटाक्ष मारे जिसकी मूक वाणी सारे प्राणो मे बिध जाय।

गद्दी पर, चेतराम और मुनीमों के बीच बैठा हुआ गोरेमल असली बहियों से बैंक के कुछ कागजो और पुराने जमा खातो का मिलान करा रहा था।

दीवार की घड़ी ने चार बजाए।

"सूरज अब तक नही दीखा।" गोरेमल ने कुछ क्षण बाद स्वय अपने आप को जवाब भी दिया, "वह फिर कॉलेज जाने लगा न! तुमने तो कहा था चेतराम, सूरज ने कॉलेज जाना बन्द कर दिया।"

"आता ही होगा लाला!"

"क्या करेगा वह पढ-लिखकर? मैं तुम लोगों की अक़ल नहीं समझ पाता," गोरेमल को बहुत बुरा लग गया, "एफ़० ए० की डिग्री क्या कम थी? और क्या तीर मार लेगे बी०ए० ही करके! लाखों एम० ए०, बी० ए० सौ-सौ रुपये की नौकरी के लिए तरस रहे है। यह कौनसा तीर मारने के लिए पढ रहे है? पूछा है कभी? बोलो चेतराम!"

"पूछा तो नहीं, लेकिन पढने के लिए मना जरूर कई बार किया है।" चेतराम ने आगे भी कुछ कहना चाहा, पर चुप रह गया।

"गोरेमल की फर्म है न ! पूछोगे क्यों ?"

चेतराम घूँट पीकर रह गया।

"इस तरह गोरेमल लुटाने के लिए नही बना है। वह बेवकूफ़ नही है।"

"उसका खर्चा मै अपने हिस्से मे से देता हूँ लाला," चेतराम ने सम स्वर मे कहा। लेकिन उस स्वर मे फिर भी इतना वजन था कि बरामदे से घर मे जाते हुए सूरज ने उसे सुन लिया, और तख़्त-कुरसी के बीच वह बँधा खड़ा रह गया।

"बड़े ख़र्चा देने वाले आये," गोरेमल ने कहा। "अपने हिस्से से ख़र्चा ! और जब सपूत बेटा लीडरी कर रहा था, स्वतन्त्रता-सग्राम लड रहा था और आये-दिन जो पुलिस को थैलियाँ देनी पडती थीं ?"

कुछ क्षणों के लिए गद्दी पर सन्नाटा।

"और वह जो हजार मन गेहूँ का 'केस' हुआ था, वह किसके हिस्से में पडा था ?" गोरेमल कहता गया, लेकिन झट स्वर बदलकर, बोला "मै पूछता हूँ, जरा गौर करने की बात है कि उस स्वतन्त्रता-संग्राम की लीडरी से क्या मिला ? केवल यही न कि घर फूँक सत्यानाश ! जेल, जुरमाना, बेइज्जती, बदनामी ! अब कौन पुरसाँहाल है साहबज़ादे का ? आख़िर, फिर लौटकर इसी घर मे आये कि नहीं ! अब तो 'हाईकमाड' से फरमान नहीं आते होंगे। अजी खेल खतम, पैसा हजम।"

गोरेमल को पता था कि बाहर सूरज आ गया है। दो-चार पेज कागज देखकर वह फिर बोला, "सेठ-व्यापारी के लिए विदेशी हुकूमत चाहिए। न कोई ख़तरा, न कोई बन्दिश। उनके भाव चालीस सेर के और पूरे वजन के सिक्के। मगर ज़रा गौर करने की बात है। जिस क्षण से अग्रेजो को पता चल गया कि उनकी हुकूमत इस मुल्क से जाने वाली है; असली सिक्के बन्द, नकली सिक्कों से बाजार भर दिया।

बडे सिक्के गायब, छोटो की भरमार। एक रुपये के नोट, दो रुपये के नोट, जिससे हर आदमी अपने को रुपया वाला समझे। कलकत्ता की टकसाल मे छ लाख रुपये रोज ढलते है—नव्वे ग्रेन चाँदी के नाम और नव्वे ग्रेन मे अन्य धातु—कहाँ ग्यारह बटे बारह चाँदी और अब मुश्किल से एक बटे दो। निकल और ताँबे की नई-नई टकसालें! क्या करेगा कोई इन सिक्कों से ? केवल इन्हे ख़र्च कर सकता है, बस। इनसे कोई धनी या रुपये वाला नही कहला सकता, यह गौर करने की बात है।"

कुछ क्षण चुप रहने के बाद फिर कहने लगा, "बनिया का लडका और आज की यह बी० ए०, एम० ए० की पढाई! राम राम! लानत है। कुछ लीडरी की कमाई की, कुछ पढ़-लिखकर शोहदा बनकर घूमने की कमाई बाकी है।"

गोरेमल यह कहता हुआ गद्दी से बाहर चला आया। सूरज वहाँ से चला गया था।

"तुम अपना घर बरबाद करो चेतराम! चाहे आग लगा दो इसमें, लेकिन तुम मेरी फ़र्म नही बरबाद कर सकते। बहुत सब्र किया मैने!" गोरेमल की आवाज़ बहुत ऊँची हो गई—इतनी कि चेतराम को धडका शुरू हो गया। वह वहीं गद्दी पर लुढक गया।

सूरज दौडा हुआ आया। डॉक्टर को बुलाने भागा। घर, डॉक्टर, अस्पताल और पिताजी—सूरज को और कुछ नहीं सूझता था।

गोरेमल ने कई बार इस तरह कहा, "बनिया और दिल की बीमारी! हद हो गई! मेहरे हैं मेहरे!"

रात के दस बजने के बाद चेतराम की तबियत ठीक हुई; और तब वह स्वस्थ ढग से साँस लेने लगा।

०

अगले दिन शाम के वक्त, जब कहीं रोशनी भी नहीं जली थी, सूरज

पिताजी को दवा पिलाकर गोरेमल के पास आया। गोरेमल सेहन में आरामकुरसी पर बैठा था। सूरज ने अपने बैठने के लिए एक कुरसी खींच ली। कुछ देर तक चुप रहा, जैसे सकल्प के नि शब्द मन्त्र पढ रहा हो।

"नानाजी, यह सारी फर्म आपकी है ?"

"क्यो, क्या बात है ?"

"मै जानना चाहता हूं।"

"और अब तक तुम क्या जानते थे ? जरा गौर करने की बात है, मै तुमसे पूछता हूँ, तुम्हे क्या पता था ?"

"यही कि यह फ़र्म श्री चेतराम और गोरेमल दोनों की है—रुपये में छ आने की पार्टनरशिप !"

"छ आने किसके हैं, यह भी पता है ?"

"मेरे पिताजी के !"

"फिर क्या पूछना है ?" गोरेमल देखता रह गया।

"लेकिन यह गलत है। सच यह है कि यह सारी फर्म आपकी है। हम सब नौकर से भी बदतर है, पिताजी तो ...।"

गोरेमल ने डाँटकर सूरज की बात काट दी, "क्या पिताजी ?"

"पिताजी कुछ नही, मै भी कुछ नही।" सूरज जैसे अपने-आपसे कह रहा था। "हम अपना घर बरबाद कर सकते है, इसमे आग लगा सकते हैं, लेकिन हम आपकी फ़र्म नहीं बरबाद कर सकते। आपने अब तक बहुत सब्र किया।"

"तो यह क्या गलत है ? यह ग़लत है क्या ?"

"बिलकुल सही है।"

"जिस दिन अपनी पूँजी से दो पैसे पैदा करोगे उस दिन पता चलेगा लल्ला ! यह लीडरी नही है, यह रोज़गार है," गोरेमल ने कहा।

"जी हाँ रोजगार है। इसके लिए साहूकार यह मनाए कि सदा महायुद्ध छिडा रहे, सदा कहत और अकाल पडा रहे, देश मे विदेशी

सरकार हो।"

"तेरा मतलब क्या है ?" गोरेमल ने संयत स्वर मे पूछा।

"यही कि आप अपनी फर्म यहाँ से ले जाइए। हमे नही चाहिए यह।"

यह कहता-कहता सूरज काँपकर उठ गया। उसे उस क्षण लगा कि वह लघु से विराट हो गया। उसकी बाँहे अजेय हो गई। उसकी छाती पहाड की तरह फैलकर उठ गई। और वह गोरेमल उसे ऐसा लगा, जैसे कोई चूहा हो, जो उसके पहाड के नीचे दब गया हो।

सारे मुनीम, नौकर-चाकर वहाँ घिर आए। भीतर से रूपाबहू दरवाजे पर आ खडी हुई। आग्नेय दृष्टि से गोरेमल सूरज को देख रहा था, और मारे क्रोध के वह काँप रहा था। उसकी वाणी थरथरा रही थी।

और सूरज निःस्पंद था, जैसे किसी साधक को अनुभूति मिल गई हो, जैसे उसके असंख्य विद्यार्थी इन्क़लाब जिन्दाबाद बोल रहे हो, जैसे 'भारत छोडो'—'क्विट इण्डिया' का प्रस्ताव आज अंग्रेज के गले मढ़ दिया गया हो।

सूरज—विजयी !

सूरज—स्वतन्त्र !

सूरज के आनन्द क्षण—ऐसे जो आज तक अनुभूति मे नही आये थे, जो कभी नही जिये गए थे !

सूरज सबका मुँह देखने लगा। गोरेमल चीख़-चीखकर बोल रहा था। सूरज का जी हो रहा था कि वह गोरेमल को समझाए, शान्त करे, आश्वासन दे। वह जो माँगे सूरज उसे निःसंकोच दे दे। गोरेमल उसे बहुत अच्छा आदमी लग रहा था।

"लेकिन तू कौन है ? मै तुझे क्या समझता हूँ ?" गोरेमल ने तडपकर कहा।

"मै ? ··मै सूरज और चेतराम दोनो हूँ।"

"और मैं भी चेतराम-गोरेमल हूँ।"

यह कहता हुआ गोरेमल भीतर की ओर बढा, जहाँ चेतराम सोया पडा था। पीछे-पीछे सूरज भी गया—ऐसी चाल से जो सर्वथा अपूर्व और मौलिक थी।

पलग पर चेतराम निस्तब्ध पडा था। पायताने रूपाबहू खडी थी—माथे पर आँचल की छाँव डाले।

सूरज कमरे के दरवाजे पर खडा रह गया।

गोरेमल चेतराम के मुँह पर चढ आया।

"अपने सपूत को सुना ?"

चेतराम न जाने क्या निहारता रहा। सूरज पास चला आया।

"सुना कि नहीं अपने पूत को ?"

"सुन लिया," चेतराम ने धीरे से कहा।

"फिर बात ख़त्म हो गई," गोरेमल का स्वर गिर गया और वह रूपाबहू को देखने लगा। उसका मुँह इतना छोटा दीखने लगा था, जैसे वह कोई निर्दोष शिशु हो, जिसे ममता चाहिए।

रूपाबहू से सम्हाला जाकर चेतराम पलग पर बैठ गया। मुडकर उसने गोरेमल के चरण छू लिए। "सूरज की बात पर न जाओ लाला, ज़बान पर खून है उसके ! मै तो अभी जिन्दा ही हूँ। डॉक्टर ने उठने, चलने-फिरने को मना किया है। वैसे तो मै अच्छा हो चला हूँ।"

गोरेमल चुप खडा था, पर जैसे वह चेतराम को नहीं सुन रहा था, कहीं कुछ और देख रहा था।

"मैने तो कभी कुछ नहीं कहा आपको, कि कहा है कभी कुछ ?"

"लेकिन सहा कितना है ? यह दौरे की बीमारी किसने दी है ?"

"तुम चुप रहो सूरज !" चेतराम ने दर्द से डाँटा और कुछ कहना चाहा, पर गोरेमल ने चेतराम को बोलने से रोक दिया, "तुम झूठे हो चेतराम, बुज़दिल और दब्बू ! जो सच है उसे मै जानता हूँ।"

यह कहता हुआ गोरेमल कमरे से निकल गया। शेष कमरे में

सन्नाटा खिचा रह गया। बहू से सम्हलाकर बैठा हुआ चेतराम, सूरज और रूपाबहू, तीनों एक-दूसरे को देखते रह गए।

कुछ ही क्षण बाद बाहर से दौड़ा हुआ हिरनू आया और पीछे-पीछे रामचन्दर मुनीम, "सेठजी चले जा रहे है, कौन रोके उन्हे ?"

"चलो, मै रोकता हूँ।"

यह कहता हुआ चेतराम पलग से नीचे उतर आया। रूपाबहू अजब ममता से पति को सम्हालती जा रही थी, सूरज उसे दौड़ने से रोक रहा था, लेकिन चेतराम सबको बेधकर बाहर निकल गया। पर गोरेमल जा चुका था।

चेतराम की आँखो मे न जाने क्या देखकर सूरज की धरती डोल गई। उसने काँपते स्वर मे कहा, "बाबू ! अगर ऐसी बात है तो मै गोरेमल से माफी माँग सकता हूँ। बोलो बाबू !"

चेतराम ने सिर हिलाया।

"लेकिन तुम ऐसे क्यो देख रहे हो ?" सूरज ने तप्त मुख से पूछा। "जिसमे तुम्हे सुख और शान्ति मिले, मै उसके लिए सारी यातना सह सकता हूँ।"

"नहीं नही," रूपाबहू ने सूरज के मुख पर अपना हाथ रख दिया, "इसके लिए हम है, तुम क्यो ? लल्ला, तुम क्यों चिन्तित होते हो ? जाने दो न गोरेमल को। हम क्या मर जायँगे ? ले जाय वह अपनी कृपा और दया यहाँ से ! हम जल चुके, अब वह क्या कर लेगा ?"

सूरज रूपा माँ को देखता रह गया, जैसे वह माँ को पहली बार देख रहा हो। फिर उसे मधू बुआ की सुधि हो आई—मधू बुआ के भीतर बैठी हुई रूपा माँ, रूपाबहू, और मधू बुआ सूरज से कह रही है, "जब तुझे कभी सत्य और विश्वास की आवश्यकता पड़े, तू केवल रूपाबहू के पास जायगा। यहाँ सत्य-केवल वही है।"

रूपाबहू चेतराम को सम्हाले हुए भीतर ले गई, पलग पर लिटा

दिया। माथे पर हाथ रखकर देखा, बड़ा ही तेज बुखार चढ़ रहा था।

सिरहाने सूरज !

पायताने रूपाबहू !

सूरज उन अर्थहीन आँखों की गहराई को देखकर अब और डरने लगा था। उन पर हाथ रखकर उसने प्रार्थना के स्वर में कहा, "ऐसे न देखो बाबू ! इन्हें मूँदकर सो जाओ, सुबह बुख़ार उतर जायगा।"

यह कहकर सूरज ने पिता का मुँह ढक दिया।

वह धीरे से उठा, माँ के पास मन्त्रमुग्ध-सा खड़ा रह गया।

रूपा माँ के चरणों में झुककर सिर टेक दिया। और जब उठा तो सारा मुख आँसुओं से तर था।

आँसू पोछता हुआ वह तेज़ी से घर के बाहर जाने लगा—पीछे के दरवाज़े से सन्तोष के पास।

सन्तोष स्वयं दरवाजे के भीतर आ रही थी। उसने सन्तोष को इतनी तीव्रता से अंक में भर लिया कि वह जैसे कहीं लुप्त हो गई—बड़े गहरे समुद्र में।

सन्तोष के पूरे मुख को चूमता हुआ सूरज थरथराहट में बोलने लगा, "अंग्रेज़ भाग गया। हमने स्वतन्त्रता पा ली। मुक्ति की अनुभूति छू ली मैने।"

सूरज को लगा कि उसके अङ्क मे मधू बुआ है। उसने झुककर चरण छूना चाहा, पर सन्तोष उसके पाँव में बैठ गई और मुस्कराने लगी—दूर बहुत दूर तक वह मुस्कान खिचती गई, खिचती गई।

चेतराम का वह ज्वर अगले दिन नहीं उतरा। उतना ही बना रहा। अगले दिन भी नहीं उतरा, और उससे अगले दिन भी नहीं। जब उसकी नींद टूटती, तब वह उसी अर्थहीन दृष्टि से सबको देखता रहता—

रूपाबहू को, सूरज को, सन्तोष को, अपने नौकरों को, मुनीमों को, और अपने उन सब आढ़तियों और दलालों को, जो उसे बारी-बारी देखने आते। जैसे वह सबसे निःशब्द ऐसी बातें करता होता, जो उस हवा में, शून्य में और उस पूरे कमरे की ख़ामोशी में उभरकर सुनाई देने लगती।

वह चुप ··निःशब्द वाणी!

वे अर्थहीन गहरी आँखें!

और जब वह सो जाता, और कमरे का दरवाज़ा बन्द हो जाता, तब वह धीरे-धीरे बड़बड़ाता—'ऐसा न करो लाला! मैंने थोड़े तुम्हें कभी कुछ कहा है। सूरज हमारा मूलधन है, तुम भी तो कहा करते थे। वह 'विल' फाड़कर फेंको नहीं! सूरज तुम्हारा नाती है लाला! क्यों ले जाते हो? सब इसी का तो हक है। कहाँ लेकर जाओगे सब? इसका हक तो न मारो लाला! यह सूरज तुम्हारा ही है—हम सबका है—मूल, ब्याज, कर्ज-उधार, जमा-खाता, हुण्डी · गिरवी · सट्टा · तराजू बाट ··कच्ची बही पक्की बही असली · नकली—सब यहीं तो है लाला! ओ लाला सेठ! सुनो तो । अयँ · अयँ सुनो नहीं · नहीं। सुनो ·· वह 'विल' है न! अयँ · अयँ।'

रूपाबहू सदा बैठी सुनती रहती, लेकिन सूरज के लिए वह असह्य था। उस अवस्था में चेतराम का वह बड़बड़ाना सूरज में कुछ ऐसी स्थिति उत्पन्न करता था कि वह अजीब पश्चात्ताप से बिंधने लगता था—'मैंने पिताजी की सारी तपस्या नष्ट कर दी।'

सूरज में गोरेमल के प्रति भी एक अजीब-सी दया उभरती थी, जो उसे निर्बल तो बनाती ही थी, साथ साथ उसे दृढ़ भी करती थी। गोरेमल जब उस रात को स्टेशन पर पहुँचा, तो वहाँ उससे बिहारी, नैनू और कुंसामल की भेंट हुई थी। वे बताते थे कि किस तरह सेठ दुखी था, कैसी-कैसी वह बातें कर रहा था—कितना दीन-असहाय लग रहा था! क्या-क्या सोचा था उसने सूरज के लिए! कितना बड़ा आसरा

था उसे !

गहरी रात तक ठाकुरद्वारे मे द्वादशश्रेणी हरिकीर्तन पार्टी जमी हुई थी। सूरज अपनी अनिद्रित अवस्था मे गोरेमल की ही स्थिति से आक्रान्त था। उसे बेधकर निकल जाने का उसे कोई भी मार्ग नही मिल रहा था, जैसे मन के हर दरवाज़े पर कहीं चेतराम और कहीं नाना गोरेमल पथ रोके खडे रहते थे। उधर फ़िल्मी तर्ज पर यह कीर्तन उभर रहा था :

प्रेम भरा संसार, मेरे मन दुनिया बसा ले।
मातु पिता गुरु मित्र को, करता हूँ परणाम,
करो दया मुझ पर सबै, निशि-दिन आठो याम।
ठाकुरजी करुणा करहु, हूँ अति बुद्धि-विहीन,
होय मनोरथ सफल मन, तुम हो दया प्रवीन।
मेरे मन दुनिया बसा ले •!

यह कीर्तन सूरज को बेतरह चुभने लगा। 'इतनी रात तक चीख-चीख़कर यह बेहूदा कीर्तन! ये इसीलिए बुद्धि-विहीन हैं कि ठाकुरजी इन्हे करुणा दें। ये आत्मसम्मानहीन, दया के भिखारी •• !' सूरज पिछवाडे का दरवाजा खोलकर ठाकुरद्वारे मे गया। राजू पण्डित की समाधि लग गई थी, नाचते-नाचते ब्रह्मलीन होकर बेहोश हो गए थे। गोपी माँ आँखे मूँदे बैठी थी, और उनकी आँखो से अविरल अश्रुधारा बह रही थी। दो स्त्रियाँ राजू पण्डित को पखा झल रही थी और दो पुरुष गोपी माँ को, तथा हरिकीर्तन तारसप्तक से भी ऊपर चढ़ता चला जा रहा था। बीच-बीच मे 'हरी बोल', 'हरी बोल'! 'काट दे फाँसरी, बाँसुरी वाला!' ये नारे लग रहे थे।

"क्या है यह बेहूदगी?" सूरज बीच मे आकर जैसे चीख पड़ा, "आप लोग आदमी की तरह नही रहना जानते क्या? आख़िर किसी को सोना नही है क्या?"

हरिकीर्तन भग हो गया। 'भग करने वाला राक्षस है, दुष्टात्मा है,

नास्तिक है ! हम इसे सहन नही कर सकते। हम प्राण दे देगे इसी बात पर। यह कौन होते है ? क्या समझते है अपने-आपको ? अपनी असलियत तो देखे !'

सूरज पर सब बिगड खडे हुए, और सबके बीच मे वह घिर गया। तभी उसने देखा, हरिकीर्तन मण्डली मे झण्डावीर मिठाईलाल भी मौजूद है। राजू पण्डित की समाधि भग हो गई। उन्होने देखा कि हरिकीर्तन मण्डली वालो से भी अधिक मुहल्ले के श्रोतागण सूरज पर बिगड खडे हुए है। न जाने कब की कितनी प्रतिक्रियाएँ उस पर एक सग बरसने लगीं।

राजू पण्डित ने एक ही आवेश मे सबको अलग खींच दिया और सारी भीड को एक दुख-भरी तरेर से देखते हुए बोले, "इसीको हरिभक्ति कहते है ? मामूली-सी बात पर इतना क्रोध ! और किस पर ? सूरज जैसे इसान पर सूरज, जो सचमुच सूरज है !"

"जी हाँ तू क्यों न कहेगा, सचमुच तो है ही वह !" भीड मे से न जाने किसकी आवाज़ आई, उस आदमी का पता न चला।

एक तीव्र विरोध और असन्तोष दिखाती हुई कीर्तन-पार्टी वहाँ से चली गई। श्रोताओं मे से अपना-अपना मुँह अपनी-अपनी बात कहते सब चले गए। चुप रहकर कोई न गया—यहाँ तक कि मिठाईलाल भी यह कहता गया—'यह तो बडी बुरी बात है ! आप नास्तिक है तो अपने घर रहिए चुपचाप ! यह क्या तमाशा है ?'

गली से गलियो मे लोग बोलते चले गए; एक से अनेक मुखो मे बात फैलती चली गई। घर से घरों में, घरो से स्त्रियो मे, स्त्रियो से पूरी बस्ती में यह जरा-सी घटना असंख्य व्याख्याओ के साथ 'एक हाथ ककड़ी नौ हाथ बीज' जैसी बात बन गई।

७

रूपाबहू हाहाकार करके न रो पाती। वह निःशब्द रोती, झलझल आँसुओं से तर—सौ-सौ पाँत की अश्रुधारा। बावरी बनी चुपचाप बैठी रहती, जैसे वह गूँगी हो गई हो—अकिंचन और दीन। और जब-जब वह अपने कमरे में जाती, उसे चेतराम की सजीव छाया दीख जाती। वह स्नेह-भरा, भोले-भाले मुख वाला, पतले माथे वाला, काली-काली, भरी मूँछों वाला, फूले-फूले गाल, खुला मुख, जैसे सदा हँसता हुआ – ढीली-ढीली धोती वाला, बहुत चौड़ी छाती वाला, बड़ी-बड़ी आँखें पर जैसे धूमिल-धूमिल, और वह राजा चेतराम। दीवार थामे हँस रहा है वह, पलग पर झुका हुआ समझा रहा है—'पगली, इतनी-सी बात! ले थाम बच्चे को! मै समझूँ हूँ कि क्या बात है! भला यह भी कोई बात हुई!'

और वह छाया मुस्करा पड़ती—शिशुवत्, स्नेहासिक्त।

और वही गद्गद, गुलगुला स्वर—'हुँ, निरी बच्ची हो जाती हो। नासमझ कहीं की। जो तुमसे पैदा हुआ, वह मेरा क्यो नहीं? ख़ाम-ख़ाह के लिए बचपना करती हो। ख़बरदार, अगर यह बात मन मे रखी! बेकार का वहम! सब निकाल दो मन से, हाँ!'

यह सब एक ही पल मे उस कमरे मे रूपाबहू को दिख जाता, अनुभूति मे, समूची दृष्टि मे तिर जाता और वह बिना छाती पीटे, रुदन का हाहाकार मचाए बेहोश हो जाती।

अनेक सगे-सम्बन्धियों से घर भरा था। तेरहवी के दिन क़रीब थे। कोई औरत रूपाबहू को सम्हालती हुई भरे कण्ठ से कहती, 'जब राजा ही चल बसा तो रानी बन का पात हो गई!'

कोई मुँह पर पानी के छींटे मारती हुई कहती, 'जिसका सब लुट गया, वह न बेहोश होगी तो कौन होगी? जब सरदार ही न रहा, तो सब [illegible] जी!'

'घायल हिरन कूँ सींदुर रोवै !'

लेकिन घर के पिछवाडे वाली गली से कोई कह उठता, 'अब आया रँडापा, अब खेले सँडापा ! पतिवरता ! पतिवरता !'

दूसरी तीसरी से कह उठती, 'अब करे तो देखूँ ! अब किसके कोरे मे जा छिपोगी ? हाय-हाय ! इतना सीधा, इतने बडे दिल का पति !'

'उसी के पाप से तो वह मरा ही, की ले अब खे रँडापा ! अरे, सब गोसइंयाँ देखता है जी ! बडी नजर है उसकी ! सबकी खाता-बही है उसके इजलास मे !'

जियालाल के तख़्ते पर जब सब लोग जुटते, तब कभी आधे से अधिक लोग इस मत के होते कि चेतराम को गोरेमल ने मारा। पर दूसरे दिन बहुमत उलट जाता—"नही जी, क्या बकते हो, लाला सूरज परसाद ने अपने बाप को मारा। लीडरी करने चले थे न !"

"लायक़ पूत ने बाप की सारी तपस्या मे आग लगा दी !"

तब एकाएक रम्मन अकेला सबका विरोध करता, "तुम सब बनिये की अक़ल से सोचते हो। सूरज ने बहुत अच्छा किया। मै कहता हूँ, महान् कार्य किया उसने ! मरना-जीना तो लगा ही रहता है !"

जियालाल समर्थन करता, "हाँ है तो यार ! बहुत बडी बात है ! सोचने की बात है !"

विपिन ताव में कहने लगता, "लेकिन गोरेमल की भी शराफत देखो, चेतराम-गोरेमल की फर्म से केवल अपना ही हिस्सा ले गया—चेतराम का पूरा शेयर छोड गया।"

"छोडते न तो जाते कहाँ वो ?"

"अजी, उसके लिए सारे रास्ते खुले थे। वह गोरेमल मामूली आदमी नहीं था, सट्टा में लाखो का वारा-न्यारा करने वाला आदमी। और उलटे सूरज ने उसकी इतनी बेइज्ज़ती की। वह रोकर गया है स्टेशन पर। अब पता लगेगा सूरज साहब को !" लगता कि पहलाद साहु न जाने कितना बोलते जायँगे।

का आक्रमण'। और इसके नीचे—'गोपालन मुहल्ला के प्रीतमदास के ठाकुरद्वारे मे बडे दरवाजा की कीर्तन पार्टी पर सूरज का अधार्मिक काड। बस्ती की तेरह कीर्तन पार्टियों की एक बैठक। सूरज के विरुद्ध प्रस्ताव पास।' इसके नीचे पूरा पेज इसी प्रसग मे रँगा हुआ था। रम्मन बोला, "अमे यार, चदूलाल को तुम लोग नहीं जानते न ! वह हरम्मा बस सौ-पचास खाकर बडे दरवाजा वालो से मिल गया होगा। उसे तो रुपये चाहिएँ। एक बार मुझसे मिला, कहने लगा, 'रम्मन, बस सौ-रुपये दो, मै साहू साहब का पर्दा फ़ाश कर दूँ।' मैने कहा, 'अबे वह झापड मारूँगा कि · ' तभी तो नाराज़ होकर उसने मेरे खिलाफ़ वह लिखा ही था।"

"सर साहब सर साहब !" सब लोग चिल्ला उठे।

महाजन चिरौंजीलालजी रिक्शे से गुजर रहे थे। उन्होंने वारफड मे सीधे गवर्नर के नाम पता नहीं कितना रुपया भेजा था। कहते तो है कि तीन हजार भेजा था, पर लोग कहते है कि इक्यावन रुपये दिये थे। तीन हज़ार तो रीजनल फूड कण्ट्रोलर को दिये थे। बहरहाल, जो भी हो, जितना भी हो, गवर्नर का एक छपा हुआ पत्र मिठाईलाल-झंडावीर के पिता महाजन चिरौंजीलाल 'सर' के कमरे मे बेशकीमती फ्रेम में जडा हुआ टँगा है। उसमे ऊपर लिखा है, 'डियर सर' और बीच मे लिखा है 'सर', अंत में लिखा है 'सर', अर्थात् गवर्नर ने महाजन को 'सर' की पदवी दी।

तब से 'सर साहब' गद्दी पर नहीं बैठते—कुरसी पर, या तो स्प्रिंगदार पलंग पर, जो लखनऊ से ख़रीदकर मँगाया है—अंग्रेज़ का पलग, जो नीलाम करके चला गया।

अपनी 'सर साहबी' रईसी और आरामतलबी को चरितार्थ करने के लिए महाजन चिरौंजीलालजी कभी-कभी तो दिन-रात उसी स्प्रिंगदार पलंग पर पडे रहते है। खाना-पीना, उठना-बैठना, सब उसी कमरे मे।

सर साहब तखत के सब लोगों को सिगरेट पिलाकर चले गए। कहक़हा तब भी जारी रहा।

तेरहवी के बाद घर मे सगे-सम्बन्धियो की भीड समाप्त-सी हो गई। सीता और गौरी उस घर मे अब तक मौजूद थी। सीता—चार बच्चों की माँ, चारों पुत्र—मूलचन्द, शिवचन्द, रूपचन्द और कृष्ण-चन्द। और कितनी मोटी है सीता जीजी-थलथली, भरी हुई, गहनो से पटी हुई। तोंद मे कई पेटियाँ पडी हुई। कैसी लगती है—भी भी भी हँसती है। और गौरी जीजी, यह भी एक लडकी की माँ।

रूपाबहू का घर अब भी भरा है—पाँच नाती, एक नातिन, दो बेटियाँ और वह सूरज, जो सहस्र पूत के बराबर है।

सूरज खुरजा गया—मधू बुआ और फूफा की तलाश मे। वहाँ भी पता न चला। न जाने कहाँ चले गए वे! कैसे होंगे? उन्हे पत्र तो लिखना ही चाहिए। अपनी ख़बर तो दे, पता ही दें। बुआ दया से भागती है, तो है कौन ऐसा जो बुआ को दया देगा! फिर कैसा डर?

बुआ मेरी माँ!

मेरी आस्था!

खुरजा, अलीगढ, बरेली, मुरादाबाद, रामपुर, ऋषीकेश, सहारनपुर, देहरादून, हरिद्वार के चक्कर लगाकर सूरज घर लौट आया। बुआ और फूफा का कही भी पता न लगा। जाने कहाँ छिप गए!

बडी तेज हवा बह रही थी, लू भी। सूरज गद्दी पर बिलकुल नही बैठ पाता था। अब गद्दी पर एक ही मुनीम—सीताराम जी रह गए।

मनोरथ और होरी भी न रहे, अकेला हिरनू रह गया था—बैंक, बाजार, काँटा, बाहर-भीतर, चारो ओर पहुँचने के लिए।

सूरज घर मे गया। उसे ऐसा लगा कि सन्तोष आई है।

पर आँगन सूना था ।

तीन-चौथाई आँगन मे धूप थी, छाया महज एक किनारे पर सिमटी हुई थी—रूपा माँ के कमरे की ओर । सूरज ने देखा, रूपा माँ का वह कबूतर उसी छाया मे बड़े ठाठ से बैठा है—अभय और सन्तुष्ट ।

सूरज को बहुत अच्छा लगा । सारा मुख मुस्कान से चमक आया । वह बढा, और जब कबूतर को अपने हाथ मे उठाने लगा तो उसने देखा, सामने मोरी मे बडी तेजी से एक काली बिल्ली भाग गई ।

सूरज एक क्षण तो देखता रह गया, फिर उसने कबूतर को चूम लिया, 'बच गए बेटे ! मान गया बहादुर हो !'

सहसा सूरज को आभास हुआ कि रूपा माँ के कमरे से भरी और तनी हुई सिसकियाँ उभर रही है ।

कोई कह रहा है—सम्भवत. गौरी जीजी है, वही बुआ-जैसी पतली आवाज़ है, "नहीं माँ · अब तो भूलना ही होगा । आख़िर काम कैसे चलेगा ?"

रूपा माँ इस तरह बोली जैसे सुबकता हुआ शिशु अपनी माँ से कुछ कहे, "अच्छा किया उन्होने । बहुत अच्छा किया तेरे बाबू ने उनके सामने मैं कैसे मर सकती थी · बहुत बडा कर्म चाहिए पति के कन्धे से चिता तक जाने के लिए··· ।"

सूरज के हाथ से कबूतर गिर गया । उठाया, फिर गिर गया, फिर गिर गया । जिस साये मे वह खडा था, वह साया जैसे टूटने लगी—दूर ·बहुत दूर तक कुछ चटचटाकर फूटता चला गया टूटता चला गया । नहीं··नही, यह सब कुछ नहीं है है । कुछ नहीं है ।

सूरज ने फिर कबूतर को उठा लिया, दोनों हाथों से उसे जकड़ लिया । और यंत्रवत् उसके पाँव रूपाबहू के कमरे की ओर मुड गए । बन्द दरवाज़ा । सिसकियाँ इस दरवाजे को भेद सकती है, पर इसे तोड़

नहीं सकतीं। भीतर सिसकियाँ, बाहर सन्नाटा, कुहरे से भरी हुई एक वादी। तोड दो इसे ! देख लो इसमे बन्दी क्या है ?

दरवाज़ा खुला।

सूरज कबूतर को अंक मे जकडे भीतर प्रविष्ट हुआ। उसकी अजब तनी हुई मुद्रा देख गौरी जीजी बाहर भागी।

रूपाबहू ने मातृत्व गरिमा से सूरज को बरबस छू लिया, और अजब स्नेह से छलकते हुए उसे अपने मे बाँध लिया, "आओ मेरे पास बैठो नही-नही यहाँ मेरे अङ्क मे। कबूतर को नीचे छोड दो। बोलो क्या बात है बेटे ? ऐसे न देखो मुझे ! क्या बात है ?"

"तुम क्या कह रही थीं अभी ?" सूरज ने समस्वर में कहा।

"क्या कह रही थी !" रूपाबहू सूरज की दृष्टि में जैसे टँग गई। "क्या कह रही थी ! अयँ ··क्या कह रही थी !"

"हाँ तुम कह रही थी कि कि।" सूरज की वाणी थरथरा गई।

"मै न जाने क्या क्या कहती रहती हूँ। तुम्हे मेरी बातों से क्या मतलब ? तुम सुख से रहो बेटे !" रूपाबहू विशुद्ध जननी के स्वरो में कह रही थी।

"तुम्हारी बातों से।" सूरज खिचकर रह गया, और धीरे-धीरे उसका मुख आरक्त हो आया। "तुम्हारी बातों से"

रूपाबहू सूरज की आँखो में उस गहरी व्यथा को देखकर काँप गई। जो अव्यक्त था, अकथ् था उसकी वाणी से, वह सब-कुछ उभर आया था उसके मुख पर—जैसे उसका मुख झुर्रियो से पट गया था। ज्वाला, आँसू, व्यथा और न जाने क्या-क्या, कितना भयावह, सब एक ही साथ उसमें भर रहा था।

"नहीं-नही, रुको सूरज !" रूपाबहू ने सूरज को भागने न दिया, "लो तुम भी सुन लो, मै स्वीकार करती हूँ। मै सब-कुछ स्वीकार करती हूँ। मैने जीवन-भर छल किया और लडी भी, खूब लडी, पर आज मै उऋण हो जाना चाहती हूँ। झूठ, कलक, अपमान मेरे हिस्से में, पर

सत्य तुम ले लो।" रूपाबहू का कण्ठ बिलकुल सूख रहा था, पर मुख से जैसे वह न जाने किस अदृश्य मे हँस रही थी, "जो तुमने सुना वह सब सच है, सब सच है। लेकिन याद रखना सूरज, मेरी दारुण पीडा भी सच है।"

यहाँ रूपा माँ का स्वर एकाएक पिघल गया।

सूरज के सामने सेमल के फल की तरह पहाड की चोटियाँ एक-एक करके चटख रही थी

एक चोटी—चन्दन गुरु, 'अबे तू किस माँ का जना है! हरम्मा कही का!'

दूसरी चोटी—चौधरी रामनाथ, 'अरे है किसका?'

तीसरी चोटी—बडी कोठी वाला सैयॉमल, 'राधा-राधा प्यारी, ठाकुरद्वारे का पुजारी!'

चौथी चोटी—प्रोफेसर चन्दूलाल और 'लंकादहन' मे 'पर्दाफ़ाश अंक' की विज्ञप्ति।

एक से अनेक और असंख्य चोटियॉ—सूरज का शिशु, चेतराम का भीतर से वैराग्य, मधू बुआ, सन्तोष और यह विना पंख का असहाय कबूतर—ये सब-के-सब सूरज में मथने लगे, दूर-पास न जाने कहॉ-कहाँ तक ये तिरने लगे।

सूरज भागने लगा। रूपाबहू ने फिर पकडना चाहा, लेकिन सूरज ने बेरहमी से उसे झाड दिया। वह फिर पकडने दौडी, सूरज ने उसे धक्का देकर गिरा दिया और अपनी चप्पलों से मारने लगा। मारते-मारते उसे पहली सुधि तब हुई जब वह रूपाबहू को छोड सीता और गौरी जीजी को मारने लगा। दूसरी सुधि उसे तब हुई, जब वह रूपाबहू के मुँह पर प्रहार करने चला—वह निर्विकार मुख, अश्रुहीन आँखें, द्रष्टा जैसी चितवन, निःस्पन्द ओठ, उदास सीमत।

यह दूसरी सुधि उसे विषवाण की तरह बेध गई—आर-पार नही, बाहर से आई और भीतर अटक गई—सारी पसलियो मे, समूचे अन्तस्

मे। और फैलती गई, दूर-दूर तक, न जाने किस लोक तक, स्तर तक, गहनतम अनुभूतियो तक।

फिर सूरज खडा रह गया किवाड के सहारे। शून्य मे न जाने क्या देखता रहा—मौन, अलक्ष्य। दूर-दूर पलको मे आँसू घिर आए थे, लेकिन बीच शून्य था और शून्य में जैसे कोई अट्टहास कर रहा था।

सीता और गौरी सूरज को वहाँ से अलग हटा ले जाना चाहती थीं, लेकिन सूरज ने बडी मजबूती से किवाड थाम रखा था। तूफान गाडी है, सबसे त्यक्त, सूरज गरीब, असहाय, किसी दूर देश के प्लेट-फार्म पर छूट गया है। गाडी उसे छोडकर चली जाने वाली है, उसे काई नही बैठने देगा गाडी में—वह त्याज्य है, निमू ल है, उपेक्षित है। बाहर से वह सीकचा पकडकर लटक गया है। पाँव के नीचे फुटबोर्ड भी नही है—सब आधारहीन है, मुट्ठियो में महज सीकचे हैं और कुछ नहीं। और यह सीता-गौरी जीजी है कि उसे बाहर खीच रही हैं—चलती गाडी से गिरा देना चाहती हैं। मैंने क्या किया है किसीका? ससार मे इतनी ही तो जगह मिली है जहाँ खडा हूँ। इस जगह से मतलब जमीन नही। हाय-हाय! ज़मीन मुझे कौन देगा? मै खडा हूँ, केवल इसी भाव पर खडा हूँ, भाव के विवेक पर, चिन्तना पर।

सब हट गए। सूरज उसी किवाड से चिपका हुआ खडा है • खडा है, खडा होने के लिए खडा नहीं, अपने अस्तित्व के सारे अणुओ को बाँधे-बटोरे खडा है, वह हिला नही कि सब बिखर जायगा।

शाम हो गई, रात घिर आई, और वह सूली पर झूलकर नीचे लटक गया। वहीं दहलीज पर बँधे घुटनों के बीच मुँह गाडे, अपनी बाहुओं के घेरे मे समा गया। पगु रूपाबहू पास आ बैठी और असहाय-दीन पुत्र के माथे पर हाथ रखकर न जाने क्या बुदबुदाती रही। सौ-सौ पाँत निःशब्द आँसुओ से जैसे कुछ कहती रही। कौन सुने इस भाषा को!

बन्द घुटनों के बीच जो आसमान था, उस सँकरे आसमान मे जो सूरज की बन्द आँखे थी और उन आँखो मे जो अन्त क्षितिज था, सूरज उसीमे भाग रहा था। पूरे जगल मे चारो ओर से आग लग गई है और बीच मे वह हिरन फँस गया है, जो दहाड-दहाडकर कह रहा है, 'मै वह नही था जो हूँ। सुन अँग्रेजी हुकूमत! मै वह चेतराम का पूत सूरज नही था, जिसने तुमसे विद्रोह किया था, वह कोई कलंकित सन्तान था। सुनो अंग्रेजी हुकूमत के सैनिको, अफसरो, खुफिया पुलिस के लोगो, मै वह नही था, जिसे तुमने बन्दी किया था, कोडे लगाए थे, गरम सलाखो से दागा था, अजी वह तो त्याज्य था कोई। कोई अस्वाभाविक था वह। सुनो बस्ती के लोगो, सैयॉमल, चौधरी रामनाथ, चन्दन गुरु, मास्टर चन्दूलाल, बडे दरवाजा वालो! वह सूरज सूरज नहीं था यार, वह तो था यूँ ही एक अजाति, च्युत। सुनो गोरेमल, वह असली सूरज नही था, जिसने तुमसे विद्रोह किया था, जिसने अपनी आन पर, अपने घर के निजत्व के नाम पर, अपनी मर्यादा के प्रकाश मे अपने-आपको तुमसे अलग हटा लिया था। अजी लाला, सुनो, वह तो कोई अमर्यादित व्यक्ति था। एक भयावह कुण्ठा थी वह, जो सारे फैसलो की जड़ में बैठी थी। वह सब असत्, अस्वाभाविक था लाला!

बहुत रात बीते सूरज जैसे किसी दर्शन के सहारे उठा। देखा, पास वही रूपाबहू बैठी थी, अक मे वही बिना पख का कबूतर था।

सूरज ने कबूतर को ले लिया, "यह कबूतर मै हूँ न! बोलो !"

रूपाबहू देखती रह गई।

कबूतर को वापस देकर वह फिर बोला, "मै तुमसे पैदा तो हुआ हूँ, इतना तो सत्य है न?"

उत्तर में हाहाकर करके रूपाबहू ने सूरज को अपने अक मे जकड लिया।

"गलत ! कोई भी आँसू नही ! ज़रा भी छल नहीं !" सूरज ने अजब गम्भीरता से डाँटा और असम्पृक्त खडा रहा।

"तुम मुझसे पैदा हुए हो, केवल इतना ही सच नही है, इससे आगे भी है, मैने दस महीने, दस कल्प तुम्हे अपने गर्भ में पाला है, तुम मेरी व्यथा-पीडा से अनुरजित हो।"

"पर मै किन्हीं बुरे-से-बुरे क्षणो की देन हूँ।" सूरज का मुख पीला पड गया था। रूपाबहू जैसे अडिग थी, विश्वासपूरित। उसकी वाणी से जैसे पवित्रता बरस रही हो। "सुनो सूरज ! क्षण से असख्य गुना बडा जीवन है, और जीवन से भी बडा सघर्ष है। मै तुम जैसा हीरा पा गई, वे क्षण चाहे जैसे रहे हो।"

"चुप रहो !" सूरज तडपा, जैसे वह अपने-आप को मिटा देगा।

"मै अब चुप नहीं रहूँगी। अब तो मै सब कह दूँगी। आज तो मुझे जीवन मे पहली बार साहस मिला है। आज तो मै मुक्त हो गई उन क्षणो से, जिन्हे लिये हुए मै जीवन-भर सुलगती रही, तिल-तिल-कर मरती रही।"

"लेकिन अब मै बन्दी हो गया।"

रूपा माँ रोती हुई सूरज से लिपट गई, "नहीं नही ! ऐसा नही ! जब तक मै उन क्षणो से बन्दी थी, तभी तक तुम थे। अब नहीं। मै अब ऊपर उठ गई। तुम्हीं ने उठाया। मुझे देखो मेरे लाल ! तुम जैसा पूत पाकर भी मै जीवन भर विमाता-निर्धना बनी रही, चूहे, बिल्ली और कबूतर से अपनी भूख मिटाती रही। सोचो मेरी दारुण व्यथा !"

माँ और पूत दोनो एक दूसरे को जैसे सम्हाले हुए खडे थे ... खडे थे, जैसे युगों से खडे थे—चुप निःस्पन्द।

रूपाबहू ने दूर हटते हुए कहा, "और तुम मुझसे भी अधिक मुक्त हो। तभी स्वतन्त्रता का भाव तुम्हारी नस-नस मे है। विद्रोह के सत्य से तुम पूरित हो ! यही मेरा सूरज है—जन्म से आज तक, और भविष्य तक। कितना अच्छा नाम रखा है तेरी बुआ ने ! मधू ' मेरी

मधू ।" रूपाबहू हुबक-हुबककर रो रही थी।

उसी बीच सूरज वहाँ से निकल गया। रूपा माँ उसे पकडने दौडी। सारे घर को छान डाला। बाहर-भीतर दौडती रह गई।

रात के दो बज रहे थे। रूपाबहू पिछवाडे से राजू पण्डित के घर गई—इतनी सहज गति से कि मानो वह रोज़ उस रास्ते से आती-जाती थी।

उस नई, अपूर्व रूपाबहू ने अजब विश्वास और स्नेह से राजू पण्डित को पुकारा, सन्तोष को जगाया और सबको संग लिये सूरज को ढूँढ़ने लगी। स्टेशन तक गई। सबको संग लिये अपने घर लौट आई। राजू पण्डित, सन्तोष, सीता-गौरी और गोपी माँ के बीच वह बैठी रही—भरी-भरी, आलोकित, स्नेह से छलकती हुई—जैसे रूपा-बहू माँ हो और चारों ओर उसके शिशु घिरे हो।

बिलकुल सुबह-ही-सुबह रजुआ और ताले स्टेशन से घर की ओर आ रहे थे। मुरादाबाद मुकदमे की पैरवी मे गये थे। चोरी का 'केस' चल रहा था।

वे दोनों सिर झुकाए, बहुत ही धीरे-धीरे बात करते हुए पण्डित के तिराहे से बस्ती की ओर बढ़ रहे थे। 'साहब की पेच' के पास कोयला बीनने वाले लडकों की भीड लगी थी। उस भीर मे दो लडके आपस मे बुरी तरह से गुँथकर लड रहे थे। शेष खडे निर्णय की प्रतीक्षा कर रहे थे। और लड़ाई भी किस बात की थी!

छेदामल के अहाते मे उन लडको को एक फेंका हुआ बक्स मिला था। बक्स मे अनेक तरह के हार, गजरे और मालाएँ थीं—खादी के पुष्पों के हार, सुनहली पन्नियों के गजरे और रंग-बिरंगे सूत की मालाएँ। अभिनन्दन-पत्र, मान-पत्र, घोषणा-पत्र, चिट्ठियो का ढेर और

उनके बीच में एक पिस्तौल मिला था। भरा बक्स लडको के बीच खुला रखा था और वे दोनों सरदार लडके इस बात पर लड रहे थे कि वह बक्स किसी चोर का फेका हुआ है, और दूसरा कह रहा था कि नहीं, वह बक्स पुलिस का फेका हुआ है, फँसाने के लिए।

रजुआ और ताले ने लडको को हडहडाकर भगा दिया और बक्स की सारी चीजे बाँधकर वे चम्पत हो गए।

ताले ने रजुआ से कहा, "पिस्तौल नही बेचेंगे, अपने पास रखेंगे। काम आयेगा।"

"बडी फँसान होगी यार," रजुआ बोला। "सब बेच दो। रुपयो की जरूरत भी तो है।"

"कौन ख़रीदेगा यह सब ?"

"अमे सूरज की चीजें हैं ये सब, चन्दन गुरु के हाथ बेचेगे। वह इससे ख़ूब बना लेगा।"

ताले ने फिर कहा, "हम ही क्यो न बना ले तब ?"

"अबे झट चोरी साबित हो जायगी हम पर।"

वे दोनो चन्दन गुरु के पास गये। पिस्तौल सहित सारा सामान पचास रुपये मे बिका।

आधा-आधा लेकर वे दोनो घर की ओर मुडे। रास्ते मे जगनू मिला, चेयरमैन साहब के बच्चो को स्कूल तक पहुँचाने ले जा रहा था।

"सुबह ही-सुबह कहाँ से भाई ?" जगनू ने पूछा।

"मुरादाबाद से आ रहे है, कल तारीख थी उसकी," ताले ने कहा।

"मै कहता हूँ भाई, अब से ठेला गाडी खरीद लो। अब भी बहुत देर नहीं हुई है।"

"अब ज़रूर खरीद लेंगे यार! इस मुकदमे से छुट्टी तो मिल जाय।"

"मिल जायगी, ईमान जीतेगा।"

जगनू स्कूल की ओर मुड़ गया, तभी उसे ताले और रज्जू की बड़ी तेज़ हँसी सुनाई दी।

शाम तक वह पिस्तौल हाथों-हाथ रामपुर पहुँच गई। चन्दनगुरु ने उससे सौ रुपये बना लिए और शेष सामान लेकर वे मास्टर चन्दूलाल के यहाँ गये। बीस रुपये उसके भी मिल गए।

अगले दिन वह सामान सन्तोष के सामने पहुँचा और उससे पचास रुपये लेकर मास्टर चन्दूलाल भी अलग हो गया। महाभारत की पोथी मे वह सामान यत्न से बाँधकर सन्तोष को ऐसा लगा जैसे उसने सूरज को छू लिया।

लेकिन सूरज गया कहाँ? रूपाबहू ने सन्तोष को सब बता दिया था—वह सब जो बताया नहीं जा सकता था, वह भी।

फिर भी सन्तोष रूपाबहू से पूछती कि सूरज कहाँ गया, और रूपाबहू सन्तोष से पूछती कि कहाँ गया उसका सूरज।

पाँचवे दिन राजू पंडित सूरज की तलाश मे निकले, और उसी रात बारह बजे के बाद, न जाने कहाँ-कहाँ से भटककर सूरज सन्तोष के घर आया—अजीब दयनीय हालत मे, गन्दे कपड़े, बिखरे बाल, सूखा चेहरा, लेकिन आरक्त आँखे—दमकती हुई।

बिना किसी भूमिका के स्वर साधकर वह बोला, "मेरा सब लौटा दो।"

सन्तोष जादू की मारी सूरज को देखती रही।

"क्या तुम समझी नही?" सूरज का स्वर भारी होने को था, पर उस अनिर्वचनीय को रौंदकर वह सैनिक की तरह बोला, "मै जो कह रहा हूँ उसे करना है।"

सन्तोष हिरनी की तरह देखती रही। उसकी सजल आँखो मे उभर आया—मै कुछ नही समझी मेरे हिरन! जो तुम कह रहे हो,

मुझे करना अवश्य है, पर वह है क्या ? देखो न, रुको, इतने आवेश मे क्यो हो ? अभी तो मेहदी भी नही रचाई मैने । दीवा तो अभी घी से भरा है । ढोलक पर ताल दे-देकर मेरी सखियो ने अभी तो गाना ही शुरू किया है । जरा देखो न, मेरे बिछुए मे सुहाग की साडी फँस गई है, इसे छुडा दो न ! मुझे जल्दी से घूँघट करना है जी ! मुझे सम्हालो, मै थर-थर काँप रही हूँ । यह शहनाई कब बजी ? तुम डोला सजाकर कब आये ? पहले से बता देना था न ! यह जल्दी-जल्दी मे कैसे होगा सब ? आँखों का काजल बिगड जायगा न ! सारे गहने उलटे पहन लूँगी, फिर न कहना, हाँ !

"इस तरह क्या देख रही हो ? मै तुमसे कुछ कह रहा हूँ ।"

सूरज ने सन्तोष का कन्धा पकडकर झकझोर दिया । लग रहा था, वह खडी तो है, पर बेखबर किसी ऊँची अटारी पर सोती हुई स्वप्न देख रही है ।

"सुनती हो कि नही ?" सूरज ने डाँटा । उसकी अजब-सी तन्द्रा को भंग करने के लिए वह कटु-से-कटुतर बनता रहा । फिर हारकर वह रा पड़ा ।

उन आरक्त और दमकती हुई आँखो मे इतने आँसू !

सन्तोष जाग गई ।

"यह क्या है सब ? बोलो क्या चाहते हो तुम ?"

सूरज सम्हलने लगा ।

"चलो आज्ञा दो न मुझे ! बताओ क्या करना है ?"

"मेरा सब लौटा दो !" सूरज का स्वर इस बार सधा न था, कही बेतरह भीगा था—सराबोर ।

"लेकिन क्यों, महाजन, इसे ज़रा समझा तो दो," भोली-भाली चितवन से सन्तोष देखती रह गई ।

"तो तुमसे वह सब कहना होगा !" सूरज पीला पड गया ।

"नहीं-नहीं, मुझे वह सब पता है," सन्तोष ने कन्धा देकर

सम्हाल लिया।

"तब भी पूछती हो क्यो ? बेरहम ”

"ठीक कहते हो, हम बेरहम न होंगे तो और कौन होगा!" सन्तोष जैसे हँस देगी, "लेकिन रहम करके मुझे तो कोई यह समझाए कि मै क्या और क्यों लौटा दूँ ?"

सूरज ने अजब कठोरता से कहा, "इसलिए कि मण्डी के ये लोग कल यही कहेगे कि सूरज ने माँ का बदला लेने के लिए राजू पंडित की ”

खिचकर एकाएक सूरज का स्वर ही नहीं टूटा, जैसे वह स्वयं यह अभिशप्त तथ्य कहते-कहते अणु-अणु मे टूटकर बिखर गया।

उन दोनो मे कुछ थम नही रहा था। हजारो फीट की ऊँचाई से जैसे बर्फ की नदियाँ टूट-टूटकर गिर रही हो, और उन नदियो की धार के नीचे दो गरीब शिशु खडे कर दिये गए हो—यह आज्ञा देकर कि बाँध लो मुट्ठी मे ये धार।

न जाने किस आत्मबल से बडी देर बाद सन्तोष बोली, "सूरज, तुमने एक दिन लिखकर कहा था कि एक दीवार वह है जिससे घर बनते है, पर एक दीवार हमारे भीतर है—मन मे, इससे हम दिनों-दिन छोटे होते चलते हैं, और एक दिन पहुँचकर हम स्वय दीवार बन जाते है—चलती-फिरती दीवार, जिनसे घर उजडते हैं, महल-अटारी और दुर्ग भी ध्वस्त हो जाते है। सत्तो, हममें ये दीवारें नही हैं, हम तो निरभ्र आकाश हैं!"

सूरज ने बहुत दबाया, पर यह कहते-कहते उसके मन का दर्द खिचकर रह गया, "नही-नहीं, वह सब झूठ था। सच केवल यह है कि हम दीवार-ही-दीवार हैं, अत· छोटे हैं, नीच हैं, अमस्त्वीय हैं।"

सूरज कुछ आगे भी कहना चाहता था, पर सब घुट-घुटकर रह गया।

सन्तोष उठ खडी हुई। कमरे की उस घनीभूत पीडा को बेधकर, नहीं-नहीं, उस सबको पीडा के दर्शन से बेधकर वह आँगन में

चली आई ।

पूरब मे शुक्र उदित हो रहे थे । हवा ठडी बह रही थी । ठेलों पर लद्-लद्कर ब्लैक ,के सामान का आना-जाना थम चुका था । स्टेशन जाने वाली सडक पर अब शायद गेहूँ के बोरों से भरी आख़िरी ट्रक गुज़र रही है, इसे भी गुजर जाने दो ! घी के कडाहे मे डालडा का आख़िरी टिन उलटा जा रहा है, इसे भी हो जाने दो । ब्लैक के रुपयों, सोने की सिलो को कोई जमीन मे बहुत गहरे गाड़ रहा है, इसे भी खूब गहरे गाड लेने दो ! कोई औरत रो रही है, रो चुकने दो ! किसीके पलग से शिशु गिरकर इस तरह रो रहा है, माँ कहाँ है ? कोई पुरुष रो रहा है, उसकी प्रिया कहाँ है ? आ जाने दो सबको ! सबको लौट आने दो । टेलीफोन पर कोई चीख़-चीख़कर दिल्ली मे भाव पूछ रहा है, पूछ लेने दो । सट्टे की इतनी दबी हुई बोलियाँ आ रही है ! खुला रहने दो सट्टे का टेलीफोन ।

अजब मन से चलकर संतोष सूरज के पास आई । सारे पत्र, डायरी के एक एक पन्ने, कटेली चम्पा, बडी चम्पा, सूरजमुखी के असंख्य पुष्प, चमेली, गुलाब, केतकी और बेला के न जाने कितने हार, गजरे और दस्ते, चूडियाँ, गले का वह सोने का आभूषण जिसे अभी पिछले दिनो रूपाबहू ने पहना दिया था, पुखराज की वह अंगूठी, महाभारत की पोथी, पत्र-पत्रिकाएँ और उपहार मे मिली सभी पुस्तकें, खादी की रेशमी साडियाँ—सब एक-एक करके संतोष सूरज के सामने रखती गई ।

सूरज चुप खडा था ।

सतोष ने न जाने किस यत्न से सबको एक कपडे मे बाँध दिया ।

बड़े साहस से बोली, "लो सब बाँध दिया ।"

इस तरह कई बार कहा, "लो सब बाँध दिया ।"

"सब लौटा दिया ?" सूरज ने धीरे से पूछा ।

"हाँ, सब लौटा दिया ।" संतोष आँचल मे मुँह छिपाकर

बोली, और उन खुले हुए बक्सो, बिखरी हुई आलमारियो, उजडे हुए कमरे की हर सूनी दिशा मे वह घूम-घूमकर देखने लगी। जो कुछ छूट रहा हो, जैसे उसे ढूँढने लगी।

"जाओ, अब कुछ नही रहा।"

"सच!" न जाने कितना वजन था उस 'सच' कहने वाले स्वर मे, कि कमरे की सारी दिशाएँ झनझना उठीं, जैसे बंजारो की असंख्य टोलियाँ क्षणो मे गुजर गई।

सतोष को जब होश हुआ, तब उसने देखा, सूरज बँधे हुए सामान का वह गट्ठर लेकर चला गया था। पर यह कमरे-भर मे बिखर क्या गया?

क्षण! अतीत! भाव!

'नही-नही, अब कुछ नहीं रहा! सब लौटा दिया, लौटा दिया!' संतोष अपने अन्तस् मे चीखती रह गई और कमरे से भाग निकली।

वह ठाकुरद्वारे मे गई, झम् झम् स्नान करने लगी। प्रभु की मूर्तियों का श्रृंगार किया। दीपक जले, आरती सजी। अकेली शख भी फूँकने लगी। आज बज गया वह शख, जो उससे कभी न बजता था।

एक हाथ मे आरती का थाल, दूसरे मे घटी का नाद, जिसमे मृदंग, मंजीर, दडताल, करताल, वीणा, पखावज के जैसे सम्मिलित स्वर उभर रहे थे। सतोष मंत्रमुग्ध-आलोकित मुख से आज गा रही थी। पता नही क्या बोल थे उसके! गीत तो पूजा ही का था, प्रभु की शरण मे भक्ति का ही गीत था, पर अजब तरह से वह गाया जा रहा था।

परिक्रमा करती हुई सतोष अपने-आपमें जैसे बेसुध थी। आज आरती और प्रसाद लेने बच्चो की भीड नहीं आ रही है। कोई नहीं दीख रहा है।

वह कौन है बाहर चबूतरे पर माथा झुकाए? कौन है वह

नत-शिर ? पगला गुलजारीलाल तो नही आ गया ? आरती लिये संतोष आगे बढी ।

"उठो, आरती लो।"

उठते उठते उस नतशिर का मुख दिख आया और आरती का थाल सतोष के हाथ से छूट गया । थाल तो झनझनाकर चुप हो गया, आरती बिखर गई, लेकिन वह झनझनाहट, वह प्रतिध्वनि, वह सूरज था—नास्तिक पुरुष, ये सब भाव एक ही सगति मे सतोष को बाँध ले गए ।

८

मामा के संग सन्तोष काशीपुर जा रही थी । मुरादाबाद स्टेशन पर रात के ग्यारह बजे प्लेटफ़ार्म नं० एक की बैंच पर बैठी हुई वह चुपचाप अपने भीतर के कोलाहल को सुन रही थी । उस कोलाहल मे बार बार सूरज की वह बात उभर आती थी—'नहीं-नही, वह सब झूठ था, सच केवल यह है कि हम दीवार-ही-दीवार है, अत छोटे है, नीच हैं, अमानवीय हैं ।' अवश उस कोलाहल मे सन्तोष को अपनी आवाज़ उठानी पडी—'सुनो सुनो सूरज ! तुमने उस दीवार को सोचकर देखा है । पहली बार उसका स्पर्श किया है । वह अनुभूति । तुमने अपमान झेला है—अपना ही नहीं, सबका, पूरी मडी का । और उसका विरोध भी सोचा है । यह बहुत बहुत महान् है । कर दिखाना महान् नही है, उसे अनुभूति में लाना महान् है । तुम एक नये, मौलिक भाव हो, परम्परा और सद्भावना हो । रुपये से बडी भी कोई चीज़ है, तुमने पहली बार उस मंडी मे बैठकर सोचा है । सारे दर्द को पीकर तुमने अपने-आपको, रूपा माँ को स्वीकार कर लिया । तुम एक भयानक घृणा को जीत ले गए—इस प्रथम विवेक से वह मडी महान् हो गई । सच,

वह मंडी बहुत ऊँची उठ गई अपनी नज़र मे।'

प्लेटफ़ार्म की घंटी बज उठी। झनझनाकर कुछ थक गया, जैसे भारी आरती का थाल एकाएक छूट गया हो। कोई गाडी आने वाली है। क्या दो बज गए? उसकी गाडी तो दो बजे आएगी।

एक अजीब अगडाई मथ गई उसमे और अनायास ही जब वह उठने लगी, उसकी आँखों मे अधेरा कौंध गया। इतनी कमज़ोर हो गई वह! नहीं, कभी नही। मुझे कभी नही मरना है! मुझे तो अब जीवन से मोह हो गया।

टहलते-टहलते एकाएक सन्तोष की दृष्टि एक जगह प्लेटफ़ार्म नम्बर दो पर बँध गई।

'वे कौन हैं?'

"बुआ!" निरी बच्ची की तरह चीख़कर वह सीधी रेलवे लाइन मे कूद पडी। ख़रगोश की तरह फाँदती-कूदती भागने लगी। गाडी बिलकुल पास आ चुकी थी। प्लेटफ़ार्म के सारे लोग उस दृश्य को भय से देखते रह गए, पर वह हँसती हुई प्रकाश-गति से उस पार पहुँच गई। मधू बुआ को झकझोरकर अक से लिपट गई—"बुआ! बुआ! बुआ!"

मूर्तिवत् खडी बुआ के अंक मे सन्तोष का सिर जैसे धँस गया था। और सिर पर बुआ का मुख टिका था—ऐसे, मानो वह सनातन का सत्य हो।

बैंच पर बैसाखी सम्हाले ईशरी फूफा बैठा देख रहा था और उपेक्षा से बड़बडा रहा था, "कितनी बेवकूफ होती है ये औरतें! बेअक्ल कहीं की। देखो न, प्लेटफ़ार्म पर क्या तमाशा बनाए खड़ी है। रेलवे लाइन्स फाँदकर यहाँ चली आई। अगर कट जाती तो! गाय-भैंस की अक्ल!"

तब तक सन्तोष के मामा भी आ पहुँचे।

"जी, आपकी तारीफ़?" अजीब तरह से आँख नचाकर ईशरी ने पूछा।

मामाजी घबड़ा गए, "मै मामा हूँ सन्तोष का।"

"ओहो! मामा हैं आप! मामा क्या बला होती है जी? यह क्या रिश्ता है? आप बीडी पीते होंगे। ज़रा एकाध पिलाइए!"

"जी, मै तो नही पीता।"

"लेकिन आप पिला तो सकते है।"

बुआ सन्तोष को सग लिये वहाँ से दूर हट गईं।

"बुआ, कहाँ थी तुम अब तक?"

"यह न पूछो बेटी! कुछ और बोलो।"

"एक बात पूछूँ?"

"नही, पूछो कुछ नही! बस, बता दो सब!"

"क्या-क्या बताऊँ बुआ! कैसे, कहाँ से शुरू करूँ! यह तो तुम्हें पता ही होगा कि लालाजी का स्वर्गवास हो गया!"

"भइया का स्वर्गवास?" बुआ हाहाकार करके रो पडी।

"तो यह भी तुम्हे नहीं पता था?"

सन्तोष बुआ को आश्वस्त करने लगी। उसे समझाती और मनाती जा रही थी। और आदि से अन्त तक उस सारी व्यथापूर्ण कहानी को वह सुनाने बैठ गई, जो उस स्थिति में किसी तरह कथा नही बन सकती थी। लेकिन वह व्यथा कथा बन ही गई, क्योंकि अजीब थे वे श्रोता-वक्ता। काग को एक बार इसी तरह गरुड भी तो मिले थे—'मिले गरुड मारग मे मोही, केहि विधि मै समझाऊँ तोही!'

लेकिन बुआ का गरुड यहाँ सब समझ गया।

बडी देर हो गई।

ईशरी क्रोध मे बडबडाता हुआ पास आया। बुआ को गाली दी और अपनी दाई बैसाखी से मारने को हुआ। दौडकर मामा ने पकड लिया।

"इनकी ज़िन्दगी मे चौबीस घटे रोना ही है कि और भी कुछ है! बदज़ात कहीं की!" ईशरी क्रोध से काँपने लगा।

सन्तोष फूफा और बुआ की आँखों को देखती रह गई।

"अच्छा बेटी! नमस्ते!" अजीब भारी स्वर मे कहकर, और उतनी ही वज़नी नजर से देखकर बुआ सन्तोष से अलग हो गई।

सन्तोष मामा के संग इस बार ऊँचे पुल को पार करती हुई अपने प्लेटफ़ार्म पर गई।

और बुआ खडी देख रही थी।

सन्तोष को वह जब ट्रेन दूर ले जाने लगी। बुआ खडी तब भी देख रही थी सन्तोष को—उस खिडकी पर जैसे उसकी दृष्टि गड गई थी। और सन्तोष अपनी खिडकी से झाँक-झाँककर देख रही थी—वह मेरी बुआ है, वह फूफाजी इतनी भद्दी-भद्दी गाली दे रहे है, बैसाखी से मार रहे है। बुआ ऋषिकेश से दवा कराके, गंगोत्री मे स्नान कराके लौटी है।

सुबह आठ बजते-बजते पति के संग बुआ सूरज के घर पहुँची। बुआ को सब बदला हुआ मिला—दुकान, गद्दी, घर, आँगन और सब।

पिछवाडे का दरवाजा ईंटों से चुन दिया गया था—दरवाजे से दीवार। रूपाभाभी जैसे निर्मल हो गई थी—विशुद्ध माँ। सूरज असमय प्रौढ़ लग रहा था—गम्भीर, उदास, पर द्रष्टा जैसी मुखाकृति।

सीता और गौरी अपने घर वापस चली गई थीं।

बुआ को वह सारा घर भरा-भरा लग रहा था। घर, आँगन, रसोई, सब साफ-सुथरी। हर चीज़ अपनी-अपनी जगह सजी हुई, क़रीने से रखी हुई। आँगन मे हरा-भरा तुलसी का बिरवा। रूपाभाभी के कमरे मे चेतराम का चित्र—फूलो से पटा हुआ, दही-अच्छत, चंदन से अनुरंजित।

सूरज का कमरा—रेडियो, किताबे, पत्र-पत्रिकाएँ, दैनिक अख़बार।

पर यह दुकान!

यह गद्दी !

तीसरे दिन मधू बुआ सूरज को सग लिये हुए गद्दी के पास आ गई, बडे अधिकार से बोली, बिलकुल चेतराम की तरह, "गद्दी पर क्यो नही बैठते ? गद्दी पर बैठना चाहिए न ! यह सारा काम-धाम तुम नही देखोगे तो कौन देखेगा ? चलो बैठो ! टेलीफोन अपने पास खींच लो। चिट्ठी-पत्री, कागज-बही, आढतिये और दलाल, गाहक और सौदागर—इन्हे खुद देखो न ! यह गद्दी तो अब तुम्हारी ही है न ! अब तो कोई नहीं है तुम्हारे सिर पर !"

"हाँ बुआ !" सूरज ने गद्दी पर जाते हुए कहा, "मै मुक्त हूँ, मेरे सिर पर अब कोई नहीं है—यही मेरी नैतिकता है।"

सूरज गद्दी पर बैठने लगा, और नित्य नियम से बैठने लगा।

एक दिन सरजू सुनार की पत्नी कुलवन्ती घर मे आई। मधू बुआ से बोली, "बेटी, मेरी एक सलाह मानो तुम लोगो ने पहुना की बडी दवाइयाँ की, एक बात मेरी मानो। धीमरटोला मे एक काछिन रहती है। उससे इनकी गाँठो मे गोदना गुदवा लो। ऐसा गोदती है वह कि गठिया का पुराने-से पुराना मर्ज अच्छा हो जाता है।"

बुआ प्रसन्नता से तैयार हो गई।

पर कुलवन्ती ने बताया कि वह काछिन किसीके घर नही जाती, उसीके घर जाकर गोदवाना होगा, इतवार-मंगल के दिन आधी रात के समय।

बुआ इस पर भी तैयार हो गई और आदमी भेजकर आने वाले इतवार के दिन की बात निश्चित कर ली गई।

सूरज ने बुआ से पूछा, "क्यो बुआ, अब तो फूफाजी की आदतें छूट गई ?"

"हाँ, छूट गई। केवल बीडी पीते है अब। और बस यही कि गुस्सा बहुत करने लगे है, पर मुझी पर, औरों पर नहीं।"

"पर इतनी गाली क्यो देते है ?" सूरज ने पूछा।

"मुझी को तो देते हैं, वह तो स्वभाव हो गया है।"

बुआ हँस पडी।

इतवार की उस आधी रात को ईशरी के संग कुलवन्ती, मधू बुआ, सूरज, सब गये। सूरज के सग उस रात जगनू भी था।

पचास साल की वह काली-कलूटी काछिन न जाने क्या जादू जैसा गा-गाकर फूफा की गाँठों मे गोदना गोदने लगी। फूफा को दर्द का सवाल ही नही उठता था—एक तो उनका स्वभाव, दूसरे वे गाँठें बिलकुल सुन्न-निर्जीव पड गई थी। ज़हर-मसाले मे डूब-डूबकर इतनी सुइयाँ घण्टों तक चुभती रहीं, पर कही भी ख़ून न निकला, कहीं कम्पन तक न हुआ।

सब लोग घर लौट आए। सब सो गए, लेकिन ईशरी काछिन का लय-भरा गीत गुनगुनाता रहा .

'कइयाँ-कोइयाँ
कइयाँ-कोइयाँ
सैयाँ सोट्टा · सैयाँ सोट्टा।
पर्वत ऊपर बिच्छी ब्यानी
बिच्छी के घर गइया भोली
भोली रोवै पात-पात
बिच्छी मारे घात-घात
रात-रात, आधी रात।
सैयाँ सोट्टा, सैयाँ सोट्टा'

अगले दिन दुपहरी मे ईशरी रूपाबहू के सामने गया। श्मशान के औघड बाबा वाली बात बताने लगा। रूपाबहू को बस हँसी आ रही थी और ईशरी बेवकूफ की तरह उसे देखता रह गया, जैसे वह सब रूपाबहू का सकल्पकृत छल था और उसमे एक कहीं, वैसे

असख्य औघड न जाने कहाँ बह गए थे।

तब ईशरी ने गरीब स्वर में कहा, "मुझे कुछ रुपयों की जरूरत है।"

"ओहो! तभी तुम मुझे औघड बाबा का सही रहस्य बताकर डराना चाहते थे, और उसी आतक से रुपये वसूलना चाहते थे। अब मै नहीं दूँगी रुपये।"

यह कहते-कहते रूपाबहू हँसते-हँसते लोट-पोट हो गई। और ईशरी का मुँह छोटे-से-छोटा होता चला गया, जैसे वह रो देगा; जैसे वह कहीं बेतरह गिरफ्तार हो गया।

सूरज के कमरे मे बैठा ईशरी चुप रह गया था। शाम के वक्त वह कमरे से निकलकर बाहर आने लगा। दरवाज़े पर सहसा उसकी दृष्टि ताले मे लटकी हुई सूरज की चाबियों के गुच्छे पर पड़ी। उसे लेकर तत्काल उसने सूरज का बड़ा बक्सा खोला। ढूँढ़ते-उलटते एक छोटे-से बक्स में वही सोने का हार और पुखराज की अँगूठी उसे मिली। न जाने क्या सोचकर अँगूठी तो उसने रख दी, लेकिन हार लेकर वह बाहर निकल आया।

काछिन के घर पहुँचकर वह वही गीत गाने लगा—'कइयाँ कोइयाँ, सैयाँ सोट्टा।' काछिन ने और कई गीत सुनाए।

बहुत रात नही बीतने पाई, ईशरी घर लौट आया।

बुआ ने पूछा, "कहाँ गये थे इस तरह अकेले?"

"मैं किसी का गुलाम हूँ क्या, जो इस तरह अकेले न आ-जा सकूँ!"

बुआ चुप रह गई।

दूसरे दिन ईशरी फूफा फिर उसी समय से गायब। और तीसरे-चौथे दिन भी।

उस रात बारह से ज्यादा बज चुके थे, ईशरी फूफा घर न लौटे। बुआ बेतरह परेशान, सूरज मण्डी-भर में छान आया। चौक-स्टेशन की

तरफ़ आदमी दौड़ाये गए और सब निराश लौट आए।

करीब रात के दो बजे शराब के नशे मे धुत्त ईशरी फूफा को कन्धे पर लादे हुए जगनू आया। सब देखते रह गए।

जगनू ने बताया कि फूफाजी काछिन के घर सोए थे। काछिन इन्हे घर से बाहर निकाल रही थी। वह भी शराब पिये थी और दोनो मे मार-पीट, गाली-गलौज हो रही थी।

सब निरुत्तर रह गए।

अगले दिन सुबह दस बजे तक ईशरी फूफा सोते रहे। अपने-आप उठकर उन्होने खुमार-भरे स्वर मे मधू बुआ को पुकारा। पलंग पर पड़े-पड़े उल्टी-सीधी न जाने क्या-क्या बकने लगे।

पर बुआ सामने न आई। रूपाबहू गई। कुछ क्षण बाद सूरज भी गया।

ईशरी फूफा कह रहे थे, "ये बेवकूफ औरते पति को देवता क्यों समझ बैठती हैं? किसने कहा है उनसे ऐसा समझने के लिए? अच्छाई और महानता का ठेका मैंने नहीं लिया है। जिस स्वतंत्रता-संग्राम का व्रत मैंने लिया था, उसे पूरा कर दिखाया। उस दौरान मे मै अपनी सारी भूखों को कुचलता रहा। कितना-कितना त्याग किया मैंने! क्या कुरबानियाँ नहीं की मैंने?"

"तो इसे कौन नही स्वीकार करता?" सूरज बोला।

ईशरी फूफा का स्वर और तेज़ हो गया, जैसे दबी हुई भूख उमड़ आए, "उस स्वीकृति और अस्वीकृति से मेरा क्या होगा? मै स्वतन्त्रता-संग्राम लड़ा हूँ, अब भोगूँगा उसे। मैंने त्याग किया है, अब मै स्वतंत्र हूँ, चाहे जो करूँ। जिसे जैसे भोगना चाहूँ भोगूँगा। क्यो न भोगूँ? मै अभुक्त नही मरना चाहता!" फूफा का मुखमंडल दमक दमककर बुझ जाता था, जैसे चिराग मे तेल बिलकुल कम हो, पर जलने वाली बत्ती बड़ी हो। मधू बुआ तेजी से सामने आ खड़ी हुई, "तुमने अपनी बात से सबको निरुत्तर कर

दिया न! यही तो सीखा था अपनी पार्टी मे, उस सग्राम में—झूठ, दगा, जादू-भरा भाषण, निर्ममता और शुभ-सुन्दर की अवज्ञा, उपेक्षा!"

ईशरी फूफा कुछ कहने जा रहे थे—बडे क्रोध मे। पर बुआ ने जैसे रास्ता छेक लिया, "त्याग तो सबने किया है, यहाँ जितने खड़े हैं सबने—एक-से-एक बढकर त्याग!"

"ये सब बेवकूफ हैं जो उसे भोगते नही। वह कैसा त्याग जिसमे भोग की इच्छा न हो!"

"ठीक कहते हो, यही तुम्हारी क्रांति है न?" बुआ ने कहा।

"मै नहीं जानता क्राति-क्राति। मुझे नाश्ता कराओ! रात वाला मेरा खाना लाओ। आज मै मुर्गे का गोश्त खाऊँगा, सूरज!"

"जरूर खिलाऊँगा, फूफा!"

"मैं पागल हो जाऊँगी सूरज," बुआ ने अजब दर्द से कहा। "यह सामाजिक क्रांति, तुम्हारी यह राष्ट्र-स्वतन्त्रता मेरी समझ मे लुञ्ज है, बौनी है।"

यह कहती-कहती बुआ वहाँ से भागने लगी।

"ऐसा न सोचो बुआ, तुम्हे ऐसा नही कहना चाहिए," सूरज ने बुआ को थाम लिया।

"मै तो जरूर कहूँगी सूरज, बिलकुल साफ-साफ कहूँगी। ऐसी क्रान्ति लाने मे जब एक बार मनुष्य का सुन्दर और सत्य मर जायगा, तो उसे दुनिया की कोई शक्ति, कोई शासन, कोई हस्ती पुनर्जीवित नहीं कर सकती।"

सूरज की पकड ढीली हो गई। बुआ वहाँ से रसोईघर मे जाकर जल्दी-जल्दी नाश्ता तैयार करने लगी।

तीसरे पहर, पजाब होटल मे ले जाकर सूरज ने ईशरी फूफा को मुर्गमुसल्लम खिलाया।

शाम को सूरज जब बुआ के सामने गया, तब बुआ ने कहा, "अब

हमे यहाँ से जाने दो बेटा !"

"लेकिन जाओगी कहाँ बुआ ?"

"यह तो सही है कि मै कहाँ जाऊँगी, लेकिन जाना तो है ही !"

दोनों चुप रह गए।

बुआ ने दीप्त मुख से कहा, "लेकिन इस बार तुमसे आज्ञा लेकर जाऊँगी। उस बार चुपके से तुम्हे बिना बताए चली गई थी, इसीलिए इधर-उधर भटकना पड़ा था। इस बार नहीं भटकूँगी। सीधे खुरजा जाऊँगी—अपने सास-ससुर के घर। वे जिस तरह भी रखेंगे, मै वही रहूँगी।"

"पर ऐसी भी क्या बात ? ऐसा निर्णय ही क्यो ? तुम यही रहो। यह घर भरा रह जायगा। तुम्हारी ममता से· · !"

सूरज का कंठ भर आया। बुआ हँस पडी। सूरज को गुद्गुदाकर बोली, "कैसी लडकियो की तरह बात करते हो जी ! तुम तो इतने विवेकशील हो !"

"मै कुछ नही हूँ बुआ !"

"तभी तो हो मेरे प्राण !" बुआ ने सूरज को अंक से लिपटा लिया। धीरे से आकर वहाँ रूपाबहू खडी हो गई। माँ के स्वर मे बोली, "प्यार और ममता के लिए तुम यहीं रह जाओ बेटी ! इस पुत्र की माँ तो तुम्ही हो न ! जननी मै हूँ तो क्या ?"

"नहीं भाभी, तुम सदा माँ हो और यह सबका सूरज है।"

"पर बुआ, मै प्रकाशहीन सूरज हूँ।"

बुआ ने काँपकर सूरज के तप्त मुख पर हाथ रख दिया।

रूपा माँ चुप न रही, उसी दम बोली, "प्रकाश मैं चुरा ले गई। बोलो मै ठीक कहती हूँ न ?"

रूपा माँ ने सूरज को अपने अक में बाँध लिया।

"बोलो, प्रकाश मै चुरा ले गई ? उत्तर दो मुझे !"

"नहीं माँ, नाना चुरा ले गया, वह गोरेमल !"

बुआ गद्गद् होकर हँस पड़ी, "वीर मेरे, तुमने गोरेमल से अब छीन लिया। यह विवेक ही तुम्हारा सूरज है—अतुल प्रकाशमय सूरज !"

फफकते स्वर मे रूपा माँ बोल उठी, "तुममे इतना प्रकाश न होता तो तुम इतनी घृणा कहाँ से पी जाते ? तुम्ही से तो मै प्रकाशवती हो गई।"

यह कहते-कहते रूपा माँ बुआ के पैरो मे गिर पड़ी।

अगले दिन बुआ, सूरज और रूपाभाभी से विदा लेकर फूफा को साथ लिये हुए खुरजा चली गई। जाने के दो दिन बाद सूरज को पता चला कि बुआ ने फूफा के नाम रामनाम बैंक से दस हजार का रामनाम ख़रीदा है।

६

तीन महीने बीत गए, सूरज दूकान का काम न देख सका। गद्दी पर बैठता, तो रोज उसकी किसी-न-किसी से लड़ाई हो जाती। आढ़-तिये, दलाल, ग्राहक और सौदागर उसे ब्लैक के भयानक प्रतीक लगते। चिट्ठियो, बहीखातो से उसे जाली और नकली चित्रो के आभास मिलते। टेलीफोन और गद्दी पर जाते ही वह अपने-आप मे अनायास ही देखने लगता बी० टी० टेस्ट का जादू, एडल्टरेशन, धर्म के काँटे—ख़रीदने के बाट और, बेचने के और। जैसे वह चारो ओर से अपने मे सुनने लगता—बनिया मुकदमा नही करेगा, वह सब सह लेगा—जुर्माना, नज़राना, घूस, चन्दे, अफ़सरो को बड़ी-बड़ी डालियाँ। 'इनफ्लेशन' और आदमी, नियन्त्रण और आदमी की भूख, गुप्त रखने

की आदत, सब-कुछ ब्लैक मे सोचने और करने का सस्कार, सूरज अपने-आपको पाता कि वह भी अभिन्न अग हो गया है इस सत्य का।

उसे प्रिंसिपल मसुरियादीन की बात रह-रहकर याद आती, 'आज असली आदमी नही है, इसलिए असली चीजे नही मिलती। आज का आदमी तो गुलामी, 'वार', कण्ट्रोल, राशनिंग, स्वतन्त्रता-सग्राम का प्रतिफलन है, अपने पर बीते समय की देन है।'

दूकान-गद्दी और व्यापार के प्रति सूरज की वैराग्य-भावना का फल यह हुआ कि चेतराम की वह फ़र्म निर्जीव हो गई। वहाँ अब कोई नही आता-जाता। मुनीम कुरसी लगाकर बाहर बैठा रहता है, दिन-भर मूँगफली फोडता है या जाकर गद्दी पर सो जाता है। रूपाबहू अक्सर गद्दी के पास आती, मुनीम को सचेत करके, दूकान में जान डालने के लिए हर तरह से आग्रह करती रहती।

मुनीम रूपाबहू से बार-बार कहता, "भइयाजी गद्दी पर क्यों नहीं बैठते ?"

"उसका जी नहीं होता मुनीम," रूपाबहू उत्तर देती।

"अजी, जी किसको कहते हैं ? सेठ-साहूकार कहीं ऐसा सोचते है ? उनसे आप कहती क्यो नहीं कि वह दूकान देखे। आप तो कभी कहती ही नहीं।" मुनीम की समझ मे कुछ नहीं आता, वह बस, छटपटा-कर रह जाता।

"क्या करूँ मुनीमजी, मेरा सूरज तो कहता है मै चाहता हूँ कि गद्दी पर बैठूँ, पर कितना चाहकर भी असफल रह जाता हूँ।"

पिछले कई दिन से रूपाबहू दूकान पर नही दीख पड़ी। उस पर इतने दिन बाद, एकाएक फिर वही बेहोशी वाला दौरा पड़ गया। काशीपुर से सन्तोष का ख़त आया है। उसकी शादी होने जा रही है। शादी के दस ही दिन और शेष रह गए है।

पीडा में खोई हुई रूपा माँ का फिर वही पीला मुख देखकर सूरज काँप गया, "उठो माँ, ऐसी भी क्या बात ? मरने की बात तुम मत करो माँ !"

"मुझे तो बहुत पहले मर जाना चाहिए था ! अब मरकर क्या करूँगी ? लेकिन मेरी दारुण व्यथा यही है कि मैने तुम्हारा सब छीन लिया, तुमसे तुम्हारी सन्तोष को भी छीन लिया। कितनी निर्मम और अपराधिनी माँ हूँ मै ! तेरी ममतामयी सन्तोष, तेरी प्रिया !"

रूपा माँ नि शब्द रोने लगी, ऐसे कि वह फफक-फफककर प्राण खो देगी।

"ऐसे न देखो माँ मुझे ! तुमने मुझे बहुत दिया है बहुत। सच, तुम्हे देखकर मैं गौरवान्वित होता हूँ, विश्वास करो माँ !" सूरज भरी आँखो से कहने लगा, "मेरी अपूर्व माँ ! तुम इस बस्ती की वह पहली माँ हो, जिसने चिन्तन किया है, जो पहली बार लडी है अपने अधम से, अपनी कुत्सा से। जो मथी गई है अपने-आप में ! जिसने जीवन को अनुभूत किया है।"

"लेकिन तुम्हे क्या मिला बेटा ?"

"तुम जो मिल गई माँ !"

कहते-कहते सूरज माँ के अक मे टूट गिरा। माँ हँसने लगी, ऐसी अनिर्वचनीय, नैसर्गिक हँसी, जो अनोखी थी, अद्भुत थी।

माँ की दशा सुधरने लगी। सुबह-शाम माँ को संग लिये सूरज बहुत दूर तक टहलने जाता। दिन मे जो कुछ वह पढ चुका होता, उसी की चर्चा वह माँ से करता।

•

उस दिन शाम से ही बडी तेज वर्षा हो रही थी। सूरज माँ को कुछ पढकर सुना रहा था और सुनाते सुनाते सो गया था। रूपा माँ अब भी सिरहाने बैठी सूरज के सिर को सहला रही थी।

बहुत रात नही बीती थी, यही ग्यारह-साढ़े-ग्यारह का समय रहा होगा। दरवाज़े की कुंडी खडकी। रूपाबहू गई, दरवाज़ा खोलकर देखती है, भीगे पिताजी खडे है—सेठ गोरेमल !

"सूरज कहाँ है ? बैठक खोलो, मुझे एक बहुत जरूरी बात करनी है।"

बैठक खोलकर रूपाबहू ने कहा, "सूरज तो सो गया है इस समय, सुबह बात कर लीजिएगा। आप इस समय आराम कीजिए।"

"नही, नहीं, ज़रा गौर करने की बात है। मुझे अभी वापस चला जाना है," गोरेमल उतावला हो रहा था। "वह सो गया है तो क्या जाग नही सकता ? लाट-साहब हो गया है क्या ? तभी दूकान और गद्दी की यह हालत है। जरा ग़ौर करने की बात है। जाओ, उठाओ उसे जाकर, मेरे पास वक्त नही है।"

"पिताजी, मै उसकी नीद ख़राब करना नहीं चाहती।"

"नींद ! तो सेठ-साहूकार का लडका क्लर्कों जैसी आदत का हो गया। नींद नींद ! जरा गौर करने की बात है !"

गोरेमल की आवाज से सूरज अपने-आप जागकर आ गया। देखते ही नमस्कार करते हुए बोला, "अरे आप अपने भीगे कपडे तो बदल डालते नानाजी !"

'मुझ पर कोई असर नही इस पानी का," गोरेमल ने स्वर को ऐंठते हुए कहा। "मै बहुत जल्दी मे हूँ, और यहाँ एक ज़रूरी काम से आया हूँ।'

"आज्ञा दीजिए !"

भीतरी पॉकेट से निकालते हुए वह बोला, "यह लो मेरी 'विल', वसीयतनामा ! मैने अपनी सारी सम्पत्ति तुझे दे दी।"

रूपा माँ चुप खडी थी—निर्विकार !

सूरज काँपती दृष्टि से 'विल' को देखता रह गया।

"मैने तुम लोगों को माफ़ किया," गोरेमल चमकतीं आँखो से

कहने लगा। "देखो, मैंने सब दे दिया तुम्हे। इस 'वसीयतनाम' को अपने पास रखो।"

माँ पुत्र को देख रही थी और पुत्र कृतज्ञ भाव से 'वसीयतनामे' तथा गोरेमल को देख रहा था।

"और दूसरी बात सुनो मेरी," गोरेमल बडे अधिकार से बोला। "छोडो इस मडी को! दिल्ली चलकर रहो अब। किराये पर उठा दो यह घर। आखिर यहाँ से इतना सब काम-धाम कैसे देखोगे? दिल्ली दिल्ली है!"

"वह तो आप ठीक कह रहे हैं नानाजी, लेकिन मैं अपनी यह बस्ती नही छोड सकता, यह घर नहीं छोड सकता!"

यह कहते-कहते सूरज ने अपनी दृष्टि रूपा माँ पर गडा दी, जो सिर झुकाए खडी थी।

"माँ! तुम बोलो कुछ!"

"मै बोलूँ बेटे!" रूपा ने सिर ऊँचा किया। "वापस कर दो यह वसीयत! दे दो इसे!" वसीयतनामे को छीनकर रूपाबहू ने गोरेमल के सामने फेंक दिया, "ले जाओ अपनी 'विल'। यह तुम्ही को मुबारक हो। मेरे घर को किराये पर उठाने चले है। भावहीन! चले जाओ यहाँ से! हम तुम्हारे कुछ नही है। मेरा जो कुछ बचा है, मैं नहीं दे सकती किसी को। चले जाओ यहाँ से!"

यह कहती हुई सूरज को बाँह से पकडकर रूपा माँ सिहनी की तरह चली गई।

मूसलाधार बरसते हुए पानी मे गोरेमल चल दिया।

थर-थर काँपती हुई रूपा माँ सूरज को अक मे बाँधे हुए दहलीज़ में खडी रही, खडी रही। फिर फफककर रो पडी। "लाल मेरे! तुम्हे मैंने कुछ नही पाने दिया।"

"तुमने तो मुझे बचा लिया माँ! इस तरह न रोओ! तुम्हे पाकर तो मैं विजयी हो गया। रोती क्यों हो?"

१०

ठीक दीवाली के दिन, सुबह-ही-सुबह स्टेशन वाली सडक पर, पडित के तिराहे के पास, छेदामल और चन्दनगुरु की एकाएक भेट हो गई।

छेदामल चींटियो को आटा दे रहा था। उससे परिचित कुत्ते अब भी दो-चार की संख्या मे उसके आगे-पीछे डोल रहे थे। पर अब वह कुत्तो की ओर ध्यान न देकर, झुका-झुका चींटियों के घर ढूँढ रहा था।

चन्दनगुरु अपने रेशमी शाल के नीचे चूहेदानी छिपाये हुए बोला, "राम-राम लालाजी! कभी-कभी कुत्तो का भी तो ख़याल कर लिया करो लाला!"

कमर पर हाथ रखकर छेदामल रुक गए। आँख पर चश्मा ठीक करते हुए बोले, "क्या करूँ गुरुजी! जे बदमाश कुत्ते तो अब चूहे खाने लगे!"

चन्दनगुरु घबरा गया, "ज़रा ठीक से बोला करो लाला!"

"ठीक ही तो कहता हूँ भाई! जब तुम उस पुलिया के पास चूहेदानी खोलकर उठ रहे थे न, वह बडा-सा चूहा मेरे सामने से भागा, यह जो काला कुत्ता खडा है न, इसी ने उसे दबोचकर खा लिया।"

"दबोचकर खा लिया!"

"हाँ गुरु! भला यह तुम क्यों करते हो! अच्छा नहीं लगता। अब तो मरने के दिन आये, भगवान् के दरबार की तैयारी करनी चाहिए न!"

"चाहिए तो लाला! जे बिलकुल सही है। लेकिन चूहे बहुत है मेरे घर में लाला! परेशान हूँ मै भगवान् कसम!"

"तो क्या तुम ख़त्म कर सके चूहे, आज कितने वर्षों से तो तुम यह चूहेदानी लगा रहे हो! ... इतनी बडी मण्डी है, यहाँ चूहे न होंगे तो और कहाँ होंगे! और किसके घर मे चूहे नहीं है! अरे एक रात तो एक चुहिया मेरी मूँछ कुतरकर भागी।" छेदामल बिना दाँत

के हँसने लगा।

"हाँ, वही तो लाला! ये बड़े शैतान है चूहे," चन्दनगुरु बोला। "वह जो एक बार मिठाईलाल के पिता चिरौंजीलाल के गोदाम मे आग लगी थी न, कंट्रोल के कपडे जिसमे भरे थे "

"हाँ जी, हाँ-हाँ!"

"उस फूँकने वाले ने इन्हीं चूहों का सहारा लिया होगा! गोदाम तो लोहे की चद्दरो से बन्द था, खोलने-खोलाने की कोई गुञ्जायश न थी। चूहे की पूँछ मे कपडा लपेटकर, उसे मिट्टी के तेल मे डुबोकर, गोदाम के दरवाजे के पास उस पूँछ में आग लगा दीजिए, चूहा भागकर उसी गोदाम में घुसेगा—फिर आग-ही-आग।"

"अय" हय"'हय च' च' च!" छेदामल घबरा गया। "वह गरीब चूहा तो जलकर खाक हो जायगा। राम राम राम!"

"लाला! तभी तो मै चूहो को इस बस्ती से बाहर निकाल देना चाहता हूँ।"

यह कहता हुआ चन्दनगुरु आगे बढ गया। छेदामल दुखती कमर को साधे हुए 'हनूमान चालीसा' का जाप करने लगा।

चन्दनगुरु की बैठक मे आज पिछले दो दिन से लगातार जुआ चल रहा था। जुए की हर पार्टी से बीस रुपये बैठकी और सात रुपये चिरागी के वह पहले ही वसूल कर लेता था।

रजुआ और तालमुहम्मद दोनो दिन लगातार हारते रहे थे। आज शाम को जुआ खेलने के लिए उनके पास कुछ नही था। आधी रात के बाद तो उन्हे रुपये मिल जायँगे, लेकिन उनकी यह दीवाली की शाम कैसे जगेगी? वे दोनो चौक मे इधर-उधर भटक रहे थे।

ठठेरी गली मे उनकी दृष्टि अगले गुलज़ारीलाल पर पडी—गले मे सिक्को की वही लम्बी माला। एक नहीं, अब तो तीन-तीन मालाएँ—

एक-एक रुपये के नोटो की माला, रेजगारियों की माला, चाँदी और नये रुपयों की माला।

समूची बस्ती को कसम, गुलजारीलाल की उस सम्पत्ति को कोई नहीं छू सकता था। वह धर्म था, वह दया और सहानुभूति थी, उस पगले के प्रति।

गली के मोड पर एकाएक ताले ने गुलज़ारीलाल के मुँह को बडी बेरहमी से दबोच लिया। रजुआ ने क्षण-भर मे वह सारी सम्पत्ति ले ली और चम्पत हो गए।

लोग दौडे हुए आये तो देखा गुलजारीलाल बेहोश था।

अगले दिन अस्पताल मे भी होश न हुआ।

बरेली और मुरादाबाद से डॉक्टर आये और ठीक पचास घण्टे के बाद गुलज़ारीलाल को होश हुआ। पर वह कुछ बोले नही, सबको पहचाना, करीब एक घडा पानी पिया, फिर सो गए।

ईशरी फूफा की एक बहुत जरूरी चिट्ठी पाकर सूरज खुरजा चला गया। वहाँ पहुँचकर सूरज ने पाया, बुआ और फूफा घर से अलग कर दिये गए है। बुआ के ससुर ने घर मे पीछे की ओर एक कोठरी दे दी है। सामने छोटा-सा बरामदा भी है। लेकिन इस हिस्से मे पानी का नल नहीं है। सेहन में बाहर एक कुआँ है। बुआ को उसी कुएँ से स्वय पानी भरना पडता है।

इस हालत में बुआ ने जब सूरज को अपने दरवाज़े पर पाया तो वह सूरजमुखी की भाँति खिल गई, जैसे आज बुआ के अंक मे कोई पुत्र आया हो, जैसे बुआ का कोई समर्थ बीरन आया हो, खूब कमाकर, माथे पर विजय लेकर।

"आज तुम मेरे घर आये सूरज," तख़्त पर चटाई बिछी थी, उसे आँचल से पोंछती हुई बुआ हँसती-हँसती बोलीं। "बैठो, गुड

खिलाऊँगी तुझे आज। रुको, दही लाती हूँ।"

यह कहती हुई बुआ बडी तेजी से भागी। मौक़ा पाकर ईशरी ने सूरज से कहा, "देख लो मेरी हालत! मै तो मधु से कह-कहकर हार गया कि हम लोग तुम्हारे यहाँ चलें। तुम्हारा इतना बडा घर है, कारोबार है, वही चलकर रहे, काम-धाम देखें। लेकिन इसकी अक्ल पर तो पत्थर पडा है। कहती है, यही मेरा घर है। जो मुझे मिला, वही मेरा घर है, शेष कुछ नही। तुम इसे समझाओ सूरज! जो तुम कहोगे, उसे यह टाल नही सकती। ले चलो हमें अपने घर। बडी तक़लीफ है हमे यहाँ। बेचारी रात को भी कुएँ से पानी भरने जाती है।"

सूरज गूँगा बना बैठा था।

बुआ दही लेकर आ गई। गुड और दही अपने हाथ से बरबस सूरज को खिलाने लगी।

"अच्छा है न मेरा घर! अपने हाथ से मैने इसे पोता है। यह खूँटियाँ मैने लगाई है। शीशे में मढ़कर तुम्हारी सब तसवीरे यहाँ लगाऊँगी।"

"लेकिन खाओ-पहनोगी क्या, यह तो बताओ," ईशरी बोल पडा।

"चुप रहो जी!" बुआ ने अजब मान-भरे शब्दों में डाँटते हुए कहा, "तुम्हे खाने-पहनने को नहीं मिले तो कहना, हाँ! तो बेटा, एक बात सुनो, अच्छे तो हो न! रूपा भाभी अच्छी हे न! सन्तोष की शादी हो गई, तुम्हे क्या-क्या लिखा उसने? वह मुझे बेटी की तरह याद आती है सूरज!"

सूरज को कुछ बोलने-कहने का मौका ही न मिल रहा था, बुआ बस बुलबुल की तरह चहचहा रही थी, "इसी बरामदे मे छोटे-छोटे बच्चो का स्कूल खोलूँगी। दो रुपये महीना फीस लूँगी। दस बच्चे मिल गए हैं, पाँच और मिल जायेंगे। सुनो, एक बात अभी से कहे

देती हूँ, हाँ, तुम्हारा बेटा यहीं आकर पढ़ेगा।"

सूरज हँस पड़ा। यह बुआ भी क्या है! अगले दिन सुबह आठ बजे सूरज बुआ से विदा लेकर घर आने लगा। डोलची में बुआ ने पूरी-सब्जी बाँध रखी थी। सूरज जब बुआ के चरण-स्पर्श कर आगे बढ़ने को हुआ, तब बुआ ने उसे थाम लिया, "यह पाँच आने पैसे रख लो, रास्ते मे कुछ खा-पी लेना, और पहुँचते ही चिट्ठी लिखना, हाँ! भाभी माँ को मेरा प्रणाम कहना!"